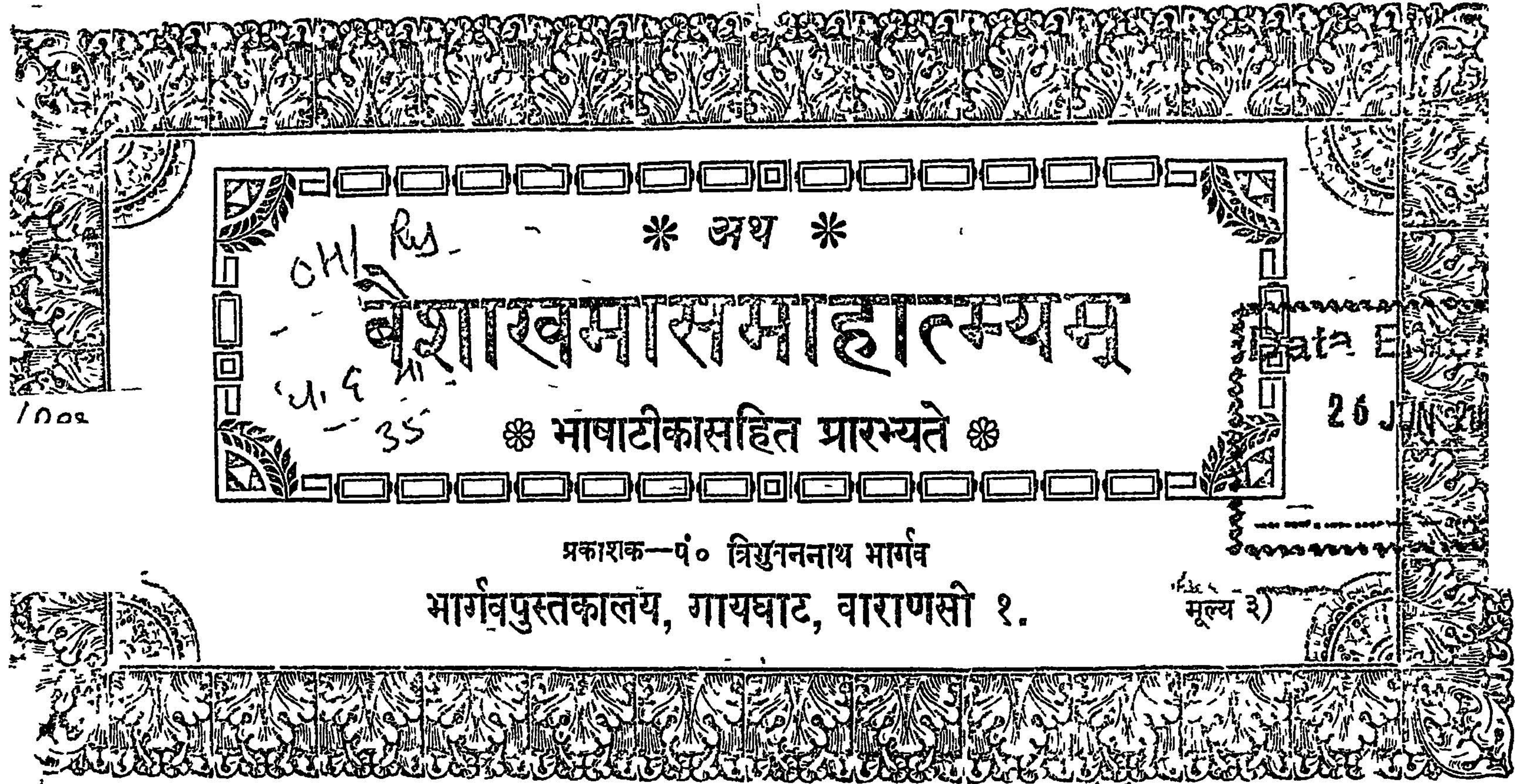


* अथ *

वैशाखमासमाहात्म्यम्

❀ भाषाटीकासहित प्रारभ्यते ❀

प्रकाशक—पं० त्रिगुननाथ भार्गव

भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी १. मूल्य ३)

॥ अथ ॥

वैशाखमासमाहात्म्यम् ।

❀ भाषाटीकासहितं प्रारभ्यते ❀



❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

❀ अथ वैशाखमाहात्म्यं भाषाटीकासहितम् ❀

मनुष्यों में श्रेष्ठ नारायण को, सरस्वती देवी को तथा व्यासजी को नमस्कार करके जयशब्द का उच्चारण करे ॥१॥ सूतजी बोले—हे राजन् ! परमेष्ठी ब्रह्माजी के महामुनि पुत्र नारदजी से अम्बरीष ने फिर से पुण्यकारक वैशाख माहात्म्य सुनने

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
सूत उवाच ॥ भूयोऽप्यङ्गभवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥पुण्यं माधवमाहात्म्यं पर्यपृच्छन् महामुनिम्॥२॥
अम्बरीषउवाच।सर्वेषामपि मासानां त्वत्तो माहात्म्यमुत्तमम्।श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन् यदाचोक्तं त्वयाऽनघ ३
वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ॥ इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ॥४॥

के लिये प्रश्न किया ॥२॥ अम्बरीषजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैने श्रद्धापूर्वक आप से वर्णन किये हुए सब महीनो के माहात्म्य पहिले सुने है ॥३॥ इन सब महीनो मे वैशाख महीना अवश्य ही श्रेष्ठ है, अतएव विस्तारपूर्वक वैशाख माहात्म्य ॥४॥ सुनने

की मुझे बड़ी लालसा है। हे विद्वन्! यह वैशाख महीना भगवान् विष्णु को क्यों प्रिय है, इस वैशाख महीने में कौन से धर्म विष्णु को प्रिय हैं ॥५॥ इन धर्मों में भी करने योग्य कौन से धर्म ऐसे हैं जो विष्णु को प्रिय हैं, कौन सा दान करने योग्य है, इसका क्या फल है और इस महीने मे किस देवता की आराधना करनी चाहिये? ॥६॥ हे नारदजी! श्रद्धापूर्ण मुझे विस्तारपूर्वक बता दीजिये कि इस वैशाख मास में माधव भगवान् की पूजा किन द्रव्यों से करनी चाहिये ॥७॥ नारदजी

श्रोतुं कौतूहल ब्रह्मन् कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ ॥ के च विष्णुप्रिया धर्मा मासे माधववल्लभे ॥५॥
तत्राप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः ॥ किं दानं किं फलं तस्य किमुद्दिश्याचरेदिमान् ॥६॥
कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे ॥ एतन्नारद विस्तार्य मह्यं श्रद्धावते वद ॥७॥
श्रीनारद उवाच। मया पृष्टः पुरा ब्रह्मा मासधर्मान् सनातनान्। व्याजहार पुरा प्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ॥८॥
ततो मासा विशिष्टोक्ताः कार्तिको माघ एव च ॥ माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ॥९॥
मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टप्रदायकः ॥ दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ॥१०॥

बोले—मैंने पूर्वकाल में ब्रह्माजी से यह पूछा था, तो उन्होंने महीनों के जो माहात्म्य पहिले लक्ष्मीजी से कहे थे, वे ही मुझसे भी कहे ॥८॥ कार्तिक, माघ तथा वैशाख ये तीन महीने वर्ष में सबसे श्रेष्ठ हैं और इन तीनों महीनों में भी वैशाख महीना सबसे उत्तम है ॥९॥ यह पुण्य मास सब जीवों को माता के सदृश इष्ट फल को देने वाला है। दान, यज्ञ, व्रत तथा स्नान से सब पापों को नाश करता है ॥१०॥ यह मास धर्म, क्रिया तथा तप का सार है और देवताओं से पूजित है। सब महीनों

में यह वैशाख मास वैसा ही श्रेष्ठ है, जैसे विद्याओं में वेदविद्या और मन्त्रों में प्रणव ॥११॥ वृक्षों में कल्पतरु, गोवों में कामधेनु, सब नागों में शेषनाग, पक्षियो मे गरुड ॥ १२ ॥ देवताओं में विष्णु, वर्णों में ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओं में प्राण, सुहृदा मे भार्या ॥१३॥ नदियों मे गंगा, तेजयुक्त पदार्थों मे सूर्य, अस्त्रो में सुदर्शन चक्र, धातुओ मे सुवर्ण ॥१४॥ जिस प्रकार वैष्णवों

धर्मसारः क्रियासारस्तपःसारः सुरार्चितः ॥ विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा ॥११॥
भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ॥ शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुड़ो यथा ॥१२॥
देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां तथा ॥१३॥
आपगानां यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा ॥ आयुधानां यथा चक्रं धातूनां काञ्चनं यथा ॥१४॥
वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ॥१५॥
नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥ वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रातर्भगोदये ॥१६॥
लक्ष्मीसहायो भगवान् प्रीतिं तस्मिन् करोत्यलम् ॥ जन्तूनां प्रीणनं यद्वदन्नेनैव हि जायते ॥१७॥

में महादेवजी और रत्नों में कौस्तुभमणि है, उसी प्रकार धर्म के निमित्त सब महीनों में वैशाख मास सबसे उत्तम है ॥१५॥ संसार में इसके सदृश विष्णु को प्रीति करने वाला दूसरा मास नहीं है। जो मनुष्य मेष संक्रान्ति में सूर्योदय के पूर्व वैशाख महीने में निरन्तर स्नान करता है ॥१६॥ उस पुरुष पर लक्ष्मी सहित भगवान् वैसे ही अधिक प्रीति करते हैं जैसे प्राणियों को प्रसन्न करने के लिये अन्न उत्पन्न होता है ॥१७॥ वैशाख स्नान करने से विष्णु भगवान् उसी प्रकार से प्रसन्न होते है

और वैशाख स्नान मे निरत मनुष्यों को देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥ जो पुरुष मेष संक्रान्ति में प्रातःकाल स्नान करके नित्यकर्म करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ १९ ॥ वैशाख मास मे स्नान करने के निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलता है, वह महापापो से विमुक्त होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२०॥

तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः ॥ वैशाखस्नाननिरताञ्जनान् दृष्ट्वाऽनुमोदते ॥१८॥
तावताऽपि विमुक्ताघो विष्णुलोके महीयते ॥ सकृत्स्नात्वा मेषसंस्थे सूर्ये प्रातः कृताह्निकः ॥१९॥
महापापैर्विनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चलेद्यदि ॥२०॥
सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम् ॥२१॥
सोऽपि क्रतुशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ॥२२॥
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोःसायुज्यमाप्नुयात् ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ॥२३॥

और उसको निरसन्देह दस हजार अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। अथवा एकाग्रचित्त होकर जो पुरुष संकल्प मात्र करता है ॥२१॥ उसको भी सौ यज्ञ का फल होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं; सूर्य के मेष संक्रान्ति मे जाने पर जो पुरुष स्नान करने के निमित्त धनुष के समान प्रमाण तक भी चलता है ॥२२॥ वह सब बन्धनों से विमुक्त होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है, ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीनों लोकों में जो तीर्थ हैं ॥२३॥ हे राजेन्द्र! वे सब तीर्थ बाहर थोड़े ही

जल मे प्रस्तुत हो जाते हैं, यम की आज्ञा से लिखे हुए पाप जब तक गरजते हैं ॥ २४ ॥ जब तक प्राणी वैशाख महीने मे जल मे स्नान नहीं करता, हे राजन्! वैशाख के महीने मे तीर्थों के अधिष्ठाता सब देवता ॥ २५ ॥ सूर्योदय से लेकर छः घड़ी तक

तानि सर्वाणि राजेन्द्र सन्ति बाह्येऽल्पके जले ॥ तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥२४॥
यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि ॥ तीर्थाधिदेवताः सर्वा वैशाखे मासि भूमिप ॥२५॥
बहिर्जलं समाश्रित्य सदा सन्निहिता नृप ॥ सूर्योदयं समारभ्य पश्चात् षड्घटिकावधि ॥२६॥
तिष्ठन्ति चाज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ॥ तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्वा सुदारुणम् ॥
स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये
नारदाम्बरीषसंवादे स्नानप्रशंसनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

जल के बाहर आते हैं ॥ २६ ॥ और विष्णु भगवान् की आज्ञा से मनुष्यों का हित करने के लिये ठहरते है और जो पुरुष उस समय तक स्नान करने के निमित्त नहीं आते, उनको दारुण शाप देकर अपने अपने स्थानो को चले जाते हैं। अतएव हे राजेन्द्र! इस समय स्नान करना परम आवश्यक है ॥ २७ ॥ श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य मे नारद और अम्बरीप संवाद मे स्नान प्रशंसा नाम का पहिला अध्याय समाप्त हुआ ॥१॥



नारदजी बोले—हे राजन् ! वैशाख मास के समान दूसरा कोई महीना नहीं है, सत्ययुग के समान दूसरा कोई युग नहीं है, वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है तथा गङ्गाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है ॥१॥ जल के समान कोई दान नहीं है, भार्या के समान कोई सुख नहीं है, कृषि के समान कोई धन नहीं है, जीवन के समान कोई लाभ नहीं है ॥२॥ उपवास के तुल्य कोई तप नहीं है, दान से बढ़कर कोई सुख नहीं है, दया के समान कोई धर्म नहीं है, नेत्रों के समान कोई ज्योति नहीं है

नारद उवाच—न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम्॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥१॥
न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥२॥
न तपोऽनशनात्तुल्यं न दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥३॥
न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न सत्येन समं यशः ॥४॥
नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः ॥ न माधवसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥५॥
माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियः सदा ॥ अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम् ॥६॥

॥३॥ भोजन के तुल्य कोई तृप्ति नहीं है, खेती के समान कोई व्यवसाय नहीं है, धर्म के समान कोई मित्र नहीं है, सत्य के समान कोई यश नहीं है ॥ ४ ॥ आरोग्य के समान कोई आनन्द नहीं है, केशव के सिवाय कोई रक्षक नहीं है, लोक में वैशाख के समान पवित्र दूसरा कोई महीना नहीं है—इसको कवि लोग जानते हैं ॥ ५ ॥ वैशाख मास सब से उत्कृष्ट है, यह

शेषनाग पर सोने वाले भगवान् को सदा प्रिय है, भगवान् के प्रिय इस मास को जो मनुष्य विना व्रत किये हुए व्यतीत करता है ॥६॥ वह सब धर्मों से बहिष्कृत होकर शीघ्र ही पशुयोनि को प्राप्त होता है। जिन मर्त्यधर्मियों का वैशाख मास बिना व्रत के व्यतीत होता है ॥७॥ उन श्रेष्ठ धर्म धारण करने वालों की सब इष्ट पूर्त्ति वृथा होती है, जो मनुष्य नियम से वैशाख महीने में भोजन कराने में प्रवृत्त होते हैं ॥८॥ वे अवश्य विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं

तिर्यग्योनिं स यात्याशु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ अव्रतेन गतो येषां माधवो मर्त्यधर्मिणाम् ॥७॥
इष्टापूर्तं वृथा तेषां धर्मो धर्मभृतां वर ॥ प्रवृत्तानां तु भक्त्याणां माधवे नियमे कृते ॥८॥
अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥ सन्तीह बहुवित्तानि व्रतानि विविधानि च ॥९॥
देहायासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च ॥ वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि ॥१०॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥११॥
स्वस्य सामर्थ्यरहिते परस्यापि प्रबोधनम् ॥ कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हि तत् ॥१२॥

है। इस संसार में अनेक प्रकार के धन हैं और नाना प्रकार के व्रत हैं ॥९॥ ये सब शरीर को अत्यन्त क्लेश तथा पुनर्जन्म देने वाले हैं, परन्तु वैशाख महीने में स्नानमात्र से ही मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता ॥१०॥ जो पुण्य सब प्रकार के दान से होता है और जो फल सब तीर्थों मे होता है, वह फल वैशाख महीने में केवल जलदान से हो जाता है ॥११॥ यदि जलदान

हटाने वाले पंखे का दान जो पुरुष नहीं करता, वह नरक की यातना को भोगकर संसार में पातकी होता है ॥ २४ ॥ हे
महाराज! आध्यात्मिक इत्यादि दुःखो की शान्ति के लिये वैशाख महीने मे छाते का दान एक वार प्रयत्न से अवश्य
करना चाहिये ॥ २५ ॥ विष्णु के प्रिय वैशाख महीने मे जो मनुष्य छाता दान नहीं करता, वह संसार मे छाया हीन, महा-
क्रूर तथा पिशाच होकर रहता है ॥ २७ ॥ जो विष्णु के प्रिय दिव्य वैशाख मास मे खड़ाऊँ दान करता है, वह यम के

सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं नरः ॥ नारकीं यातनां भुक्त्वा कश्मलो जायते भुवि ॥२४॥
आध्यात्मिकादिदुःखानां शान्तये मनुजेश्वर ॥ छत्रं दद्यात्प्रयत्नेन वैशाखे मासि वा सकृत् ॥२५॥
अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये ॥ छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचो भुवि जायते ॥२६॥
यो दद्यात्पादुके दिव्ये माधवे माधवप्रिये ॥ यमदूतांस्तिरस्कृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७॥
पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे ॥ न तस्य नारको लोको न क्लेशा दैहिकाश्च ये ॥२८॥
पादुकां याचमानाय यो दद्याद्ब्राह्मणाय वै ॥ स भूपालो भवेद्भूमौ कोटिजन्मस्वसंशयः ॥२९॥

दूतो का तिरस्कार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है ॥ २७ ॥ जो विष्णुप्रिय वैशाख महीने में जूता दान करता है, वह
नरक की यातना नहीं भोगता और न तो उसको संसार में दुःख होता है ॥ २८ ॥ खड़ाऊँ मांगने वाले ब्राह्मण को जो
खड़ाऊँ दान करता है, वह निस्सन्देह करोड़ों जन्म तक इस संसार में राजा होता है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य मार्ग की थकावट

हटाने के लिये अनाथ मण्डप बनवाता है, उस पुण्य का फल ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते ॥ ३० ॥ मार्ग में थके हुए ब्राह्मण को जो आश्रय देता है, उस पुण्य के फल को ब्रह्मा भी नहीं कह सकते ॥ ३१ ॥ मध्याह्न काल में आये हुए ब्राह्मण अतिथि को यदि कोई भोजन करावे, तो इसके विश्रान्ति के फल को ब्रह्मा भी स्थिर नहीं कर सकते ॥ ३२ ॥ हे नराधिप । मनुष्यों को अन्नदान करना तत्काल तृप्ति करता है, अतएव संसार में अन्नदान के सदृश दूसरा दान नहीं है

अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥३०॥
मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥३१॥
मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्तमतिथिं भोजयेद्यदि ॥ न तस्य फलविश्रान्तिर्ब्रह्मणापि निरूपिता ॥३२॥
सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप ॥ तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते ॥३३॥
दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम् ॥ असह्यं नाश्नतः पुंसः सह्यं भुक्तवता ध्रुवम् ॥३४॥
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ वैशाखे येन नो दत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे ॥३५॥

॥ ३३ ॥ भोजन न किये हुए मनुष्य को स्त्री, पुत्र, घर, वस्त्र, अलङ्कार आभूषण इत्यादि सभी असह्य होते हैं; परन्तु भोजन कर लेने पर निश्चय ये सब भले जान पड़ते हैं ॥ ३४ ॥ अतएव अन्नदान के समान न कोई दान था और न होगा । जिसने मार्ग में थके हुए ब्राह्मण को भोजन नहीं दिया ॥ ३५ ॥ वह संसार में पिशाच होकर अपने ही मांस को खाता है, इस

कारण से ब्राह्मण को यथाशक्ति अन्नदान देना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे राजन्! अन्न देने वाला माता-पिता इत्यादि को भी भुलवा देता है, इसीसे त्रैलोक्यवासी अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ माता तथा पिता जन्म के हेतु हैं; परन्तु पण्डित

स पिशाचो भवेद्भूमौ स्वमांसान्येव खादति ॥ यथाशक्ति प्रदातव्यं तस्मादन्नं द्विजायते ॥३६॥
अन्नदो मातृपित्रादीन् विस्मारयति भूमिप ॥ तस्मादन्नं प्रशंसन्ति लोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः ॥३७॥
मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः ॥ अन्नदं पितरं लोके प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३८॥
अन्नदे सर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः ॥ अन्नदे सर्वधर्माश्च तिष्ठन्त्यरिपराजय ॥३९॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दानमहिमानिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

लोग संसार में अन्न देने वाले को पितर कहते हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन्! अन्नदान मे सभी तीर्थ हैं, अन्नदान में सब देवता तथा अन्नदान में सब धर्म वास करते हैं ॥ ३९ ॥

स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप संवाद मे दानमहिमा निरूपण नाम का द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥



नारदजी बोले—जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को थकावट दूर करने वाली पलङ्ग दान देता है, जिस पर शीतल वायु से सेवित वह स्वस्थ होकर सुख से सोता है ॥ १ ॥ और धर्म का साधनस्थान उस ब्राह्मण की देह निरोग होती है, इसको दान करने से सब प्रकार के दुःख तथा पाप निवृत्त होते हैं ॥ २ ॥ योगियों को भी दुर्लभ अखण्ड पदवी को वह प्राप्त करता है। वैशाख महीने में घाम से तपे हुए थके हुए ब्राह्मणों को ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र! श्रम को हटाने वाले दिव्य पलङ्ग

नारद उवाच। यो मर्त्यो द्विजवर्याय पर्यङ्कं तु श्रमापहम्। यत्र स्वस्थः सुखं शेते शीतानिलनिषेवितः ।१।
धर्मसाधनभूतो हि देहो निरुजमास्तते ॥ तं दत्त्वा सकलं दुःखं निरस्य गतकल्मषः ॥२॥
अखण्डपदवीं याति योगिनामपि दुर्लभाम् ॥ वैशाखे घर्मतप्तानां श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥३॥
दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर ॥ न जातु सीदते लोके जन्ममृत्युजरादिभिः ॥४॥
गृहीत्वा ब्राह्मणो यत्र शेते चाजीवमास्थितः ॥ आसीने सकलं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् ॥५॥
विलयं याति राजेन्द्र कर्पूर इव वह्निना ॥ शयाने ब्रह्मनिर्वाणं स नरो याति निश्चितम् ॥६॥

को जो मनुष्य दान देता है, वह संसार में जन्म, मृत्यु, बुढापा इत्यादि के दुःख को नही भोगता ॥ ४ ॥ उस पलङ्ग को ग्रहण करके ब्राह्मण जब उस पर सोता है, तो ज्ञान अथवा अज्ञान से किये हुए जीवन भर के उसके पाप ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र! उसी प्रकार नाश को प्राप्त होते है, जैसे अग्नि से कपूर। वह मनुष्य निश्चय करके ब्रह्म के निर्वाण पद को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

विष्णु के प्रिय वैशाख मास में जो शय्या दान देता है, वह इसी जन्म में सब प्रकार के भोगों से युक्त होता है ॥ ७ ॥ निश्चय ही वह मनुष्य रोग इत्यादि से निर्मुक्त रहता है, उसको दीर्घायु, आरोग्य, यश तथा धैर्य प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ सौ पीढ़ी तक उसके कुल में कोई अधर्मी नहीं होता और वह सब भोगों का उपभोग करके पञ्चत्व को प्राप्त होता

यो दद्यात्कशिपुं मासे वैशाखे स्नानवल्लभे ॥ सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥७॥
स नरो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः ॥ आयुष्यं परमारोग्यं यशो धैर्यं च विन्दति ॥८॥
नाधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपूरुषम् ॥ भुक्त्वा तु सकलान्भोगांस्ततः पञ्चत्वमागतः ॥९॥
निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ विशिष्टाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम् ॥१०॥
सुखनिद्रा विना येन न नृणां जायते क्वचित् ॥ सर्वेषामाश्रयो भूत्वा भुवि साम्राज्यमश्नुते ॥११॥
पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः ॥ आसप्तजन्म राजेन्द्र जायते सर्वदा जयी ॥१२॥

है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य विशिष्ट ब्राह्मण को तकिया दान देता है, उसके सब पाप हट जाते हैं और वह ब्रह्मा के निर्वाण पद को प्राप्त करता है ॥ १० ॥ इनके दान किये विना मनुष्य कभी सुख से शयन नहीं करता और सबका आश्रय होकर वह सम्पूर्ण संसार मे साम्राज्य प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र । ऐसा मनुष्य सात जन्म तक बारम्बार सुखी, भोगी तथा धर्मनिष्ठुर होता है तथा सर्वदा विजय को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥ वाद में सातो कुलसहित ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।

टाट, चटाई अथवा दूसरे किसी प्रकार का आसन जो दान देता है ॥ १३ ॥ उस पर कमलशायी विष्णु भगवान् स्वयं शयन करते हैं जिस प्रकार ऊन पानी में पड़ने से नहीं भीगता ॥ १४ ॥ उसी प्रकार से संसारगामी जन्तु संसारी बन्धनों से नहीं बँधते, चटाई का दान करने वाला मनुष्य आसन तथा शय्या पर बैठा हुआ सब तरह से सुखी रहता है ॥ १५ ॥ जो विश्राम करने के लिये अथवा शयन करने के लिये चटाई या कम्बल दान देता है, वह इतने ही से मुक्त हो जाता है,

पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा ॥१३॥
तत्र शेते स्वयं विष्णुः पत्रस्थः परमेश्वरः॥ यथा जलगता चोर्णा न जलैर्बध्यते क्वचित् ॥१४॥
तथा संसारगो जन्तुः संसारे नैव बध्यते ॥ आसने शयने शस्तः कटदः सर्वतः सुखी ॥१५॥
प्रश्रये शयनार्थाय यो दद्यात्कटकम्बलम्॥ तावन्मात्रेण मुक्तः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१६॥
निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः ॥ सा निद्रा कटसंस्थस्य सुखं सञ्जायते ध्रुवम् ॥१७॥
यो दद्यात्कम्बलं राजन्वैशाखे माधवप्रिये ॥ अपमृत्योः कालमृत्योर्मुक्तो जीवति वै शतम् ॥१८॥

इसमें कुछ सन्देह न करना चाहिये ॥ १६ ॥ निद्रा से दुःख हट जाते हैं, निद्रा से श्रम दूर होते हैं, ऐसी निद्रा चटाई पर सोने से अवश्य सुख से आती है ॥ १७ ॥ हे राजन्! माधवप्रिय वैशाख मास में जो कम्बल का दान करता है वह अपमृत्यु तथा कालमृत्यु से छूटकर निश्चय सौ वर्ष तक जीता है ॥ १८ ॥ घाम से व्यग्र श्रेष्ठ ब्राह्मण को जो महीन कपड़ा दान देता

है, वह पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करता है और परलोक मे परम गति पाता है ॥ १९ ॥ दिव्य कर्पूर भीतरी ताप को हरण करता है, ब्राह्मण को कर्पूर का दान देने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है तथा इससे उसके दुःख की शान्ति होती है ॥ २० ॥ जो ब्राह्मण को पुष्प तथा कुंकुम दान देता है वह सब लोक को वश मे करने वाला सार्वभौम राजा होता

दद्यात्सूक्ष्मतरं वस्त्रं द्विजेन्द्रे धर्मकांक्षिते ॥ पूर्णमायुरवाप्नोति परत्र च परां गतिम् ॥१९॥
अन्तस्तापहरं दिव्यं कर्पूरं तु द्विजातये ॥ दत्वा मोक्षमवाप्नोति दुःखशान्तिं च विन्दति ॥२०॥
कुसुमानि च यो दद्यात् कुंकुमं च द्विजातये ॥ सार्वभौमो भवेद्राजा सर्वलोकवशंकरः ॥२१॥
पुत्रपौत्रादिभोगांश्च भुक्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ त्वगस्थिगतसन्तापं सद्यो हरति चन्दनम् ॥२२॥
तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥ उशीरं चम्पकैलाभिर्यो दद्यात् वासितं जलम् ॥२३॥
सर्वभूतेषु राजेन्द्र स तु देवसहायवान् ॥ पापहानिं दुःखहानिं प्राप्य निर्वृतिमाप्नुयात् ॥२४॥

है ॥ २१ ॥ और पुत्र-पौत्र इत्यादि के भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त करता है। चमड़ा तथा अस्थिगत उष्णता का चन्दन शीघ्र ही हटाता है ॥ २२ ॥ इसके दान करने से तीनों तापों से विमुक्त होकर मनुष्य मोक्ष को पाता है। जो मनुष्य खस, चंपा तथा इलायची से वासित जल दान करता है ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र! सब प्राणियों में वही देवताओं की सहायता प्राप्त करता है, उसके सब पाप और दुःख हट जाते हैं और वह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥ वैशाख मास के मर्म को जानने

वाला जो पुरुष गोरोचन तथा कस्तूरी का दान करता है, वह तीनों तापों से विमुक्त होकर निर्वाणपद को प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ सूर्य के मेष राशि में जाने पर जो मनुष्य कर्पूरसहित ताम्बूल का दान करता है, वह सार्वभोम राजा क सुख का भोग करके मोक्ष की परम पदवी को प्राप्त करता है ॥ २६ ॥ मेष मास मे सेवती, जूही तथा चमेली के फूल का दान

गोरोचं मृगनाभिं च दद्याद्वैशाखमर्मवित् ॥ तापत्रयविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥२५॥
ताम्बूलं च सकर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ ॥ सार्वभौमसुखं भुक्त्वा परं निर्वाणमृच्छति ॥२६॥
शेवतीं यूथिकाजातिं मेषमासे ददन्नरः ॥ स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षं च विन्दति ॥२७॥
केतकीमल्लिकापुष्पं यो दद्यान्माधवागमे ॥ स तु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात् ॥२८॥
पूगीफलं तु यो दद्यात्सुगन्धं च द्विजातये ॥ नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२९॥
सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥३०॥

करने वाला मनुष्य सार्वभौम राजा होता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है ॥ २७ ॥ जो वैशाख मास में केतकी तथा मालती के फूल का दान करता है, वह विष्णु भगवान् की आज्ञा से मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण को सुपारी, सुगन्धित पदार्थ, नारियल का फल दान देता है, हे राजन्! इस पुण्य के फल को सुनिये ॥ २९ ॥ वह सात जन्म तक ब्राह्मण होता है, धनी तथा वैदिक होता है, और अन्त मे सातो कुल सहित विष्णुलोक को जाता है ॥ ३० ॥ जो

ब्राह्मण के घर में विश्राम के लिये मण्डप बनवा देता है, हे राजन् ! इस पुण्य के फल को कहने मे मैं असमर्थ हूँ ॥ ३१ ॥ जो बालू बिछा हुआ सुन्दर छायादार मण्डप बनवाता है तथा पौसरा चलाता है, वह स्वर्ग का राजा होता है ॥ ३२ ॥ जो मार्ग मे बगीचा, तालाब, कुवॉ या मण्डप बनवाता है वह धर्मात्मा है, उसको पुत्रों से क्या फल ॥ ३३ ॥ कुवॉ, तालाव, बगीचा, मण्डप तथा पौसरा ये ही सद्धर्म को करने वाला उसका पुत्र है। सन्तान सात प्रकार के कहे

विश्राममण्डपं यस्तु प्रकुर्याद्द्विजमन्दिरे ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूपते ॥३१॥
सुच्छायामण्डपं यस्तु सिकताकीर्णमञ्जसा ॥ सप्रपं कारयेद्यस्तु स तु लोकाधिपो भवेत् ॥३२॥
मार्गोद्यानं तडागं वा कूपं मण्डपमेव वा ॥ यः करोति स धर्मात्मा तस्य पुत्रैस्तु किं फलम् ॥३३॥
कूपस्तडाग उद्यानं मण्डपश्च प्रपा तथा ॥ सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते ॥३४॥
एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्ति मानवाः ॥ सच्छास्त्रश्रवणं तीर्थं यात्रा सज्जनसङ्गतिः ॥३५॥
जलदानं चान्नदानमश्वत्थारोपणं तथा ॥ पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्त वेदविदो विदुः ॥३६॥

गये हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य इनमें से एक को भी नहीं बनवाते उनको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। अच्छे शास्त्रों का सुनना, तीर्थ यात्रा, सज्जनों की सङ्गति ॥ ३५ ॥ जलदान, अन्नदान तथा पीपल का वृक्ष लगाना, तथा पुत्र ये सात प्रकार के सन्तान पण्डितों ने माने है ॥ ३६ ॥ सैकड़ों धर्म करने से भी लोग सन्तान प्राप्त नहीं करते, इस लिये सन्तान की इच्छा करने वाले

कों तो स्वर्ग का सुख प्राप्त नहीं होता, फिर मनुष्यों की तो क्या कथा ॥ ३८ ॥ कपूर, इलायची तथा सुपारी सहित उत्तम
को सन्तान प्राप्त करने के लिये इनमें से एक भी कार्य करना चाहिये ॥ ३७ ॥ पशुओं को, पक्षियों को, मृगों को तथा वृक्षों
ताम्बूल जो दान करता है ॥ ३९ ॥ वह सम्पूर्ण शारीरिक पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, ताम्बूल दान करने

नासन्ततिर्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि ॥ तस्मात्सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेकतो व्रजेत् ॥३७॥
पशूनां पक्षिणां चैव मृगाणां चैव भूरुहाम् ॥ नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा ॥३८॥
पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् ॥ कर्पूरैलादिसंयुक्तं दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम् ॥३९॥
शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ताम्बूलदो यशो धैर्यं श्रियमाप्नोति निश्चितम् ॥४०॥
रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात् ॥ वैशाखे मासि यो दद्यात्तक्रं तापविनाशनम् ॥४१॥

यश, धैर्य तथा धन को अवश्य प्राप्त करता है, रोगी इस दान से आरोग्य होता है तथा निरोगी मोक्ष को प्राप्त करता
कोई सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ गरमी के दिनों में मठ्ठे के समान कोई दान नहीं है अतएव मार्ग से थके हुए ब्राह्मण
४० ॥ वैशाख महीने में जो ताप हटाने वाला मठ्ठा दान करता है वह संसार में विद्यावान् और धनवान् होता है,

को मठ्ठा दान दे ॥ ४२ ॥ जम्बीरी नीबू के सुन्दर रस तथा लवण से मिला हुआ अरुचि को हटाने वाला मठ्ठा दान करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥ ताप की शान्ति के लिये वैशाख महीने में जो दधिखण्ड का दान करता है। हे राजन्! इसके पुण्य का फल मैं नहीं कह सकता ॥ ४४ ॥ जो मधुसूदन के प्रिय मास मे दिव्य चावल दान देता है, वह

विद्यावान् धनवान् भूमौ जायते नात्र संशयः ॥ न तक्रसदृशं दानं धर्मकालेषु विद्यते ॥४२॥
तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये ॥ जम्बीरसुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम् ॥४३॥
यस्तक्रमरुचिघ्नन्तु दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ यो दद्याद्दधिखण्डं तु वैशाखे घर्मशान्तये ॥४४॥
तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोमि भूमिप ॥ यो दद्यात्तण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे ॥४५॥
स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ यो घृतं तेजसो रूपं गव्यं दद्याद्द्विजातये ॥४६॥
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ उर्वारु गुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ ॥४७॥

पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करता है और सब यज्ञों का फल पाता है ॥ ४५ ॥ जो ब्राह्मण को तेजरूप गाय का घी दान देता है, वह अश्वमेध के फल को पाकर विष्णु के महल में आनन्द करता है ॥ ४६ ॥ सूर्य के मेष राशि में जानेपर वैशाख मास में गुड़सहित ककड़ी का दान जो करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर अवश्य श्वेतद्वीप में निवास करता है ॥ ४७ ॥

जो दिन के ताप की शान्ति के लिये सन्ध्या के समय ब्राह्मण को ऊख का दान देता है, उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४८ ॥ श्रम की शान्ति के लिये वैशाख मास मे सन्ध्या को जो पन्ना दान देता है, वह सब पापों से विमुक्त होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ४९ ॥ वैशाख महीने मे सन्ध्या के समय जो फल सहित पन्ना दान देता है, उससे निस्सन्देह पितर

सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम् ॥ यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवातापोपशान्तये ॥

ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ४८ ॥

वैशाखे पानकं दत्त्वा सायाह्ने श्रमशान्तये ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥४९॥

सफलं पानकं मेषमासे सायं द्विजातये ॥ दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः ॥५०॥

वैशाखे पानकं चूतसुपक्वफलसंयुतम् ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनाशं यान्ति निश्चितम् ॥५१॥

यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णं तु पानकैः ॥ गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः ॥५२॥

लोगो का अमृतपान होता है ॥ ५० ॥ वैशाख महीने में अच्छे पके हुए आम के फल के सहित पन्ना का दान, अवश्य सब पापो का नाश करता है ॥ ५१ ॥ जिसने चैत्र मास मे पन्ना से भरा घडा दान दिया, उसने सौ गयाश्राद्ध किया, इसमे कोई सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य चैत्र मास मे कस्तूरी, कपूर, मल्लिका तथा खस से युक्त पन्ना से पूर्ण कलश पितरों

के निमित्त दान करता है, उसको छानवे श्राद्ध का फल होता है ॥ ५३ ॥

कस्तूरीकर्पूरोपेतं मल्लिकोशीरसंयुतम् ॥ कलशं पानकैः पूर्णं चैत्रदर्शे तु मानवः ॥
दद्यात् पितॄन्समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत् ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दानमहिमानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य में नारद और अम्बरीष संवाद में दानमहिमा
नाम का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥



नारदजी बोले—वैशाख महीने मे शरीर में तेल लगाना, दिन में सोना, काँसे के पात्र में भोजन करना, चारपाई पर सोना, घर में स्नान करना, निषिद्ध पदार्थों का भोजन तथा दो बार भोजन करना और रात्रि में भोजन, इन आठ कार्यों को न करना चाहिये ॥ १ ॥ वैशाख महीने मे जो व्रत करता हुआ पलाश के पत्ते पर भोजन करता है, वह पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥ २ ॥ वैशाख महीने मे मध्याह्न के समय थके हुए ब्राह्मणों का चरण धोना उत्तम व्रत

नारद उवाच ॥ तैलाभ्यङ्गं दिवास्वापं तथा वै कांस्यभोजनम् ॥ खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥ वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम् ॥ १ ॥
ब्रह्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रत संस्थितः ॥ स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२॥
वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम् ॥ पादावनेजनं कुर्यात्तद्वदन्ति व्रतोत्तमम् ॥३॥
अध्वश्रान्तं द्विजं यस्तु मध्याह्ने स्वगृहागतम् ॥ उपवेश्यासने रम्ये कृत्वा पादावनेजनम् ॥४॥
धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् ॥५॥

कहलाता है ॥ ३ ॥ मध्याह्नकाल में अपने घर आये हुए, मार्ग मे थके हुए ब्राह्मण को सुन्दर आसन पर बैठाकर जो उनका चरण धोता है ॥ ४ ॥ और इस जल का मस्तक पर लगाता है, वह सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है, उसको निस्सन्देह गङ्गा इत्यादि सब तीर्थों मे स्नान करने का फल होता है ॥ ५ ॥ यदि वैशाख महीने में स्नान न करे अथवा

पत्ते पर भोजन न करे, तो वह गदहे की योनि प्राप्त करता है और बाद में खच्चर होता है ॥ ६ ॥ जिस मनुष्य का अङ्ग दृढ़ है, जो रोगहीन और स्वस्थ है, वह यदि वैशाख महीने मे घर मे स्नान करता है, तो वह चाण्डाल की योनि को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! वैशाख महीने मे सूर्य के मेष राशि मे स्थित होने पर जो घर के बाहर किसी तीर्थ में स्नान नही करता, वह कुत्ते की योनि को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ जो कोई वैशाख महीने को विना स्नान किये अथवा विना दान दिये बिताता है,

अस्नायी वाप्यपत्राशी वैशाखं तु नयेद्यदि ॥ रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरी भवेत् ॥६॥
दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः ॥ वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥७॥
वैशाखे मासि राजेन्द्र मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ न करोति बहिः स्नानं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥८॥
अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥ स पिशाचो भवेन्नूनमावैशाखादधो व्रजेत् ॥९॥
यो न दद्याज्जलं चान्नं वैशाखे लोभमोहितः ॥ पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोति न संशयः ॥१०॥
नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः ॥ जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥११॥

वह अवश्य पिशाच होकर अधोगति को प्राप्त होता है ॥९॥ जो वैशाख महीने मे लोभ के मारे अन्न और जल दान नहीं देता, उसके दुःख की हानि तथा पाप की हानि कभी नहीं होती, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ विष्णु भगवान् मे तत्पर होकर वैशाख महीने में जो नदी में स्नान करता है, वह तीनों जन्म के एकत्रित किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है, इसमे कोई सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ जो प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले समुद्र में जाने वाली नदी मे स्नान करता है, उसके सात जन्म

के सञ्चित पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य उषा काल में सातो गङ्गा में स्नान करता है, उसके करोड़ जन्म के सञ्चित पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमे कोई सन्देह नही है ॥ १३ ॥ जाह्नवी, घृद्धगङ्गा, कालिन्दी, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा और वेणी ये सात गङ्गा कहलाती हैं ॥ १४ ॥ वैशाख महीने मे जो अपने खोदवाये हुए जलाशय में स्नान करता

समुद्रगानदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये ॥ सप्तजन्मार्जितैः पापैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥१२॥
कुर्यादुषसि यः स्नानं सप्तगङ्गासु मानवः ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१३॥
जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती ॥ कावेरी नर्मदा वेणी सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥१४॥
देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम् ॥ जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१५॥
वैशाखे मासि सम्प्राप्ते यो वापीष्ववगाहनम् ॥ प्रातः करोति हन्त्येष महापातकसञ्चयम् ॥१६॥
अपि गोष्पदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च ॥ तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्या इति निश्चयः ॥१७॥

है। उसके आजन्म के पाप हट जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ वैशाख महीना आने पर जो बाउली में प्रातःकाल स्नान करता है, उसके महापातकों के समुदाय नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥ यदि घर के बाहर किसी तीर्थ में गाय के खुर के समान गहरा भी जल हो, तो यह निश्चय है कि उसमे गङ्गा इत्यादि सब नदियाँ वास करती हैं ॥ १७ ॥ इस

बात के जानने वाले को सब तीर्थों के अधिक फल होते हैं ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! रसों में दूध श्रेष्ठ है, दूध से दही श्रेष्ठ है, दही से घी श्रेष्ठ है इसी प्रकार से सब महीनों में कार्तिक श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ कार्तिक से माघ श्रेष्ठ है तथा माघ से वैशाख उत्तम है, इस मास मे किया हुआ धर्म बड़ के बीज के सदृश बढ़ता है ॥ २० ॥ मनुष्य धनी हो, अति दरिद्र हो अथवा

इति जानन् समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम् ॥१८॥

क्षीरं रसाधिकं क्षीरादधिकं दधि भूमिप ॥ दध्नोऽधिकं घृतं यद्वदूर्जो मासोऽधिकस्तथा ॥१९॥

कार्तिकादधिको माघो माघाद्वैशाख उत्तमः ॥ तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्धते वटबीजवत् ॥२०॥

आढ्यो वाऽतिदरिद्रो वा परतन्त्रोऽथवा नरः ॥ यद्वस्तु लभ्यते येन तद्दातव्यं द्विजातये ॥२१॥

कन्दमूलफलं शाकं लवणं गुडमेव च ॥ काष्ठं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते ॥ नादत्तं लभ्यते क्वापि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ॥२२॥ दानेन हीनस्तु भवेदकिञ्चनो निष्किञ्चनत्वाच्च करोति पापम् ॥ पापादवश्यं

पराधीन हो, जो कुछ वस्तु वह प्राप्त कर सके, उसको ब्राह्मण को दान देना चाहिये ॥ २१ । कन्द, मूल, फल, शाक, लवण, गुड़, काठ, पत्ता, जल, मठा—ये पदार्थ दान देने से बढ़ते हैं, बिना दिये हुए ब्रह्मादि देवता भी कुछ प्राप्त नही करते ॥ २२ ॥ दान न देने वाला दरिद्र हो जाता है, दरिद्र होने से पाप करता है और पाप करने से अवश्य

नरक में जाता है, इस कारण से सुख की इच्छा करने वाले को सदा दान देना चाहिये ॥ २३ ॥ जिस प्रकार से सब गुणों से पूर्ण गृह, आच्छादन के विना शोभा नहीं देता, उसी प्रकार से सब महीनों में धर्म करनेवाला यदि वैशाख मास में नहीं करता तो उसका सब करना वृथा हो जाता है ॥ २४ ॥ जिस प्रकार कन्या सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होने पर भी पति के जीते रहने ही पर लक्षणा कहलाती है, इसी प्रकार से हे राजन् ! अङ्गसहित सब क्रिया वैशाख महीने में न की जाने पर

नरकं प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता सदा॥२३॥ यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा ॥ मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्ठितोवैशाखहीनस्तुवृथैव याति ॥२४॥ यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्तापि जीवत्पतिलक्षणा हि ॥ क्रियाऽपि साङ्गा सकलापि राजन् वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः ॥ २५ ॥ दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रिया ॥ शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम् ॥२६॥ वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधु सेव्यं न फलाप्तिहेतुः ॥ यथा ललामा शुभमेव भासते वस्त्रेण हीनं ललनासु राजन् ॥२७॥

वृथा मानी जाती है ॥ २५ ॥ जिस प्रकार से सब गुण दया विना वृथा होते हैं, उसी प्रकार से वैशाख मास धर्म के विना सब क्रिया वृथा होती हैं, इसी तरह से सब गुणों से पूर्ण शाक नमक के विना स्वादहीन जान पड़ते है ॥ २६ ॥ इसी प्रकार से वैशाख मास मे न किये हुए पुण्य भली भाँति करने योग्य नहीं होते और वे फल प्राप्त करने के हेतु भी नहीं होते, जैसे सुन्दर स्त्री सुन्दर ही देख पड़ती है, परन्तु बिना वस्त्र के शोभा नहीं देती ॥ २७ ॥ मनुष्यों के पुण्य की अनेक क्रिया

वैशाख महीने में न की जाने पर शोभा नहीं देती ॥ २८ ॥ इसलिये प्रत्येक प्राणी को वैशाख महीने के सब प्रकार के धर्म्म प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मेष राशि में सूर्य रहने पर विष्णु भगवान् के निमित्त प्रातःकाल स्नान करके विष्णु का पूजन करे अन्यथा नरक में जाय ॥ ३० ॥ वैशाख सम्पूर्ण फल को देने वाला महीना है,

क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुम्भिर्न शोभते तन्मधुमासहीनः ॥ २८ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि जन्तुना ॥ धर्मा वैशाखमासस्य कर्तव्या इति निश्चयः ॥२९॥
मधुसूदनमुद्दिश्य मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा यजेद्विष्णुमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३०॥
वैशाखः सकलो मासो मधुसूदनदैवतः ॥ तीर्थयात्रा तपोयज्ञदानहोमफलाधिकः ॥३१॥
प्रार्थनामन्त्रः॥मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ॥ प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव ॥३२॥
अर्घ्यमन्त्रः॥वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः॥ अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन॥३३॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च तथा ह्रदः ॥ प्रतिगृह्य मया दत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदत ॥३४॥

इसके देवता मधुसूदन भगवान् हैं, इसमें तीर्थयात्रा, तप, यज्ञ, दान तथा होम अधिक फल देते हैं ॥ ३१ ॥ प्रार्थना का मन्त्र-हे मधुसूदन ! हे देवेश ! वैशाख मास में जब सूर्य मेष राशि में जाता है, मैं प्रातःकाल स्नान करूँगा, हे माधव ! मेरे संकल्प को निर्विघ्न कीजिये ॥३२॥ अर्घ्य का मन्त्र–हे मधुसूदन ! वैशाख मास में सूर्य के मेष राशि में जाने पर प्रातःकाल स्नान करने में उद्यत मैं तुझे अर्घ्य देता हूँ, इसको ग्रहण कर ॥ ३३ ॥ गङ्गा इत्यादि नदियाँ, सब तीर्थ तथा सब जलाशय

मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करके भली भाँति प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ ब्रह्मादि देवता तथा वे सब ऋषि लोग जो वैष्णव हैं, मेरे दिये हुए अर्घ्य को स्वीकार करें और यथोक्त फलों को देवें ॥ ३५ ॥ आप सर्वश्रेष्ठ हो, पापियों को शासन करने वाले हो, यम हो समदर्शी हो, मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करो, यथोक्त फल देनेवाले हो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अर्घ्य समर्पण करके स्नान करे तब वस्त्र पहिन कर सब कर्मों को करके ॥ ३७ ॥ वैशाख महीने में उत्पन्न होने वाले पुष्पों से मधुसूदन की

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा ऋषयो ये च वैष्णवाः ॥ गृह्णन्त्वर्घ्यं मया दत्तं तथोक्तफलदा मम ॥३५॥
ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥३६॥
इति चार्घ्यं समर्प्याथ पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥ वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥३७॥
मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥३८॥
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ न जातु खिद्यते भूमौ न स्वर्गे न रसातले ॥३९॥
न गर्भे जायते क्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ वैशाखे कांस्यभोजी यस्तथा चाश्रुतसत्कथः ॥४०॥

पूजा करके इस महीने की प्रशंसनीय विष्णु की दिव्य कथा सुनकर ॥ ३८ ॥ मनुष्य करोड़ जन्म के सञ्चित पापों से मुक्त होकर मोक्ष पद को प्राप्त करता है और उसको संसार, स्वर्ग तथा पाताल कहीं पर भी दुःख नहीं होता ॥ ३९ ॥ वह कभी गर्भ मे नहीं आता, न उसको फिर से स्तनपान करना पड़ता है, जो वैशाख महीने में कांसे के पात्र में भोजन करता है तथा अच्छी कथा को नहीं सुनता ॥ ४० ॥ न स्नान करता है और दान भी नहीं करता, वह नरक में ही जाता है।

सौ ब्रह्महत्या का पाप किसी प्रकार से शमन हो जाता है ॥ ४१ ॥ परन्तु वैशाख महीने में जिसने स्नान नहीं किया, उसका पाप नहीं हटता, जिसने स्वाधीन शरीर से स्वतन्त्रता से बहने वाले जल में ॥ ४२ ॥ जो अधम मनुष्य वैशाख महीने में प्रातःकाल स्नान करके स्वाधीन जिह्वा से "हरि" ये दो अक्षर उच्चारण नही करता ॥४३॥ वह जीता हुआ भी मरे के समान है,

न स्नातो नापि दाता च नरकानेव गच्छति ॥ ब्रह्महत्यासहस्रस्य पापं शाम्येत्कथञ्चन ॥४१॥
वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति ॥ स्वाधीनेन च कायेन ह्यप्सु स्वातन्त्र्यवर्तिषु ॥४२॥
स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ न कुर्याद्यदि वैशाखे प्रातःस्नानं नराधमः ॥४३॥
जीवन्नेव च पञ्चत्वमागतो नात्र संशयः ॥ येन केनापि पुष्पेण माधवे मधुसूदनम् ॥४४॥
नार्चयेद्यदि मूढात्मा सौकरीं योनिमाप्नुयात् ॥ योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैर्वैशाखे मधुसूदनम् ॥४५॥
नृपो भूत्वा सार्वभौमः कोटिजन्मसु भोगवान् ॥ पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥४६॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखधर्मप्रशंसनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

इसमे कोई सन्देह नहीं है। जिसने किसी प्रकार के पुष्प से वैशाख मास में मधुसूदन भगवान् की ॥४४॥ पूजा नहीं किया, वह शूकर की योनि को प्राप्त होता है; जो वैशाख महीने में मधुसूदन भगवान् की तुलसीपत्र से पूजा करता है ॥४५॥ वह सार्वभौम राजा होकर करोड़ों जन्म तक ऐश्वर्य भोगकर बाद में करोड़ों कुलसहित विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥ श्रीस्कन्द पुराण वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप के सम्वाद में वैशाखधर्म प्रशंसन नाम का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥

—:❁:—

नारदजी बोले—वैशाख महीना सब धर्म, तप और दानों के कारण कैसे सब महीनो से अधिक श्रेष्ठ हुआ है ॥ १ ॥ हे महाराज ! वह मैं कहता हूँ, एकाग्र चित्त होकर सुनिये। कल्प के अन्त मे देवों के राजा शेषनाग पर सोने वाले महाप्रभु विष्णु भगवान् ॥ २ ॥ लोक समुदाय को अपने कोख में रखकर सोते थे, योगमाया मे तथा भूतियों से अनेक एकता को प्राप्त करके ॥ ३ ॥ एक क्षण के बाद वेदों के पाठ से जगाये गये, तब उस दयानिधि ने अपने कोख मे ठहरे हुए जीवों की

नारद उवाच॥वैशाखः सर्वधर्मेभ्यस्तपो धर्मेभ्य एव च॥ कथं स सर्वमासेभ्यो दानेभ्योऽप्यधिको भवेत् ॥१॥
तद्वक्ष्यामि महाराज शृणु चैकमना भव ॥ कल्पान्ते देवराड्विष्णुः शेषशायी महाप्रभुः ॥२॥
कुक्षिस्थलोकसंघोऽयं स शेते प्रलयार्णवे ॥ अनेको ह्येकतां प्राप्य भूतिभिर्योगमायया ॥३॥
निमेषस्यावसाने तु श्रुतिभिर्बोधितस्ततः ॥ स्वकुक्षिजीवसंघानां रक्षां चक्रे दयानिधिः ॥४॥
तत्तत्कर्मफलावाप्त्यै सृज्यान् स्रष्टुं मनो दधे ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ॥५॥
ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम् ॥ तस्मिन् ससर्ज भगवान्भुवनानि चतुर्दश ॥६॥
भिन्नकर्माश्रयप्राणिसङ्घांश्च विविधान् बहून् ॥ त्रिगुणाम्प्रकृतिं लोके मर्यादांश्चाधिपांस्तथा ॥७॥

रक्षा की ॥ ४ ॥ और उनके कर्मों के फल दिलाने के लिये विष्णु भगवान् ने सृष्टि की रचना करना मन मे स्थिर किया और उनकी नाभि से भुवन का आश्रयभूत सोने का कमल निकला ॥ ५ ॥ उससे विष्णु भगवान् ने विराट् पुरुष नाम के ब्रह्मा को उत्पन्न किया, जिनमे भगवान् ने चौदह भुवन निर्माण किया ॥ ६ ॥ बहुत से नाना प्रकार के प्राणिसमुदायों को

उत्पन्न किया, जिनके भिन्न-भिन्न कर्म और आश्रय थे, तब संसार में त्रिगुण प्रकृति को, मर्यादा तथा स्वामियों को निर्माण किया ॥ ७ ॥ तब उन्होंने वर्णाश्रम का विभाग तथा धर्म की रचना किया । चारो वेद, तन्त्र, संहिता तथा स्मृतियों से ॥ ८ ॥ पुराण और इतिहासों से महाप्रभु महेश्वर ने अपने आज्ञारूपों से धर्म की रक्षा के लिये इनके प्रवर्तक ऋषियों का निर्माण किया ॥ ९ ॥ इन्होने वर्णाश्रम का विभाग किया ओर सबको अपने-अपने धर्म मे प्रवृत्त किया और सब प्रजा इन विष्णु को सन्तुष्ट

वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिं च सोऽकरोत् ॥ वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैश्च संहितास्मृतिभिस्तथा ॥८॥
पुराणैरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः ॥ ऋषीन् प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः ॥९॥
तैः प्रवर्तितधर्मास्तु वर्णाश्रमविभागशः ॥ प्रजाः श्रद्दधिरे सर्वाः स्वोचितान् विष्णुतोषदान् ॥१०॥
तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रयान् द्रष्टुमीश्वरः ॥ हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्भीषार्थं परीक्षया ॥११॥
अनूना कुशलान्यत्र धर्मान् कुर्वन्ति वै प्रजाः ॥ स कालको भवेद्विद्धन्निति तं चिन्तयन् प्रभुः ॥१२॥
वर्षाकालो मया सृष्टः सीदन्त्यस्ता इमाः प्रजाः ॥ तत्रानूनाश्च कुर्वन्ति धर्मान् पङ्काद्युपद्रुताः ॥१३॥

करने वालों पर उचित श्राद्धा करने लगी ॥ १० ॥ सबके हृदय में बसने वाले अविनाशी विष्णु भगवान् ने यह देखने के लिये कि उनकी आश्रयभूत प्रजा अपने धर्म में प्रवृत्त है कि नही तथा उनको भय दिखलाने ओर परीक्षा करने के लिये संसार मे साक्षात् आये ॥११॥ प्रभु को यह जानने की चिन्ता हुई कि वह कौन सा समय है जिसमें प्रजा सर्वश्रेष्ठ धर्मों को करती है ॥१२॥ ये प्रजा मेरे बनाये हुए वर्षा काल में कष्ट उठाती है, और कीचड़ इत्यादि उपद्रवों से पीड़ित होकर श्रेष्ठ कर्मों को

नहीं करतीं ॥ १३ ॥ यह देखकर मुझे क्रोध होता है और सन्तोष नहीं होता, मेरी दृष्टि में वे कष्ट न उठावें इसलिये मैं इनको देता हूँ ॥ १४ ॥ यदि शरद् ऋतु बनी रहे तो खेती की पूर्ति नहीं हो सकती। कोई तो वर्षा से त्रस्त रहते हैं, कोई पक्के फल की इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥ राजन्! कोई तो ठंड से पीडित होते हैं, तब इनको देखकर मुझे रोष आता है, इस विपरीत अवस्था को देखते हुए मुझे सन्तोष नहीं होता ॥ १६ ॥ हेमन्त ऋतु आजाने पर लोग प्रातःकाल नहीं

तान् दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्न मे भवेत् ॥ मयेप्सिता न सीदन्तु तस्मात्तान्न विलोकये ॥१४॥
शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते ॥ केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः ॥१५॥
केचिच्छीतार्दिता राजंस्तान् दृष्ट्वा रोष एव मे ॥ वैगुण्यं पश्यमानस्य न मे तोषोऽभिजायते॥१६॥
उत्थापनं तु नेष्यन्ति प्रातर्हेमन्त आगते ॥ कोपो मेऽनुत्थितान् दृष्ट्वा प्रातः सूर्योदये सति ॥१७॥
शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकाल इमाः प्रजाः ॥ तथा पक्वफलादानसक्ता ह्यनिशमञ्जसा ॥१८॥
उत्थापनं तु नेच्छन्ति पुनः शीतार्दिताः स्तुताः ॥ तेषां तु कर्मलोपः स्यान्नैव पूर्तिः कथञ्चन ॥१९॥

उठना चाहते, प्रातःकाल सूर्योदय हो जाने पर इनको उठे हुए न देखकर मुझे क्रोध आता है ॥ १७ ॥ इसी प्रकार से ये प्रजा शिशिर ऋतु मे भी प्रातःकाल दुखी रहती है, तथा इनको प्रतिदिन पक्के फल इत्यादि की बड़ी उत्कण्ठा रहती है ॥ १८ ॥ ये प्रजा शीत से पीड़ित होकर प्रातःकाल नही उठतीं, तब इनके कर्म का लोप होता है, जिसकी पूर्ति कभी नहीं होती ॥१९॥

यह समय उपेक्षा का नहीं है, इस चिन्ता से आकुल होकर विष्णु भगवान् ने वसन्त समय को सब आपत्ति को दूर करनेवाला जाना ॥ २० ॥ तब स्नान, दान तथा यज्ञ क्रिया और भोग तथा नाना प्रकार के धर्म करने के अनुकूल यह ऋतु हुआ ॥२१॥ इसमें निश्चय करके उत्तम पदार्थ विना कष्ट के प्राप्त होते हैं और किसी न किसी द्रव्य से शरीरधारियों का सन्तोष होता है ॥ २२ ॥ वही पदार्थ विष्णु के आश्रयभूत जीवों के धर्मों का साधन है, वसन्त काल में सब पदार्थ प्राणियों को सुख देने

प्रेक्षायाः समयो नार्थमिति चिन्ताकुलो विभुः ॥ वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम् ॥२०॥
स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोग एव च ॥ नानाधर्मविधाने च ह्यनुकूलो ह्यसावृतुः ॥२१॥
अप्रयासेन लभ्यानि द्रव्याशयसुभृतां ध्रुवम् ॥ येन केन च द्रव्येण तुष्टिस्तनुभृतां भवेत् ॥२२॥
विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम् ॥ वसन्ते सकलं द्रव्यं प्राणिनां तु सुखावहम् ॥२३॥
दानयोग्यं कर्मयोग्यं भोगयोग्यं तु सर्वशः ॥ निर्धनानां तु पङ्ग्वादिविकलानां महात्मनाम् ॥२४॥
द्रव्याणि च सुलभ्यानि जलादीनि न संशयः ॥ द्रव्यैरेतैरात्महितं धर्मं कुर्वन्ति मत्प्रियाः ॥२५॥
पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः ॥ स्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैः पादप्रक्षालनादिभिः ॥२६॥

वाले होते हैं ॥ २३ ॥ सभी दान के योग्य, कर्म के योग्य और भोग के योग्य होते हैं। दरिद्र, पंगु, कष्ट-पीड़ित तथा महात्माओं को ॥ २४ ॥ निस्सन्देह जल इत्यादि सभी द्रव्य सहज में मिल जाते हैं। मेरे प्रिय इन द्रव्यों से अपने हित धर्म को करते हैं ॥ २५ ॥ पत्र से, पुष्प से, फल से, मूल से, शाक से तथा प्रिय वचन से, माला, ताम्बूल, चन्दन इत्यादि से

और पैर धोने इत्यादि से ॥ २६ ॥ विनय इत्यादि से मैं इनको वर देता हूँ, ऐसा कहते हुए और विचार करते हुए विष्णु भगवान् ने लक्ष्मी के साथ प्रस्थान किया ॥ २७ ॥ सर्वत्र जङ्गलों तथा फूले हुए पुष्पों को देखते हुए, हृष्ट पुष्ट जनों से व्याप्त तथा उन्मत्त भ्रमर और पक्षियों से सेवित ॥ २८ ॥ आश्रमों को, घरों को, वन तथा ग्राम के निवासियों को, प्राङ्गण, सुन्दर बगीचे और स्थलों को ॥ २९ ॥ विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी को दिखलाते हुए तथा देवताओं से, मुनिवरों से, सिद्ध, चारण, गन्धर्व

प्रश्रयाद्यैरहं तेषां वरदोऽहमितीरयन् ॥ सञ्चिन्त्य भगवान्विष्णु प्रतस्थे रमया सह ॥२७॥
वनानि सर्वतः पश्यन् विकसत्कुसुमानि च ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णं मत्तालिद्विजसेवितम् ॥२८॥
आश्रमाणां गृहाणां च वनग्रामनिवासिनाम् ॥ प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च ॥२९॥
रमायै दर्शयन्विष्णुः सह देवैर्महेश्वरैः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः ॥३०॥
स्तूयमानोऽभ्यगाद्गेहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम् ॥ मीनादिकर्कटान्तं वै स तिष्ठन् रमया सुरैः ॥३१॥
सार्द्धं प्रतीक्ष्य पुरुषान् कृताकृतसपर्यकान् ॥ तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥३२॥

किन्नर तथा राक्षसों से ॥ ३० ॥ स्तुति किये जाते हुए वर्णाश्रम निवासियों के घरों में गये और मीन संक्रान्ति से लेकर कर्क की संक्रान्ति के अन्त तक वहीं रहे, लक्ष्मी और देवताओ के ॥ ३१ ॥ साथ पुरुषों की करने और न करने योग्य पूजा को देखकर वहाँ धर्म करने वाले पुरुषों को इनके चाहने के मनोरथ दिये ॥ ३२ ॥ उन्मत्त पुरुषों के आचरण न सहा, इनका आयुष्य,

धन इत्यादि हरण किया। जो वैशाख महीने में परमात्मा की पूजा करते हैं ॥ ३३ ॥ और भगवान् की, चलमूर्ति साधुओं की जो पूजा करते हैं, उनके अन्य मासों में किये हुए कर्म के लोप को वह क्षमा करते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार देश में आये हुए राजा को देखकर उसके देश की प्रजा बहुमूल्य उपहारों की भेंट उसको करती है ॥३५॥ और राजा इनके परिमाण से जान

मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम् ॥ यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्यां परमात्मनः ॥३३॥
तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनां यत्र वै विभुः ॥ मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपं सहिष्यते ॥३४॥
यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाः प्रजाः ॥ यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः ॥३५॥
तदाकारादिकं न्यूनं पूर्णं जानाति पार्थिवः ॥ पुनरप्यधिकं चेष्टं तुष्टो दास्यति निश्चितम् ॥३६॥
तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोति च ॥ तथा विष्णुः स्वकीयानां वैशाखे माधवागमे ॥३७॥
सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान् मनोरथान् ॥ अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनि हरत्यलम् ॥३८॥

लेता है कि यह पूर्ण या कम है और जिसका उपहार अधिक होता है, उसको निश्चय इष्ट मनोरथ देता है ॥ ३६ ॥ और जो उसकी पूजा नहीं करता उसको दण्ड देता है, इसी प्रकार से विष्णु भगवान् माधवप्रिय वैशाख मास में अपनी सृष्टि के ॥ ३७ ॥ पूजा करने वाले पुरुषों को इष्ट मनोरथ देते हैं और न करनेवालों के धन इत्यादि को निश्चय हर लेते हैं ॥ ३८ ॥ धर्म की रक्षा

करने वाले, शार्ङ्गी, देवों के देव, महाविष्णु का यह परीक्षा—काल है। अतएव यह मास अवश्य सब महीनों मे उत्तम है ॥३९॥

धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ परीक्षाकाल एवायं तस्मान्मासोत्तमो ह्ययम् ॥३९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणं नामपञ्चमोऽध्यायः५

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख महात्म्य के नारद और अम्बरीप के संवाद में वैशाखश्रेष्ठत्व निरूपण नाम का पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ।



नारदजी बोले—हे राजन् ! वैशाख महीना मे मार्ग में थके हुए प्यास से पीड़ितो को जो जलदान नहीं करता, वह पक्षियोनी को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इसके उदाहरण में मैं ब्राह्मण और छिपकली का परम अद्भुत प्राचीन इतिहारा कहता हूँ ॥ २ ॥ प्राचीन काल में इक्ष्वाकु वंश मे हेमाङ्ग नाम का एक राजा था, वह जितेन्द्रिय था और उसने अपने शत्रुओं को जीत लिया था, वह ब्राह्मणों में श्रद्धा रखता था और इनकी निन्दा न करता था ॥ ३ ॥ इस राजा ने संख्या में उतनी गाय

नारदउवाच॥वैशाखेऽध्वश्रमार्तानां तृषार्त्तानां महीपते॥जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्॥१॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥२॥
पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यश्च वदान्यश्च जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥३॥
यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तो जलबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा ददात्यसौ ॥४॥
येनेष्टं यज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥५॥
तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तजलं चैकं सुखलभ्यधिया नृप ॥६॥

दान दिया, जितने कण भूमि में हैं, जितने जल के विन्दु हैं, जितने आकाश में तारे हैं ॥ ४ ॥ इसके किये हुए यज्ञों की कुशा से सुन्दर पृथ्वी पर कुशा ही कुशा हो गया, और गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण इत्यादि से इसने बहुत से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ॥ ५ ॥ ऐसे कोई दान नहीं सुने जाते, जिनको उसने न किया हो, हे राजा ! सुख प्राप्ति करने वाले उस राजा ने केवल जल का दान नहीं किया ॥ ६ ॥ ब्रह्मपुत्र महात्मा वसिष्ठ के समझाने पर भी जल विना दान का सर्वत्र मिलता है, इसके

दान देने से क्या फल होगा ॥ ७ ॥ ऐसा तर्क करते हुए उस दुर्बुद्धि राजा ने जल का दान नहीं किया, अलभ्य वस्तु के दान करने से पुण्य होता है; यह कहना उचित भी है ॥ ८ ॥ उसने ब्राह्मणों की, पंगु, दरिद्र तथा वृत्तिहीनों की पूजा किया, परन्तु श्रोत्रियों की तथा तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की पूजा नहीं किया ॥ ९ ॥ प्रसिद्ध लोगों को सब लोग पूजते हैं, परन्तु अनाथो, अनपढो, पंगुओं तथा कुटुम्बियों तथा ॥ १० ॥ दरिद्रों की बुरी गति होती है, अतएव ये मेरे दया के

बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना ॥ अमूल्यं सर्वतोलभ्यं तद्दातुः किं फल भवेत् ॥७॥

दुर्बुद्धिर्हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्विभुः ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत् ॥८॥

स आनर्च द्विजान् व्यङ्गान् दरिद्रान् वृत्तिकर्शितान्॥नार्चयच्छ्रोत्रियान् विप्रांस्तत्त्वज्ञान्ब्रह्मवादिनः॥९॥

प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका समर्हणैः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च कुटुम्बिनाम् ॥१०॥

दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्त मे दयास्पदाः ॥ इति दुर्धीर्न पात्रेषु दत्तवान् किमपि स्वयम् ॥११॥

तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वाऽभवत् सप्तजन्मसु ॥१२॥

पात्र हैं। ऐसा विचार करके इस दुर्बुद्धि ने स्वयं योग्य पुरुषों को कुछ दान नहीं दिया ॥ ११ ॥ इस बड़े पातक से उसने तीन जन्म तक चातक योनि को प्राप्त किया। एक जन्म में गिद्ध की योनि तथा सात जन्म तक कुत्ते की योनि प्राप्त किया ॥ १२ ॥ बाद मे यह राजा राजा के घर छिपकिली की योनि मे उत्पन्न हुआ, इस राजा का नाम श्रुतकीर्ति था और

यह मिथिला देश का राजा ॥ १३ ॥ यह दुरात्मा छिपकिली होकर घर के द्वार की देहली पर रहती हुई, कीड़ों को खाती हुई अट्ठासी बरस तक बनी रही ॥ १४ ॥ किसी समय ऋषियों में श्रेष्ठ श्रुतदेव नाम के मुनि मध्याह्न के समय थके हुए विदेह के राजा के घर आये ॥ १५ ॥ उनको देखकर एकाएक उठकर और प्रसन्न होकर राजा ने मधुपर्क इत्यादि से

पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका ॥ श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्य मिथिलाधिपतेर्नृप ॥१३॥
गृहद्वारप्रतोल्यां च वर्तते कीटकाशना ॥ अष्टाशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥१४॥
विदेहाधिपतेर्गेहे कदाचिदृषिसत्तमः ॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रान्तो मध्यान्ह आगतः ॥१५॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कादिभिः पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥१६॥
आपो मूर्ध्ना वहन् क्षिप्रं तदोत्सिक्तैश्च विन्दुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥१७॥
सद्यो जातस्मृतिरभूत्स्मृतकर्मातिदुःखिता ॥ त्राहि त्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागतम ॥१८॥
तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत् ॥ कुतः क्रोशसि गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥१९॥

उनकी पूजा करके उनके चरणों को धोया ॥ १६ ॥ और जल्दी से जल को अपने मस्तक पर छिड़का, इस छिड़के हुए जल के बूँद भाग्यवश छिपकिली पर पड़े ॥ १७ ॥ उसको तुरत याद आ गया और वह अपने दुःखों को यादकर दुःखी हुई और घर में आये हुए ब्राह्मणों से "मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो" चिल्लाकर कहने लगी ॥ १८ ॥ इस कीड़े के चिल्लाने

को सुनकर ब्राह्मणों ने आश्चर्य में आकर कहा—हे छिपकिली ! तू क्यों रोती है, किस कर्म से तेरी यह दशा हुई है ? ॥ १९ ॥ तू देवता है, पुरुष है, कोई राजा या ब्राह्मण है ? हे महाभाग ! तू कौन है ? कह, मैं आज तेरा उद्धार करूँगा ॥ २० ॥ ऐसा पूछने पर वह राजा महामुनि श्रुतदेवजी से बोले—हम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे और शास्त्रविद्या में निपुण थे ॥ २१ ॥ पृथ्वी में जितने कण हैं, जितने जल के विन्दु हैं, जितने आकाश मे तारे हैं, उतनी संख्या मे मैंने गाय दान

त्वं देव पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथवा ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥२०॥

इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामुनिम् ॥ वयमिक्ष्वाकवो भूमन् शस्त्रविद्याविशारदाः ॥२१॥

यावन्त्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा ददाम्यहम् ॥२२॥

सर्वैर्यज्ञैर्मया चेष्टं पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यापि च दत्तानि धर्माद्राज्यमनुष्ठितम् ॥२३॥

तथापि दुर्जतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥२४॥

सप्तजन्मसु च श्वत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ॥ सिञ्चतानेन भूपेन तव पादावनेजनीः ॥२५॥

दिया था ॥ २२ ॥ मैंने सब यज्ञ किये थे और सब प्रकार के चरित्रो को पूर्ण किया था, दान भी दिये थे और स्वयं धर्म-पूर्वक राज्य भी किया था ॥ २३ ॥ तब भी स्वर्ग मे गये बिना मेरी बुरी गति हुई, मुझे तीन बार चातक की, एक जन्म में गिद्ध की योनि प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मण ! पूर्वकाल मे मुझे सात जन्म तक कुत्ते की योनि भोगनी पड़ी, इस राजा से

पाँव धोने मे पानी छिड़कने से जल के ॥ २५ ॥ बिन्दु दूर जाकर किसी तरह मुझ पर पड़े, इससे मुझे पूर्व जन्म की याद आई और पूर्व जन्म के पाप हट गये ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मण ! मुझे अट्ठाइस जन्म तक छिपकिली की योनि मे रहना पड़ेगा और ऐसे ही दृश्य देखने पड़ेंगे, इस भयङ्कर जन्म से मैं डरता हूँ ॥ २७ ॥ मुझे इसके कारण देख नहीं पड़ते, विस्तारपूर्वक कहिये। इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मण ने ज्ञानचक्षु द्वारा कारण जानकर कहा ॥ २८ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे बुरी योनि का कारण

बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहं कथञ्चन ॥ तेन जन्मस्मृतिरभूत्सर्वं पाप्मा हतश्च मे ॥२६॥
गोधाजन्मनि भाव्यानि ह्यष्टाविंशति मे द्विज ॥ दृश्यते दैवदिष्टानि बिभ्यते जन्मभिर्भृशम् ॥२७॥
न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञात्वा विज्ञानचक्षुषा ॥२८॥
शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम् ॥ न जलं तु त्वया दत्तं वैशाखे माधवप्रिये ॥२६॥
तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम् ॥ नाध्वगानां द्विजातीनां धर्मकालेऽप्यजानता ॥३०॥
तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रं प्रति दत्तवान् ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥३१॥

मैं कहता हूँ, सुनो। तुमने माधव के प्रिय वैशाख महीने में जल का दान नहीं किया ॥ २९ ॥ जल को सुलभ तथा अमूल्य जानकर मार्ग में चलने वाले ब्राह्मणों को ग्रीष्म ऋतु में अज्ञानता से ॥ ३० ॥ नहीं दिया तथा सुयोग्य को छोड़कर अयोग्य को दान दिया, जलती हुई अग्नि को छोड़कर राख पर आहुति नहीं दी जाती ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! मनुष्य काँटेदार

वृक्ष का पूजन नहीं करते तो भी ये सेवा के लिये शास्त्रों मे प्रशस्त हैं ॥ ३२ ॥ विशिष्टता के कारण वृक्षों में पीपल का पेड़ पूजा जाता है, तुलसी को छोड़कर कँटेरी की पूजा क्यों नहीं की जाती ? ॥ ३३ ॥ पूजा करने के लिये अनाथत्व प्रयोजक नहीं होता, पंगू इत्यादि अनाथ होते है, परन्तु ये केवल दया के पात्र होते हैं ॥ ३४ ॥ तपस्वी, ज्ञानी तथा वेद और शास्त्र के पण्डित विष्णु के रूप हैं, ये सदा पूजा करने के योग्य हैं, दूसरे लोग कदापि नहीं हैं ॥ ३५ ॥ इनमें भी ज्ञानी लोग

कण्टकान्वितवृत्तस्य न कुर्वन्ति समर्चनम् ॥ जनास्तथापि सेवार्थे शस्ताः शास्त्रेषु भूमिप॥३२॥
विशिष्टत्वात्पादपानामश्वत्थः सेव्यतां गतः॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य बृहती पूज्यते न किम्॥३३॥
अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोचकतामियात् ॥ पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथाश्च दयापात्रं हि केवलम्॥३४॥
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा श्रुतिशास्त्रविशारदाः ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥३५॥
तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं प्रिया विष्णोः सदैव हि॥ ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः॥३६॥
तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः॥ अवज्ञा साधुवृत्तानामिहामुत्र च दुःखदा ॥३७॥

विष्णु भगवान् को सदा ही बहुत प्रिय हैं, हे भूपाल ! ज्ञानियों में भी विष्णु ही सदा प्रिय हैं ॥ ३६ ॥ इसलिये ज्ञानी सदा पूज्य है और पूज्य से पूज्यतर कहा गया है, जो साधु वृत्तिवालों की निन्दा करता है, वह इस संसार में तथा परलोक में दुःख प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ महान् पुरुषों की सेवा ही सब अर्थों का कारण होती है, करोड़ों अन्ध जातियाँ उचित

मार्ग को नहीं देखतीं ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार से मन्दबुद्धियों की संगति लाभदायक नहीं होती। जलमय तीर्थ, मिट्टी तथा शिला के बने जो देवता हैं ॥ ३९ ॥ वे बहुत काल में पवित्र करते हैं, परन्तु साधुलोग केवल दर्शन से पवित्र करते हैं, सुशिक्षित लोग साधु सेवा से कभी भी दुःख नहीं भोगते ॥ ४० ॥ जिस प्रकार से अमृत पान करने से जन्म, मृत्यु, जरा इत्यादि पीड़ा नहीं देते। तूने न तो जल दान किया और न साधुओं की सेवा किया ॥ ४१ ॥ हे इक्ष्वाकु के पुत्र! इसी से

सेवा वै महतां पुंसां पुमर्थानां हि कारणम् ॥ कोटयोऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथा पथम् ॥३८॥
एवं मन्दायुतानां तु सङ्गतिर्नार्थदा भवेत् ॥ यान्यम्मयानि तीर्थानि ये देवा मृच्छिलामयाः ॥३९॥
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ न साधुसेवया क्वापि सीदन्ते वै सुशिक्षिताः ॥४०॥
जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाप्यायिता यथा ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः ॥४१॥
तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन ॥ वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥४२॥
भूतं भव्यं भवेद्येन कर्मजातं विजेष्यसि ॥ इत्युक्त्वाऽऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥४३॥

तैंने यह दुर्गति प्राप्त किया, वैशाख महीने में मैं अपने किये हुए पुण्य को तेरी शान्ति के लिये तुझे देता हूँ ॥ ४२ ॥ जिससे भूतकाल में किये हुए कार्य दिव्य होंगे और तू विजयी होगा। ऐसा कहकर जल स्पर्श करके उसको उत्तम पुण्य दिया ॥ ४३ ॥ जब ब्राह्मण ने एक दिन के स्नान करने के फल को दिया, तो इससे उराके सम्पूर्ण पाप नाश हो गये और

उसने छिपकिली की योनि को त्यागकर ॥ ४४ ॥ तुरत ही अपने कर्मों के अनुसार पुरुष रूप में देख पड़ा और दिव्य माला, वस्त्र तथा आभूषणयुक्त होकर दिव्य विमान पर चढ़कर ॥ ४५ ॥ सब लोगों के देखते हुए मिथिला के राजा के घर के भीतर हाथ जोडकर, परिक्रमा करके तथा प्रणाम करके ॥ ४६ ॥ आज्ञा पाकर देवताओं से प्रशंसा किया जाता हुआ दिव्यरूप, महातेजस्वी, अप्सरागण से सेवित वह राजा स्वर्ग को चला गया ॥ ४७ ॥ और वहाँ पर निरन्तर एक हजार वर्ष

यदा दत्तं ब्राह्मणेन स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ तेन ध्वस्ताखिलाघस्तु त्यक्त्वा सा गृहगोधिका ॥४४॥
रूपं कर्मोचितं घोरं सद्योऽदृश्यत पूरुषः ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥४५॥
पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥४६॥
अनुज्ञातो ययौ राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ दिव्यरूपो महातेजा अप्सरोगणसेवितः ॥४७॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् वर्षायुतमतन्द्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले काकुत्स्थोऽभून्महाप्रभुः ॥४८॥
सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ॥ देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः ॥४९॥
बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान् ॥ अनुष्ठायाखिलान् धर्मांस्तेन ध्वस्ताखिलाशुभः ॥५०॥

तक उत्तम भोगों को भोगकर इक्ष्वाकु कुल में काकुत्स्थ बड़ा राजा हुआ ॥ ४८ ॥ सप्त द्वीप वाली पृथ्वी का पालन करने वाला, ब्राह्मणों का भक्त तथा साधु भक्त हुआ। वह महाप्रभु इन्द्र का मित्र तथा विष्णु भगवान् का अंश हुआ ॥ ४९ ॥ तब वसिष्ठ ऋषि ने उसको वैशाख महीने में करने योग्य सब सुन्दर-धर्म समझाये, जिससे सम्पूर्ण पाप नाश हुए ॥ ५० ॥

दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके वह विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुआ, इस कारण से वैशाख महीना सब शुभ फलों को देने वाला है। इसमें किये हुए सब मनुष्यों के यथोक्त कार्य हैं ॥ ५१ ॥ आयु और यश और पुष्टि देते हैं। बड़े-बड़े पाप

दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान ॥ वैशाखः शुभदस्तस्मात् पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः ॥५१॥
आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः ॥ पुमर्थानां निदानं च विष्णुः प्रीणात्यनेन तु ॥५२॥
चातुर्वर्ण्यैर्नरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः ॥ अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे ॥५३॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नाश होते हैं, पुरुषों के सब अर्थ पूर्ण होते हैं तथा विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ चारो वर्ण तथा चारो आश्रम वाले मनुष्यों को विष्णु भगवान् के प्रिय वैशाख मास में कहे हुए महा धर्मों को करना चाहिये ॥ ५३ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष संवाद में गृहकोधिकाख्यान (छिपकिली कथा) नाम का छठां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



नारदजी बोले–धर्म जानने वालों में श्रेष्ठ मिथिला के राजा ने इस अद्‌भुत घटना को देखकर और आश्चर्य युक्त होकर सुख से बैठे हुए ब्राह्मण से यह कहा ॥ १ ॥ मिथिला के राजा बोले–मैंने यह आश्चर्य तथा साधुओं के चरित्र को देखा, जिस धर्म से इक्ष्वाकु वंश का राजा मुक्त हुआ ॥ २ ॥ उस धर्म को विस्तार पूर्वक सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है, हे विद्वन् ! श्रद्धायुक्त मुझे कृपाकर विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ३ ॥ इस प्रकार से भली भाँति पूछने पर महात्मा श्रुतदेव जी धन्य है !

नारदउवाच।राजा तदद्भुतंदृष्ट्वामैथिलोधर्मवित्तमः। कृताञ्जलिः सुखासीनं विस्मितोवाक्यमब्रवीत्१।
मैथिलउवाच॥ दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितं तथा॥येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः॥२॥
तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ मह्यं श्रद्धावते विद्वन् कृपया विस्तराद्वद ॥३॥
इति राज्ञा सुसम्पृष्टः श्रुतदेवो महामनाः ॥ साधु साध्विति सम्भाष्य व्याजहार नृपोत्तमम् ॥४॥
श्रुतदेवउवाच॥ सम्यग्व्यवसिताबुद्धिस्तवराजर्षिसत्तम॥वासुदेवप्रियान्धर्माञ्छ्रोतुंयस्मान्मतिस्तव।५।
बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः ॥ वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते ॥६॥

[illegible] ऐसा कहकर उस श्रेष्ठ राजा से कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रुतदेवजी बोले–हे राजर्षिश्रेष्ठ ! तेरी बुद्धि बहुत अच्छी है, [illegible] विष्णु भगवान् के प्रिय धर्मों को सुनना चाहता है ॥ ५ ॥ अनेक जन्मों के उपार्जित पुण्य के विना किसी भी [illegible] वासुदेव भगवान् की कथा–वार्ता में नहीं लगती ॥ ६ ॥ राजाधिराज होकर तेरी ऐसी बुद्धि हुई है, इससे मैं

तुझे साधुओं में उत्तम शुद्ध भागवत मानता हूँ ॥ ७ ॥ इसलिये हे सौम्य ! शुद्ध भागवत के धर्मों को तुझसे कहता हूँ,
जिनको जानकर प्राणी जन्म तथा संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार से पवित्रता, स्नान, सन्ध्या,
तर्पण, अग्निहोत्र और श्राद्ध है, उसी प्रकार से वैशाख मास की उत्तम क्रिया हैं ॥ ९ ॥ माधवप्रिय वैशाख मास में धर्मों

येन राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी ॥ शुद्धं भागवतं मन्ये तेन त्वां साधुसत्तमम् ॥७॥
तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य धर्मान् भागवताञ्छुभान् ॥ यान्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥८॥
यथा शौचं यथा स्नानं यथा सन्ध्या च तर्पणम् ॥ अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रियाः॥९॥
वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत् ॥ न वैशाखसमो धर्मो धर्मजातेषु विद्यते ॥१०॥
सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजारञ्जनका इव ॥ उपद्रवैश्च लेप्यन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥११॥
सुलभाः सकला धर्माः कर्तुं वैशाखचोदिताः ॥ उदकुम्भः प्रपादानं पथि च्छायासुनिर्मितम् ॥१२॥
उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा ॥ तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम् ॥१३॥

को न करके मनुष्य स्वर्ग में नहीं जाता, सब धर्मों में वैशाख मास के धर्म के समान दूसरा धर्म नहीं है ॥१०॥ बहुत से धर्म
ऐसे हैं जो प्रजा को आनन्द देते हैं, परन्तु उपद्रवों से ये नाश हो जाते हैं, इसमें कुछ विचार की बात नहीं है ॥११॥ वैशाख
महीने में करने योग्य सब धर्म सुलभ हैं, यथा जल के घड़े का दान, पौसरा चलाना, मार्ग में सुन्दर छाया लगवाना ॥१२॥

जूता, खड़ाऊँ तथा छाता और पंखा दान करना, तिल सहित मधु दान करना, थकावट हटाने वाला गोरस दान करना ॥ १३ ॥ बाउली, कुँवा, तालाब इत्यादि बनवाना, पथिकों के लिये आश्रय बनवाना, नारियल, ऊख, कपूर तथा कस्तूरी का दान करना ॥ १४ ॥ गन्ध लगाना, तथा हे भूपति। पलङ्ग या खटिये का दान करना, आम के फल सुन्दर स्वादिष्ट ककड़ी का दान करना ॥ १५ ॥ दवना तथा सुगन्धरा के फूलों का दान करना तथा सायंकाल के समय गुड़ और

वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम् ॥ नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च ॥१४॥
गन्धानुलेपनं शय्या खट्वादानं च भूपते ॥ तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम् ॥१५॥
दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम् ॥ चित्राण्यन्नानि पूर्णायां दध्यन्नं प्रत्यहं तथा ॥१६॥
ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम् ॥ रवावनुदिते पूर्वं प्रातःस्नानं दिने दिने ॥१७॥
मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा ॥ अभ्यङ्गवर्जनं चैव तथा वै पत्रभोजनम् ॥१८॥
मध्ये मध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन ॥ सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैः प्रत्यहं पूजनं हरे ॥१९॥

जल देना, पूर्णिमा के दिन तरह-तरह के अन्न तथा प्रतिदिन दधि और अन्न का दान देना ॥ १६ ॥ सर्वदा ताम्बूल का दान देना, चैत्र की आमावस्या के दिन करीर दान देना, सूर्य के उदय होने से पहिले प्रातःकाल प्रतिदिन स्नान करना ॥ १७ ॥ मधूसूदन भगवान् की पूजन, इनकी कथा सुनना, तेल शरीर में न लगाना, पत्ते पर भोजन करना ॥ १८ ॥ बीच-बीच में

थकावट के कारण पसीने से भीगे हुवों को पंखे से हवा करना, सुगन्धित कोमल फूलों से प्रतिदिन हरि का पूजन ॥ १९ ॥ प्रतिदिन फल, दही, अन्न, नैवेद्य लगाना, धूप-दीप करना, गौओं को गोग्रास देना, ब्राह्मणों का पैर धोना ॥ २० ॥ गुड़, अदरख तथा आँवले का मुरब्बा दान देना, पथिकों की शुश्रुषा करना, चावल और साग का दान करना, ये धर्म माधवप्रिय वैशाख महीने में उत्तम हैं ॥ २१ ॥ तथा विष्णु भगवान् को फूल अर्पण करना, समय के इत्यादि से हरी का पूजन

फलं दध्यन्ननैवेद्यं धूपदीपौ दिने दिने ॥ गोग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम् ॥२०॥ गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम् ॥ पथिकानां प्रश्रयं च दानं तण्डुलशाकयोः ॥ एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये ॥२१॥ तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजा च कालोचितपल्लवाद्यैः ॥ दध्यन्ननैवेद्यनिवेदनं च समस्तपापौघविनाशहेतुः ॥२२॥ नारी पुष्पैर्माधवं नार्चयेद्या द्विजाख्यातं मन्दिरे वा गृहे वा ॥ पुत्रं सौख्यं क्वापि नाप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन् ॥ २३ ॥ रमासहाये माधवे मासि विष्णोः परीत्यर्थै धर्मसेतोः प्रजानाम् ॥ गृहं याते

करना, दही, अन्न तथा नैवेद्य लगाना—ये सब कार्य सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले हैं ॥ २२ ॥ यदि स्त्री ब्राह्मणों से कहे हुए धर्म के अनुसार मन्दिर या घर में पुष्पों से माधव भगवान् की पूजा न करै, तो वह पुत्र तथा सुख को प्राप्त नहीं करती तो हे महात्मन्! वह अपनी तथा पति की आयुष्य का नाश करती है ॥ २३ ॥ वैशाख महीने में धर्म के सेतु विष्णु भगवान्

लक्ष्मी के साथ तथा मुनि और देवताओं के साथ प्रजा की परीक्षा करने के लिये उनके घर जाते हैं, इस समय जो मूर्ख फूलो से इनकी पूजा नहीं करता ॥ २४ ॥ वह मूर्ख रौरव नाम के नरक को प्राप्त करके बाद मे पॉच बार राक्षस की योनि को प्राप्त होता है, इस महीने में भूख से त्रस्त प्राणियोके प्राण बचाने के निमित्त सर्वदा जल तथा अन्न दान देना चाहिये॥२५॥ जलदान न देने से कीट तथा जन्तु की योनि होती है, और अन्नदान न देने से पिशाच की, हे राजन् ! अन्न न दान करने

मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः ॥२४॥ स मूढात्मा रौरवं प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम् ॥ जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन् क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः ॥२५॥ तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः ॥ अन्नादाने चानुभूतां कथां ते वक्ष्याम्येतामद्भुतां भूमिपाल ॥२६॥ रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशी क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः ॥ छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः ॥२७॥ क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य बद्धी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चासीत् ॥ मांसं चान्नं कण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव ॥२८॥

के विषय की एक अनुभव की हुई यह अद्भुत कथा तुमसे कहता हूँ ॥२६॥ रेवा नाम नदी के तीर पर मेरा पिता पिशाच हुआ था, वह अपना मांस खाता था, भूख और प्यास के कारण उसका शरीर शिथिल हो गया था, छायाहीन सेमर वृक्ष की जड़ में अन्न न मिलने के कारण उसकी चेतना नष्ट हो गई थी ॥२७॥ उसके कर्म ने भूख-प्यास बढ़ा दिया था और उसके

कण्ठ की नाली पतली हो गई थी और मांस तथा अन्न उसके कण्ठ में रुक गया था और उसको प्राण हरने वाली पीड़ा हो रही थी ॥२८॥ नदी तथा वाउली के हिलते जल को देखकर वह इनको हलाहल विष के समान जानता था, दैवयोग से गङ्गा-यात्रा करने के निमित्त मार्ग में रेवा नदी के तीर पर आया ॥२९॥ साम्हर के पेड़ की जड़ में इस अद्भुत व्यक्ति को अपना मांस काट-काट कर खाते हुए, तथा अपने कर्मों के कारण भूख और प्यास से कष्ट पाते हुए, चिल्लाते हुए तथा वारम्बार सोच

चलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कुल्यावापीसंस्थमप्यङ्ग नूनम् ॥ तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गाया-त्राकारणान्मार्गमध्ये ॥२९॥ दृष्ट्वाद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले कृन्त्वा कृन्त्वा भक्षयन्तं स्वमांसम् ॥ क्रोशन्तं तं वहुधा शोच्यमानं क्षुधातृषाव्यथितं कर्मभिः स्वैः ॥३०॥ स मां हन्तुं प्राद्रवत्क्रूरकर्मा मत्तोजसा निहतो दुद्रुवे च ॥ तं चाब्रुवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैषीरिति श्लक्ष्णया मे गिरा च ॥३१॥ कस्त्वं तात ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद ॥ इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन् पुरानर्ते भूवराख्ये च ग्रामे ॥३२॥ नाम्ना मैत्रः संकृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः ॥

करते हुए देखा ॥ ३० ॥ क्रूर कर्म करने वाला वह मुझे मार डालने के लिये दौड़ा, परन्तु मेरे तेज से दबकर भाग गया, चित्त दुखी होने से मैंने कृपा करके "तू मत डर" ये वचन कहा ॥ ३१ ॥ तू कौन है? अभी जल्दी से बोल, मैं तुझे कष्ट से मुक्त करूँगा, दुःख मत कर। ऐसा कहने पर पुत्र को न जानता हुआ मुझसे बोला—प्राचीन काल में आनर्त देश मे

भुवराख्य नाम गाँव ॥ ३२ ॥ मेरा नाम मैत्र था और मैं संकृति गोत्र मे उत्पन्न हुआ था, तप, विद्या, दान तथा यज्ञ मे मेरी भक्ति थी। मैंने सब विद्या पढ़ी और पढ़ाई तथा सब तीर्थों में स्नान किया ॥ ३३ ॥ हे अङ्ग! मैंने वैशाख नाम के महीने मे लोभवश भिक्षामात्र भी अन्न का दान नहीं किया, मैं सोचता हूँ कि मैंने इसी कारण से पिशाच योनि प्राप्त किया है, हे अङ्ग! सचमुच दूसरा कोई कारण नही है ॥३४॥ अब मेरे घर में श्रुतदेव नाम का अति प्रसिद्ध मेरा पुत्र है, उस

मयाऽधीताऽध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थावगाहः ॥३३॥ दत्तं नान्नं मासि वैशाखसंज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्यङ्ग काले॥ शोचाम्यहं प्राप्य पैशाचयोनिं नान्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग ॥३४॥ पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवेति संज्ञः ॥ वाच्या तस्मै मद्दशा चात्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभूत्पिशाचः ॥३५॥ दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गत्वा वर्तते वृक्षमूले ॥ खादन्मांसं स्वीयमेवानुखिद्यन् पितुर्मुक्त्यै मासि वैशाखसंज्ञे ॥३६॥ प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा तिलैश्च ॥ देयं चान्नं द्विजवर्याय मह्यं मुक्तो योनेर्यामि विष्णोः

मेरे पुत्र से मेरी दशा कह देना कि वैशाख महीने मे अन्न दान न करने से पिशाच हुआ है ॥३५॥ और यह भी कहना कि तेरा पिता स्वर्ग में नहीं गया, वह नर्मदा नदी के किनारे वृक्ष की जड़ मे देख पड़ता है। बड़ा दुखी है और अपना मांस खाता है, पिता की मुक्ति करने के लिये वैशाख नाम के महीने मे ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल स्नान करके और विष्णु

भगवान् की पूजा करके निश्छल रूप में तिल से तर्पण करके श्रेष्ठ ब्राह्मण को अन्न दान करके मुझे मुक्त करे और मैं विष्णु भगवान् के पद को प्राप्त करूँ ॥ ३७ ॥ तुम्हारे सामने मैंने इस प्रकार कहा है, उससे कह दो, मुझ पर यह दया करने से अवश्य सब मङ्गल और कल्याण होगा। इस प्रकार अपने पिता के वचन को सुनकर ॥ ३८ ॥ मैं अत्यन्त दुखी होकर बहुत देर तक उसके पैरो पर दण्डवत् किये पड़ा रहा और बारम्बार अपनी निन्दा करता हुआ आँखो में आँसू भरे हुए

पदं च ॥३७॥ इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्वदेति दया चैषा मत्कृते नात्र शङ्का ॥ क्षेमं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाहं भाषितं मे पितुश्च ॥३८॥ दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरिकालम् ॥ निन्दन्निन्दन् भूरि मां बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं तात दैवागतोऽहम् ॥३९॥ कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो ज्ञात्वा धर्मान्सकलान्मासि चास्मिन् ॥ उद्दिश्य त्वां लोभते विप्रवर्यै दत्तं नान्नं मासवैशाखमासे ॥४०॥ नाभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणां सोऽहं पितृघ्नश्चात्महाऽतीव पापी ॥ कर्मभ्रष्टः

कहा—'हे तात ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और अकस्मात् यहाँ आया हूँ ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणों में कर्मों से भ्रष्ट होकर कोई निन्दनीय नहीं हुआ, इस महीने के सम्पूर्ण धर्मों को जानकर श्रेष्ठ ब्राह्मण ने तुमको उद्देश करके वैशाख महीने में लोभ के कारण अन्न दान नहीं किया ॥ ४० ॥ इस क्लेश से मेरे पिता का मोक्ष नहीं हुआ, वही मैं पितृघ्न, अपना नाश करने वाला बड़ा पापी

हूँ, कर्मभ्रष्ट मनुष्य सज्जनों की सभा में सभी से निन्दनीय होता है, वही पुत्र पुत्रत्व को प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ जो महात्मा पिता के निमित्त सब प्रकार के धर्मों को करके उसका उद्धार करे और पुंनाम नरक से पिता को तारै, वही सुयोग्य पुत्र है, ऐसी वाणी को सुनकर पुत्र से प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ४२ ॥ प्रीति से अन्तरात्मा को प्रसन्न किये हुए उसने पुत्र से

सत्सभायां विनिन्द्यः सर्वैः पुत्रः पुत्रतामेति कृत्वा ॥४१॥ काल्यान्धर्मान्पितृहेतोर्महात्मा नरका-
दस्मादुद्धरेद्यस्य नाम ॥ पुं इत्याहुः पूयशोणादिभाजं श्रुत्वा वाचं चात्मजे नाञ्जसोक्ताम् ॥४२॥
पुत्रं प्राह प्रीतिहृष्टान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम् ॥ प्राप्ते मासे मेपसंस्थे च भानौ स्नानं
कृत्वा विधिवत्तर्पयित्वा ॥४३॥ निवेद्यान्नं विष्णवे मह्यमङ्ग दानं देहि द्विजवर्ये महात्मन् ॥
तस्मान्मुक्तिर्भविता सान्वयस्य तस्माच्छीघ्रं गच्छ गेहं सुखेन ॥ पित्रादिष्टः कृतयात्रः स्वगेहं
प्राप्याकरवं माधवे चान्नदानम् ॥४४॥ तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य भूयोभूयः कुर्वति क्ष्मापते

कहा कि यात्रा करके तुम घर पर शीघ्र जाओ और वैशाख मास में सूर्य के मेष राशि में जाने पर स्नान करके तथा विधि-पूर्वक तर्पण करके विष्णु भगवान् को अन्न का नैवेद्य लगाकर हे अङ्ग ! इसको श्रेष्ठ ब्राह्मण महात्मा को दो, इससे कुलसहित मेरी मुक्ति होगी, इसलिये शीघ्र घर को जाओ ॥ ४३ ॥ पिता से आज्ञा पाकर, यात्रा करके अपने घर पर जाकर, मैंने वैशाख मास में अन्न दान किया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार से मेरे पिता मुझको देखते हुए और मुझ राजा को

बारम्बार आशीर्वाद देते हुए विष्णु भगवान् के स्वर्गमें चले गये ॥ ४५ ॥ इसलिये वैशाख महीने में अन्न दान करने और
माम्॥गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं समादिश्य ह्यागगात्पश्यतो मे॥४५॥ तस्मान्मासे माधवे चान्नदानं
प्रपादानं सर्वशास्त्रेषु शस्तम् ॥ तुभ्यं प्रोक्तं धर्मसारं सुधर्म्यं किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व ॥४६॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्याय॥७॥
पौसरा चलाने की सब शास्त्रों में प्रशंसा की गई है, मैंने तुमसे धर्म का साररूप अच्छा धर्म कहा है अब कहो तुम क्या
अधिक सुनना चाहते हो ॥ ४६ ॥

श्री स्कन्द पुराण वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में पिशाच
मोक्ष प्राप्ति नाम का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ । ७ ॥



मैथिल ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इक्ष्वाकुवंश का पुत्र जल का दान न करने से तीन बार पपीहा हुआ, बाद में मेरे गृह में छिपकिली हुआ ॥ १ ॥ उसके पापकर्मों के फल स्वरूप में ऐसा उचित ही हुआ और सन्तों की सेवा न करने के कारण उसने गिद्ध की योनि पाई तथा कुत्ते की योनि ॥ २ ॥ आपने कहा कि उसने सात बार पाई, यह मुझको उचित नहीं जान

मैथिलउवाच॥ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलादानाच्च चातकः॥त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहे गृहगोधिका॥ १॥
कर्मानुगुणमेतद्धि युक्तं तस्याकृतात्मनः ॥ सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता ॥२॥
सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम् ॥ सन्तो न दूषितास्तेन तथा नापकृता अपि ॥३॥
तस्मादसेवया तस्य फलाभावो भवेद्ध्रुवम् ॥ नानार्थः करणाभावात्पापं हि परपीडनम् ॥४॥
अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान् ॥ तदेतं संशयं छिन्धि शिष्यस्याथ प्रियस्य ते ॥५॥
इति राज्ञा सुसंपृष्टः श्रुतदेवो महायशाः ॥ साधु साध्विति सम्भाष्य वचो व्याहर्तुमादधे ॥ ६ ॥

पड़ता, उसने सन्तो को दोष नही दिया और पाप भी नहीं किया ॥ ३ ॥ इसलिये उनकी सेवा न करने के कारण उसको निश्चय फल न मिलना चाहिये, दूसरो को पीड़ा देना अवश्य पाप है और अनर्थ का कारण होता है ॥ ४ ॥ उसको बिना कारण यह बुरी योनि क्यों मिली ? अपने प्रिय शिष्य की इस शङ्का को दूर कीजिये ॥ ५ ॥ राजा से ऐसा प्रश्न करने पर महा यशस्वी श्रुतदेवजी, धन्य ! धन्य । ऐसा कहकर वर्णन करने में प्रवृत्त हुए ॥ ६ ॥ श्रुतदेवजी बोले—हे राजन् ! हे पुण्या-

त्मा ! सुनो, मैं कहता हूँ, दिव्य कैलास के शिखर पर शिवजी ने पार्वतीजी से यह कहा था ॥७॥ इन सब लोकों की सृष्टि करके बाद में इनमें रहने वाले लोगों के लिये इस संसार तथा परलोक को दो प्रकार की विधि बनाई ॥ ८ ॥ प्रभु ने इनकी स्थापना के लिये प्रत्येक के तीन तीन हेतु रक्खे, यथा—जल सेवा, अन्न सेवा तथा औषधि की सेवा ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! ये तीनों इस संसार की स्थिति के कारण हैं, इस प्रकार से हे राजन् ! श्रुति में परलोक के लिये भी तीन कारण कहे गये हैं ॥ १० ॥

श्रुतदेव उवाच॥श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ॥शिवायै च शिवेनोक्तं कैलासशिखरेऽमले॥७॥
सृष्ट्वेमान् सकलाँल्लोकान् पश्चात्तेपानवस्थितिम्॥ आमुष्मिकीमैहिकीं च द्विविधां पर्यकल्पयत॥८॥
हेतुत्रयं च प्रत्येकमवस्थित्यै व्यधात् प्रभुः ॥ जलसेवा चान्नसेवा सेवा चौषधस्य च ॥ ९ ॥
त्रय एते महाभाग ऐहिकस्थितिहेतवः ॥ एवमामुष्मिके राजंस्त्रय एवेरिताः श्रुतौ ॥ १० ॥
साधुसेवा विष्णुसेवा सेवा धर्मपथस्य च ॥ पुरा सम्पादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः ॥ ११ ॥
गृहे सम्पादितं यद्वत् पाथेयं पद्धतौ यथा ॥ ऐहिका हेतवो राजन् सद्यः सम्पादितार्थदाः ॥ १२ ॥
किं चेष्टमपि साधूनां मनसो यदि दुःसहम् ॥ कुतश्चित्कारणाद्राजन् तच्चानर्थाय कल्पते ॥ १३ ॥

साधुओं की सेवा, विष्णु की सेवा तथा धर्मपथ की सेवा,—ये तीनों परलोक के हेतु पूर्वकाल से निर्माण हुए हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार से घर में इकट्ठा किया धन मार्ग में प्रयोग होता है, हे राजन् ! इस संसार में किये हुए कर्म सम्पत्ति को देने वाले होते हैं ॥ १२ ॥ और हे राजन् ! साधुओं की दुःसह इच्छा भी कभी-कभी अनर्थ का कारण होती हैं ॥ १३ ॥

तब यह स्पष्ट है कि अप्रिय वाक्य जो दुःख का हेतु होता है, तो क्यों बोले, इसका एक प्राचीन इतिहास मैं कहता हूँ ॥ १४ ॥ इस रोमाञ्चकारी, पाप नाश करने वाले अति आश्चर्य कारक वृत्तान्त को सुनकर प्राचीन काल में यज्ञ दीक्षा के लिये आये हुए दक्षप्रजापति ॥ १५ ॥ भूतपति महादेवजी को बुलाने के लिये कैलास पर गये, उनके हित की कामना करनेवाले महादेवजी उनको देखकर नहीं उठे ॥ १६ ॥ मैं सब देवताओं का गुरु हूँ, सनातन हूँ, तथा वेदों में निपुण हूँ।

अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ १४ ॥
पापघ्नं महदाश्चर्यं शृण्वतां रोमहर्षणम् ॥ यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ १५ ॥
आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम् ॥ तं दृष्ट्वा नोत्थितः शम्भुस्तस्यैव हितकाम्यया ॥ १६ ॥
सर्वामरगुरुश्चाहं छन्दोगम्यः सनातनः ॥ भृत्या ह्येते बलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥ १७ ॥
स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा ॥ गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम् ॥ १८ ॥
न सम्बन्धोगुरुत्वे च कारणं त्विति वै श्रुतिः ॥ बलं ज्ञानं तपः शान्तिर्यत्र चैवाधिकं भवेत् ॥ १९ ॥

ये सब बलि लेने वाले इन्द्रादिक देवता मेरे नौकर हैं ॥ १७ ॥ शास्त्र जानने वालों का यह मत है कि मालिक नौकर के लिये, पति अपनी भार्या के लिये तथा गुरु शिष्य के लिये न खड़ा हो ॥ १८ ॥ गुरुत्व के विषय में सम्बन्ध ही कारण नहीं होता, श्रुतिवाक्य यह है कि बल, ज्ञान, तप तथा शान्ति जिसमें अधिक होती है ॥ १९ ॥ वही गुरु कहलाता है इनके सिवाय

वे नीच भृत्य हैं, जो स्वामी इत्यादि के आने पर आदर के लिये खड़े नहीं हो जाते ॥ २० ॥ उनकी आयुष्य, धन तथा यश और सन्तति शीघ्र नष्ट हो जाती है, इसलिये यद्यपि यह मेरा प्रिय और ससुर है तौ भी मैं नहीं खड़ा होता ॥ २१ ॥ इस प्रकार सोचकर उसके हित को चाहने वाले शिवजी अपने आसन से नहीं उठे, शिवजी को न उठे देखकर प्रजापति बड़े क्रुद्ध हुए ॥ २२ ॥ और महादेवजी के सामने ही अनेक प्रकार से उनकी निन्दा करने लगे—वाह ! इस दरिद्र अकृतात्मा

स गुरुस्त्वितरेषां वै नीचाश्चेयुर्हि प्रेष्यताम् ॥ उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाग्रहात् ॥२०॥
आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्यो नश्यति सन्ततिः ॥ तस्मादहं तु नोत्तिष्ठे प्रियोऽयं श्वशुरो मम ॥२१॥
इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालासनाद्विभुः ॥ नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः ॥२२॥
अनिन्दद्बहुधा तं वै पुरतो गिरिजापतेः ॥ अहो दर्पमहो दर्पं दरिद्रस्याकृतात्मनः ॥२३॥
यस्य वित्तं बहुवयो वृषश्चर्मावशेषितः ॥ अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः ॥२४॥
वृथाऽहंकारिणो दैवं कुतो दास्यति मङ्गलम् ॥ लोके कृत्तैणचर्माणि शुचीनीति विदो विदुः ॥२५॥

को बड़ा घमण्ड है ॥ २३ ॥ जिसका धन अधिक वय वाला बैल है, जिसके शरीर में चमड़ा ही शेष रह गया है, कपालास्थि धारण करता है; अतएव बड़ा पाखण्डी है ॥ २४ ॥ ईश्वर इस वृथा अहङ्कार करने वाले को कैसे कल्याण देगा, संसार में नीति जानने वाले जानते हैं कि चर्मधारी यह पवित्र है ॥ २५ ॥ यह दरिद्र शीत से त्रस्त होकर हाथी के अपवित्र चमड़े

को धारण करता है, जिसका घर श्मशान है और सर्प आभूषण है ॥ २६ ॥ न इसमें धैर्य है, न ज्ञान है, वृकासुर ने इसको भगा दिया था, दिन-रात भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि दुर्जनों का इसका साथ है ॥ २७ ॥ न इसके कुल के विषय में कुछ सुना जाता है, न यह साधुओं से प्रशंसा किया जाता है, दुरात्मा नारद ने पूर्वकाल में वृथा इसकी प्रशंसा किया ॥ २८ ॥ इसी

धत्ते दरिद्रः शीतार्तः पवित्रं च गजाजिनम् ॥ वेश्म श्मशानं यस्य स्याद्भुजङ्गः किल भूषणम् ॥२६॥
न धीरता न च ज्ञानं वृकात्तस्मात्पलायिनः ॥ भूतप्रेतपिशाचादि दुर्जनैः संगतोऽनिशम् ॥२७॥
न कुलं श्रूयते क्वापि नासौ वै साधुसम्मतः ॥ वृथा विश्रम्भितः पूर्वं नारदेन दुरात्मना ॥२८॥
येनाहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतामुमां सतीम् ॥ पृथग्धर्मगता चैषा सुखं वसतु तद्गृहे ॥२९॥
नास्माभिः श्लाघनीयोऽसौ मत्सुतापि कथञ्चन ॥ यथा कुलालकलशश्चाण्डालस्य वशं गतः ॥३०॥
इति दक्षो विमूढात्मा ह्यनाहूय सतीं मृडम् ॥ बहुधा तं विनिर्भर्त्स्य तूष्णीमेव गृहं ययौ ॥३१॥
यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह ॥ ईजे यज्ञं विधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम् ॥३२॥

के समझाने पर मैंने अपनी कन्या सती को व्याहा, वह भी पृथक् धर्म की हो गई और सुख से इसके घर में रहती है ॥ २९ ॥ हम लोगों से प्रशंसा करने योग्य यह नही है और हमारी कन्या भी गई, जैसे कुम्हार का घड़ा चाण्डाल के हाथ चला गया हो ॥३०॥ इस प्रकार से दुर्बुद्धि दक्ष सती तथा शिव को विना बुलाये उसकी बड़ी निन्दा करके चुपचाप घर चला गया ॥३१॥

तब यज्ञशाला में जाकर, ऋत्विक् तथा मुनियों के साथ शिवजी की निन्दा करते हुए यज्ञ करने लगा ॥ ३२ ॥
ब्रह्मा तथा विष्णु को छोड़कर सब देवता आये तथा सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर लोग भी आये ॥ ३३ ॥
तब पुण्यवती सती देवी स्त्री जाति की चञ्चलता से प्रलुब्ध होकर उत्सव देखने तथा आये हुए बन्धुओं को देखने के लिये
उत्सुक हुई ॥ ३४ ॥ चञ्चल-स्त्री स्वभाव के कारण महादेवजी से रोके जाने पर भी 'अवश्य जाना चाहिए' यह निश्चय करके

ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥३३॥
तदा देवी सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात् प्रलोभिता ॥ उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बन्धूँस्तत्र समागतान् ॥३४॥
निवार्यमाणा रुद्रेण तरला स्त्रीस्वभावतः ॥ प्रत्युक्तापि पुनश्चैव गन्तव्यमिति निश्चिता ॥३५॥
स निन्दति सभामध्ये सदा मां वरवर्णिनि ॥ तच्चासह्यं च त्वं श्रुत्वा कायं सत्यं जहासि च ॥३६॥
असह्यमपि सोढव्यं ममानुग्रहमिच्छता ॥ मया यथा कृतं देवि तथा त्वं नैव वर्त्तसे ॥३७॥
तस्मान्मा गच्छ शालां वै न शुभं तु भवेद् ध्रुवम् ॥ इत्येवं बोधिता देवी चापल्यात्पुनरागमत् ॥३८॥

जाने को उद्यत हो गई ॥ ३५ ॥ शिवजी ने कहा—हे वरवर्णिनी। वह सदा सभा के बीच मेरी निन्दा करता है, वह तुमसे
सही न जायगी, उसको सुनकर तुम सचमुच शरीर को त्याग दोगी ॥ ३६ ॥ मेरी कृपा की इच्छा करनेवाली तुमको न
सहने की बात भी सहना पड़ेगा, हे देवि! मैंने जैसा किया है। वह तुमसे न होगा ॥ ३७ ॥ इसलिये तुम यज्ञशाला में मत

जाओ, निश्चय तुम्हारा कल्याण न होगा। इस प्रकार से समझाई जाने पर भी सती चपलता के कारण फिर भी गई ॥ ३८ ॥ सती घर से अकेली पैदल चलने लगी, ऐसा देखकर बैल ने शीघ्र ही उसको अपने पीठ पर बैठा लिया ॥ ३९ ॥ करोड़ों भूत समुदाय तब सती के पीछे-पीछे चले, यज्ञशाला में जाकर वह अन्तःपुर में गई ॥ ४० ॥ सती को देखकर सब लोग चुप रहे, यह देखकर दुखी होकर वहाँ से निकली और पति के वचन को स्मरण करके यज्ञमण्डप में गई ॥ ४१ ॥ सभ्य लोगों

निश्चक्राम सती गेहादेकाकी पादचारिणी ॥ तां दृष्ट्वा वृषभस्तूर्णं पृष्ठे देवीमुवाह सः ॥३९॥
कोटिशो भूतसंघाश्च अनुजग्मुः सतीं तदा ॥ यज्ञवाटं तु सा गत्वा पत्नीशालां ययौ पुरः ॥४०॥
तूष्णीमासन्ततीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता ॥ पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम् ॥४१॥
पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः ॥ सा रुद्राहुतिपर्यन्तं पश्यन्ती पितृचेष्टितम् ॥४२॥
त्यक्त्वा रुद्रं च जुह्वन्तमुवाचाश्रुप्लुतेक्षणा ॥देव्युवाच॥ महदुल्लंघनं पुंसां न प्रायः श्रेयसे भवेत्॥४३॥
लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः ॥ एवम्भूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयते हविः ॥४४॥

ने तथा उसके पिता ने उसको देखकर आशीर्वाद नहीं दिया। वह रुद्र की आहुति तक पिता की चेष्टा देखती हुई चुपचाप खड़ी थी ॥ ४२ ॥ रुद्र को छोड़कर आहुति देते देख आँख में आँसू भरकर ॥ देवी बोली—जो मनुष्य बड़ों का उलङ्घन करते हैं, उनका प्रायः कल्याण नहीं होता ॥ ४३ ॥ लोक के निर्माण करनेवाले, लोक के पोषण करने वाले, सबके प्रभु तथा नाश

जातामेकस्य दुर्बुद्धिर्हरन्त्यन्ये समागताः ॥ न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखो विधिः ॥४५॥
इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह ॥ श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा ॥४६॥
भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे ॥ बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिता हतभाग्यवान् ॥४७॥
तच्छ्रुत्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा ॥ प्रायश्चित्तं श्रुतेः कर्तुं देहं तत्याज सा सती ॥४८॥
होमाग्नौ वेदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम् ॥४९॥
आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तमखिलं तदा ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय रुद्रः कालान्तकोपमः ॥५०॥

न होने वालेऐसे शम्भु को हवि क्यों नहीं दी जाती ॥ ४४ ॥ इन आये हुए महात्माओं में से एक ने भी तुम्हारी दुर्बुद्धि हरण नहीं किया, इनका भाग्य भी उलटा देख पड़ता है ॥ ४५ ॥ उसके ऐसा भाषण करने पर पूषा देव हँसने लगे और अभाग भृगु–मोक्ष–दाढ़ी फटकारने लगे ॥ ४६ ॥ दूसरे भुजा, पैर, जांघ और काँख फटकारने लगे और हतभाग्य उसका पिता निन्दा करने लगा ॥ ४७ ॥ ऐसा सुनकर वह महादेवजी की भार्या क्रोध से मन में व्याकुल हुई और उस सती ने और ऐसा सुनने का प्रायश्चित्त करने के लिये देह को त्याग दिया ॥ ४८ ॥ और वह सबके देखते हुए वेदी के बीच में होम की अग्नि में गिर पड़ी, तब बड़ा हाहाकार हुआ और जल्दी से शिवजी के गण दौड़े ॥ ४९ ॥ और उन्होंने महादेवजी से सब वृत्तान्त कहा, यह सुनकर महादेवजी ने यमराज के समान एकाएक उठकर ॥ ५० ॥ हाथ से जटा उखाड़कर उसको पृथ्वी पर पटका, तब विपुल शरीर

धारी महावली वीरभद्र उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ उसको सौ भुजा हुईं और उसका तेज यमराज के समान था, वह हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और उसने शिवजी से कहा ॥ ५२ ॥ जिस निमित्त आपने मुझे उत्पन्न किया है, उस काम में मुझे लगाइये, ऐसा कहने पर क्रुद्ध महादेवजी ने सामने खड़े हुए उससे कहा ॥५३॥ तू मेरे निन्दक दक्ष को मार डाल, उसी के कारण मेरी प्रिया

जटामुत्पाट्य हस्तेन भूतले तामताडयत् ॥ ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः ॥५१॥
सहस्रबाहुरभवत्कालान्तकसमप्रभः ॥ बद्धाञ्जलिपुटः स्थित्वा व्याजहार हरं तदा ॥५२॥
मत्सृष्टिस्तु यदर्थं ते तदर्थं मां नियोजय ॥ इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिस्तत्पुरःस्थितम् ॥५३॥
हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया मृता ॥ भूतसंघास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः ॥५४॥
इत्यादिष्टा भगवता ययुर्दक्षसभां द्रुतम् ॥ जघ्नुः सर्वान्महावीरान् देवासुरनरादिकान् ॥५५॥
पूष्णश्च हसतो दन्ताञ्जटाभूश्च बभञ्ज ह ॥ श्मश्रूण्युत्पाटयाञ्चक्रे भृगोस्तस्य दुरात्मनः ॥५६॥
यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान् ॥ ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार सः ॥५७॥

मरी, इसी महाबली के साथ भूतों के समुदाय भी जावें ॥ ५४ ॥ भगवान् से ऐसी आज्ञा पाकर वे सब शीघ्र ही दक्ष की सभा में पहुँचे और उन्होंने देवता, दैत्य, मनुष्य इत्यादि सब बड़े-बड़े वीरों को मार डाला ॥ ५५ ॥ हँसने वाले पूषा के दाँत और जटा को नोच डाला, और उस दुरात्मा भृगु की मोंछ-दाढ़ी उखाड़ डाला ॥ ५६ ॥ उस पराक्रमी ने उन सभों

के अङ्ग जिन्होंने पहिले फड़काये थे तोड़ डाला और तब दक्ष के सिर काटने में बहुत उद्योग करने लगे ॥ ५७ ॥ परन्तु मुनि के मन्त्र के बल से वह रक्षित था, इसलिये नहीं कटता था। यह जानकर महादेवजी ने इस दुष्ट का सिर स्वयं आकर काट डाला ॥ ५८ ॥ इस प्रकार से यज्ञ मे आये हुए सबको मारकर अपने अनुचरों के साथ अपने घर आये, जो मारे जाने से बच गये थे, वे ब्रह्मा की शरण में गये ॥ ५९ ॥ इनके साथ ब्रह्माजी कैलास में शिवजी के स्थान में गये, तब अनेक

मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैवं कृन्तति तद्बलात् ॥ हरो ज्ञात्वा तु चिच्छेद स्वयमेत्य दुरात्मनः ॥५८॥
एवं मखगतान् हत्वा सानुगः स्वालयं ययौ ॥ हतावशिष्टाः केचित्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥५९॥
तैरन्वितो ययौ ब्रह्मा कैलासं तु शिवालयम् ॥ ततो रुद्रं सान्त्वयित्वा वचोभिर्विविधैरपि ॥६०॥
तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः ॥ तेनैवोज्जीवयामास सर्वान् दक्षसभागतान् ॥६१॥
ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तु तदा शिवः ॥ अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवे तु महात्मने ॥६२॥
पूष्णश्च दन्तान्न प्रादात्पिष्टादं च चकार तम् ॥ अवयवानां व्यतिकरं केषाञ्चिदपि वै शिवः ॥६३॥

वचनों से उन्होने उनके क्रोध को शान्त किया ॥ ६० ॥ उन्हीं के साथ महादेवजी यज्ञस्थान में पहुँचे और दक्ष की सभा में आये हुए सबको जिलवाया ॥ ६१ ॥ तब शिव ने प्रसिद्धि के लिये दक्ष के धड़पर बकरे का सिर लगा दिया, महात्मा भृगु को बकरे की दाढ़ी लगाई ॥ ६२ ॥ पूषा को दाँत नहीं लगाये, उसको पीसकर खाने वाला रहने दिया, शिवजी ने

विना क्रम के किसी के अङ्ग किसी में लगाये ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा तथा शिवजी से सबका कल्याण हो गया और पहिले की तरह महात्मा लोग यज्ञ करने में लग गये ॥ ६४ ॥ यज्ञ के अन्त में सब देवता लोग अपने अपने घर गये, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को करके महादेवजी महातप ॥ ६५ ॥ गङ्गाजी के तट पर पुन्नाग वृक्ष के नीचे करने लगे, दक्ष की पुत्री पतिव्रता सती देवी ने जिसने अपने शरीर का त्याग किया था ॥ ६६ ॥ हिमाद्रि की मेनका के कोंख से जन्म लिया और उसके घर

शिवमापुस्ततः सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः ॥६४॥
यज्ञान्ते सर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥ नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रो महत्तपः ॥६५॥
गंगातटे तपस्तेपे पुन्नागतरुमूलगः ॥ दक्षात्मजा सती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता ॥६६॥
जज्ञे हिमाद्रेर्मेनायां ववृधे तस्य वेश्मनि ॥ एतस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ६७ ॥
सुतीव्रतपसाऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः ॥ ६८ ॥
आयुधैरस्त्रसङ्घैश्च सर्वैरेव महाबलः ॥ रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि ॥ ६९ ॥

पलने लगी। उसी समय तारका नाम का बड़ा असुर उत्पन्न हुआ ॥ ६७ ॥ उसने अति तीव्र तपस्या से परमेष्ठी ब्रह्मा की आराधना करके देव, दैत्य, मनुष्य तथा सर्पों से न मारे जाने का वर प्राप्त किया ॥ ६८ ॥ वह महाबली दैत्य महादेवजी के पुत्र के विना किसी प्रकार के शस्त्रों से तथा अस्त्र समुदाय से न मारेगा ॥ ६९ ॥ ऐसा वर लोकपितामह ब्रह्माजी ने उसको

दिया। महादेवजी को स्त्री तथा पुत्र न होने को कहा, उसने कहा "ऐसाही होवै" ॥ ७० ॥ वर को प्राप्त करके अपने घर जाकर वह लोकों को कष्ट देने लगा, देवताओं को दास बनाया और उसके घर में देवियाँ मार्जन इत्यादि दासी का कार्य करने लगीं ॥ ७१ ॥ तब देवता लोग उससे पीड़ित होकर ब्रह्मा के शरण में गये, उनसे वर्णन की हुई पीड़ा को सुनकर ब्रह्मा ने देवताओं से यह कहा—हे देवता लोग! ॥ ७२ ॥ मैंने वर देने के समय उस दुरात्मा को यह वर दिया था कि

इति तस्मै वरं प्रादाद् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येति तथास्त्विति ॥ ७० ॥

वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान् बबाध ह ॥ दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे ॥ ७१ ॥

ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ तैःपीडां वर्णितां श्रुत्वा वेधाः प्राह सुरानिदम् ॥ ७२ ॥

वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः ॥ नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने ॥ ७३ ॥

पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा ॥ जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति च यां विदुः ॥ ७४ ॥

रुद्रोहिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ७५ ॥

महादेवजी के पुत्र के सिवाय वह किसी दूसरे से न मरेगा ॥ ७३ ॥ प्राचीन समय में शिवजी की पत्नी सती ने यज्ञ में अपना शरीर छोड़ दिया था, वह हिमाचल की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई है और उसका नाम पार्वती पड़ा है ॥ ७४ ॥ शिवजी हिमालय पर्वत के ऊपर बड़ी तपस्या कर रहे हैं, लोकेश्वर प्रभु शिवजी का पार्वती के साथ विवाह कराना चाहिये ॥ ७५ ॥

इनसे उत्पन्न हुआ पुत्र तुम लोगों के शत्रु को मारेगा, ब्रह्मा के ऐसा समझाने पर इन्द्र इत्यादि देवता अपने-अपने घर चले गये ॥ ७६ ॥ तब वे देवता लोग इन्द्र के सहित इन्द्रपुरी में गये और बृहस्पति से सलाह करके पाकशासन इन्द्र भगवान् ने ॥ ७७ ॥ अपने कार्य की पूर्ति के लिये नारद तथा कामदेव को याद किया, तब इन दोनो के वहाँ आने पर इन्द्र ने यह

तस्माज्जातः सुतः शत्रुं युष्माकं तु हनिष्यति ॥ इति ब्रह्मसमादिष्टा इन्द्राद्याः स्वगृहं गताः॥ ७६ ॥
पुनर्देवेन्द्रसदने सङ्गतैरमरेश्वरैः ॥ धिषणेनाभिसम्मन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः ॥ ७७ ॥
सस्मार च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेव च ॥ तत्रागतौ तु ततस्तौ तु बलभिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७८ ॥
हिमवन्तं भवान् गत्वा वचसा तं प्रबोधय ॥ पुत्री तव प्राक् दक्षस्य हरपत्नी महागिरे ॥ ७९ ॥
तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्ता दक्षकन्यया ॥ मृडस्तस्य सपर्यायै विनियोजय तत्प्रियाम् ॥ ८० ॥
तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः ॥ इत्यादिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम् ॥ ८१ ॥
तथैव कारयामास देवेन्द्रेणोदितं तथा ॥ पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च ॥ ८२ ॥

वाक्य कहा ॥ ७८ ॥ आप हिमाचल के पास जाकर उनसे यह कहिये कि हे हिमाचल। तेरी कन्या पहिले महादेवजी की पत्नी थी ॥ ७९ ॥ दक्ष की कन्या के विछोह में शिवजी तेरे शिखर पर तप कर रहे हैं, उनकी सेवा के लिये उनकी प्रिया को नियुक्त करो ॥ ८० ॥ वही उनकी भार्या होगी और वह उसके पति होंगे। इन्द्र से ऐसी आज्ञा पाकर नारदजी ने उस पर्वत

के पास जाकर ॥ ८१ ॥ वैसा ही किया जैसा कि इन्द्र ने कहा था। बाद में कामदेव को बुला कर इन्द्र ने यह कहा ॥ ८२ ॥ देवताओं के हित के लिये तथा शिवजी के हित के लिये वसन्त के साथ शिवजी के तपोवन में जाकर ॥ ८३ ॥ वहाँ इच्छानुरूप वसन्त के गुणों को फैलाकर जब पार्वती शिवजी के समीप होवें ॥ ८४ ॥ तब तुम बाण चलाकर महाप्रभु को मोहित करो, इन दोनों के साथ हो जाने पर तुम्हारा कार्य असफल न होगा ॥ ८५ ॥ ऐसी आज्ञा होने पर "कामदेव ने

देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च ॥ वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम् ॥ ८३ ॥
गुणान्विजृम्भयित्वा तु वासन्तान् हृच्छयावहान् ॥ यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च ॥ ८४ ॥
तदा प्रयुज्य त्वं बाणान्मोहयस्व महाप्रभुम् ॥ तयोस्तु सङ्गमे जाते कार्यं नोऽद्धा भविष्यति ॥ ८५ ॥
इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ ॥ सवसन्तः सरतिकः सानुगस्तद्वनं ययौ ॥ ८६ ॥
अकाले तु वसन्तं तु जृम्भयित्वा स्वशक्तितः ॥ तद्वने सर्वतो रम्ये मन्दानिलनिषेविते ॥ ८७ ॥
कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया ॥ प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किञ्चिद्व्याहर्तुमारभत् ॥ ८८ ॥

बहुत अच्छा" कहकर प्रस्थान किया और वह वसन्त के साथ, रति के साथ तथा अपने सेवकों के साथ उस जङ्गल में गया ॥ ८६ ॥ अपनी शक्ति से विना समय के ही वसन्त ऋतु का विस्तार किया, उस सुन्दर वन में सर्वत्र मन्द वायु बहने लगी ॥ ८७ ॥ कदाचित् महादेव ने भी पार्वती की सेवा से प्रसन्न होकर उसको अपने गोद में बैठाकर कुछ बातचीत करना

आरम्भ किया ॥ ८८ ॥ प्राणप्रिया के सङ्ग का यही समय है, ऐसा निश्चय करके उत्तम धनुष को लेकर शिवजी के पीछे की ओर चला गया ॥ ८९ ॥ और पेड़ को आड़ बनाकर एक बाण छोड़ा और दूसरा छोड़ने के लिये बडा उद्योग कर रहा था ॥ ९० ॥ इतने में मोहित चित्त होकर शिवजी चिन्ता करने लगे—मेरा मन तो कभी चलायमान नहीं होता, किसने इसको चञ्चल कर दिया ॥ ९१ ॥ इस चिन्ता से व्याकुल होकर उन्होंने बाईं ओर कामदेव को देखा, क्रुद्ध होकर ललाट की आँख को

प्राणप्रियासङ्गमस्य कालोऽयमिति निश्चितः ॥ पेशलं धनुरादाय स तस्थौ हरपृष्ठतः ॥८९॥
कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह ॥ द्वितीयमपि सन्धाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम् ॥९०॥
अथ क्षुब्धमना भूत्वा मृडश्चिन्तामवाप ह ॥ न मे मनश्चलेत् क्वापि केन वा कश्मलीकृतम् ॥९१॥
इति चिन्ताकुलो वामे पार्श्वे कामं ददर्श ह ॥ क्रुद्ध्वोन्मील्य ललाटाक्षं स्वाङ्काद्देवीमपास्य च ॥९२॥
तस्यात्क्षणः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः॥ तेन दग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः ॥९३॥
कार्यसिद्धिमपश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरा दिवम् ॥ शङ्कमानाः स्वदाहं च वसन्तो रतिरेव च ॥९४॥
निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे ॥ सन्निधानं स्त्रियो हर्तुं मृडोऽप्यन्तरधीयत ॥९५॥

खोलकर अपने गोद से देवी को हटाकर ॥ ९२ ॥ ऐसी तीक्ष्ण अग्नि उत्पन्न किया, जो लोकों को डरा देने वाली थी। उसी अग्नि से बाण लिए हुये कामदेव उसी क्षण जल गया ॥ ९३ ॥ कार्य की सिद्धि न देखकर देवता लोग स्वर्ग में भाग गये, वसन्त तथा रति अपने दाह की शङ्का करने लगे ॥ ९४ ॥ डरी हुई पार्वती देवी भी आँख मूँदकर दूर भाग गई और स्त्रियों की

समीपता हटाने के लिये शिवजी भी अन्तर्धान हो गये ॥ ९५ ॥ शिवजी तथा देवी के चित्त के हित करने वालों के लिये अनर्थ ही हुआ, यदि अप्रिय किया जाता तो क्या होता ॥ ९६ ॥ इसलिये इक्ष्वाकु वंश का पुत्र सर्वदा साधुओं को अप्रिय था और वह दुर्बुद्धि अपना हित करनेवाले सन्तों की सेवा नहीं करता था ॥ ९७ ॥ इसी कारण से इसने बड़े-बड़े दुःखों का अनुभव किया और दुर्योनि प्राप्त किया; इसलिये सब अर्थों को साधन करने वाली साधुओं की सेवा अवश्य करनी चाहिए ॥ ९८ ॥

रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देव्याश्च मनसो हितम् ॥ लेभेऽनर्थमनिर्वृत्त विप्रियं कुर्वतस्तु किम् ॥९६॥
तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा ॥ तस्मादात्महितां सेवां नाकरोन्मन्दधीः सताम् ॥९७॥
अनुभूतं महद्दुःखं तस्माद् दुर्योनिरेव च ॥ तस्मात्कार्या तु साधूनां सेवा सर्वार्थसाधिनी ॥९८॥
रुद्रस्याप्रियकारित्वात्स्मरो भाविनि जन्मनि ॥ दुःखं तु बहुलं लेभे जन्मकाले महाप्रभुः ॥९९॥
इतिहासमिमं पुण्यं ये शृण्वन्ति दिवानिशम् ॥ जन्ममृत्युजरादिभ्यो मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥१००॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कामदहनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

महाप्रभु शिवजी का अप्रिय करने वाले कामदेव ने भविष्य जन्म में तथा जन्म काल में, बहुत से दुःख प्राप्त किये ॥९९॥ जो लोग इस पुण्य इतिहास को दिन रात सुनते हैं, वे जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा इत्यादि से मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१००॥

श्री स्कन्दपुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में कामदहन नाम का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

मैथिल बोले—हे विभो! कामदेव के जल जाने पर कैसे जन्म हुआ, किस कर्म के उल्लङ्घन करने से उसको क्या दुःख हुआ ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! यह सुनने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है, मुझसे कहिये ॥ श्रुतदेवजी बोले—मैं कुमार के जन्म की कथा कहता हूँ, इसके सुनने से पाप का नाश होता है ॥ २ ॥ यह यश, पुत्र तथा धर्म को देने वाली है और सब रोगों को नाश करने वाली है, शिवजी से कामदेव के मारे जाने पर उसकी रति नाम की भार्या ॥ ३ ॥ अपने सामने पति को भस्म

मैथिल उवाच। अथ दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माभवद्विभो॥ किं दुःखमभवत्तस्मिन्कर्मणामिह लङ्घनात्१।
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे॥श्रुतदेव उवाच॥कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम्॥२॥
यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम्॥ शम्भुना तु हते कामे तत्पत्नी रतिसंज्ञका ॥३॥
मुमोह पुरतो दृष्ट्वा पतिं भस्मावशेषितम्॥ जातसंज्ञा मुहूर्तेन विललाप ह चित्रधा ॥४॥
यद्विलापाद्वनं सर्वं समदुःखमभूत्तदा ॥ तच्चिताग्नौ स्वकायं तु त्यक्तकामा च माधवम् ॥५॥
पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम्॥ स चागतश्चितिं कर्तुं वीरपत्न्या महाभुजः ॥६॥

रूप मे देख कर मूर्च्छित हो गई, घड़ी भर में सचेत होकर तरह-तरह का विलाप करने लगी॥ ४ ॥ उसके विलाप से सम्पूर्ण वन दुःखमय हो गया, उसकी चिता में अपना शरीर फेंक देने की इच्छा से उसने ॥ ५ ॥ अपने पति के मित्र वसन्त को उस समय की क्रिया करने के लिये बुलाया, वह बड़ी भुजा वाला वीर पत्नी से बनाई जाने वाली चिता को बनाने लगा

॥ ६ ॥ वह भी सखी को देखकर क्षणभर के लिये मूर्च्छित हो गया और अनेक प्रकार से रति को समझाने लगा ॥ ७ ॥ हे भद्रे ! मैं तेरे पुत्र के तुल्य हूँ, मेरे रहते हुए तुझे धर्म के निमित्त शरीर छोड़ना उचित नहीं है उसके इस प्रकार के अनेक सान्त्वन करने पर भी ॥ ८ ॥ रति ने अपना मन नहीं रोका, उसकी दृढ़ता को देखकर वसन्त ने भी नदी के तट पर चिता

स तु त्रस्तः सखीं दृष्ट्वा क्षणं मूर्च्छापरोऽभवत् ॥ रतिं तु सान्त्वयामास सान्त्वैर्बहुविधैरपि ॥ ७ ॥
पुत्रतुल्योऽस्मि ते भद्रे स्थिते मयि च नार्हसि ॥ कायं त्यक्तुं धर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपि सा ॥ ८ ॥
नैव स्थातुं मनश्चक्रे तेन संस्तम्भिता रतिः ॥ दृष्ट्वा दार्ढ्यं वसन्तोऽपि चितिं चक्रे सरित्तटे ॥ ९ ॥
साऽवगाह्य धुनद्यां च कृत्वा कार्याणि सर्वशः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं निवेश्यात्मनि वै मनः ॥१०॥
चितिमारोढुमारेभे ततोजाताऽशरीरवाक् ॥ मा प्रवेशय कल्याणि वह्निं पतिपरायणा ॥११॥
भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात् ॥ जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि ॥१२॥
भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोःप्रद्युम्नाख्यो भविष्यति॥वसिष्यसि त्वं च शापाद् ब्राह्मणः शम्बरालये॥१३॥

लगाया ॥ ९ ॥ वह भी नदी में स्नान करके तथा सब कर्मों को करके और अपनी इन्द्रियों का संयम करके और मन को स्थित करके ॥ १० ॥ चिता में चढ़ना आरम्भ किया तब यह आकाश वाणी हुई, हे पति में प्रेम रखनेवाली ! हे कल्याणि ' तू अग्नि में प्रवेश मत कर ॥ ११ ॥ शिवजी से तथा यदुवंशी श्रीकृष्ण से तेरा पति उत्पन्न होगा' यह क्रम दो जन्म तक रहेगा, इसके

बाद के जन्म में ॥ १२ ॥ महाविष्णु के कृष्णावतार से उत्पन्न होगा और यह प्रद्युम्न कहलावेगा, तू ब्रह्मा के शाप से शम्बर के घर में वास करेगी ॥ १३ ॥ प्रद्युम्न नाम के तेरे पति से तेरा समागम होगा, इस प्रकार बोल कर आकाश वाणी रुक गई ॥ १४ ॥ इस आकाश वाणी को सुनकर मरने का निश्चय करनेवाली वह रुक गई तब शिवजी से काम के मारे जाने पर देवता लोग अपने अर्थ के लिये आये ॥ १५ ॥ और रति से न देखे जाकर गुरु बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि इत्यादि देवताओं ने उस

प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या सङ्गतिश्च भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा विरराामाथ वाणी चाकाशगोचरा ॥१४॥
श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया ॥ ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात् ॥१५॥
रत्या दृष्टं प्रकुर्वाणा गुर्विन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ तां ते निवर्तयामासुर्वरेण्यां महतीं सतीम् ॥१६॥
अनङ्गोऽपि भवेत्साङ्गो मृत एवाक्षिगो भवेत् ॥ इति तां विनिवर्त्याशु धर्मं चोपदिदेशिरे ॥१७॥
पूर्वकल्पे त्वयं राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः ॥ त्वमेव पत्नी तत्रापि रजःसङ्करकारिणी ॥१८॥
तेनेयं च दशाऽभूत्ते कुर्विदानीं च निष्कृतिम् ॥ मन्दाकिन्यां तु वैशाखे प्रातःस्नानं तदा कुरु ॥१९॥

सती को बहुत वरदान दिया ॥ १६ ॥ "विना अङ्ग का भी कामदेव अङ्ग वालो की तरह होगा, मरा हुवा भी वह आँखों से देख पड़ेगा" इस प्रकार से उसको धर्म का उपदेश किया और उसको शीघ्र बिदा किया ॥ १७ ॥ पूर्वकल्प मे यह महाप्रभु सुन्दर नाम का राजा था, और रज का संकर करने वाली तू उसकी भार्या थी ॥ १८ ॥ इसी से तेरी यह दशा हुई तू अब



यह काम कर—वैशाख महीने में गङ्गा जी में प्रातःकाल स्नान कर ॥ १९ ॥ मधुसूदन भगवान् की पूजा करके दिव्य कथा को सुन, हे भामिनि ! अशून्यशयन नाम का व्रत कर ॥ २० ॥ हे भद्रे ! वैशाख महीने में इस धर्म से और व्रत से तू अवश्य अपने पति को प्राप्त करेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ ऐसा वर उसको देकर देवता लोग अपने अपने स्थान को चले गये, तब दुःख से निवृत्त होकर उस कामवती देवी ने ॥ २२ ॥ मेष संक्रान्ति में गङ्गा जी में स्नान किया

मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां दिव्यां तथा शृणु ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतमाचर भामिनि ॥२०॥
धर्मेणानेन ते भद्रे व्रतेनापि च माधवे ॥ नूनं ते भविता पत्युरुपलब्धि न संशयः ॥२१॥
इति तस्य वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथागतम् ॥ ततः कृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामवती तथा ॥२२॥
गङ्गावगाहनं चक्रे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ अशून्यशयनं नाम व्रतं चापि महामना ॥२३॥
तेन पुण्यप्रभावेण सद्यः कामोऽक्षिगोचरः ॥ अभूत्तस्या महाराज लोके चावार्यवीर्यवान् ॥२४॥
पूर्वकल्पे त्वयमपि राजा धर्मपरायणः ॥ वैशाखोक्तान्महाधर्मान्न चक्रे तेन वै स्मरः ॥२५॥

और अशून्यशयन नाम का बड़ा व्रत किया ॥ २३ ॥ इस पुण्य के प्रभाव से तुरत कामदेव उसकी आँखों को देख पड़ने लगा, हे महाराज ! इसका पति लोक में बड़ा पराक्रमी हुआ ॥ २४ ॥ पूर्व कल्प में यह राजा भी बड़ा धार्मिक था, इस कामदेव ने वैशाख के कहे हुए बड़े बड़े धर्मों को नहीं किया था ॥ २५ ॥ परमात्मा का पुत्र होकर भी इसने शरीर का

नाश प्राप्त किया इसने सूर्य के मेष राशि में स्थित होने पर वैशाख महीने को वृथा गँवाया ॥ २३ ॥ इससे इसकी यह अवस्था हुई, देवता और मनुष्यों की तो क्या कहना, शिवजी के अन्तर्धान होने पर पार्वती जी आशा रहित हो गईं ॥ २७ ॥ और भ्रान्त होकर चुप चाप खड़ी थीं, उसको देख कर हिमाचल पर्वत ने चकित होकर दोनों हाथों से उसको गले लगाया

देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः ॥ वृथा नीते तु वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥२६॥
अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा ॥ त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका ॥२७॥
तूर्ष्णीं स्थितां तदा भ्रान्तां तां दृष्ट्वा हिमवान् गिरिः॥चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च॥२८॥
रूपौदार्यगुणान् दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः ॥ स एव मे पतिर्भूयादिति तन्निष्ठमानसा ॥२९॥
गङ्गोपकूलमापेदे तपस्तप्तुं धृतव्रता ॥ निवारितापि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः ॥३०॥
अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः ॥३१॥
भूत्वा वर्णी तु सायाह्ने पर्णशालामुखे विभुः ॥ स्वनिष्ठमनसो दार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि ॥३२॥

और अपने घर ले गया ॥ २८ ॥ महात्मा शिवजी के रूप, उनकी उदारता तथा गुणो को देखकर उसने मन में निश्चय कर लिया कि यही मेरे पति होंगे ॥ २९ ॥ वह दृढ़व्रत होकर गङ्गाजी के तीर पर तप करने लगी, वह देवी माता, पिता तथा अपने सम्बन्धियों से रोकी जाने पर भी ॥ ३० ॥ वह जटा धारण किये हुए और विना आहार किये महालिङ्ग की पूजा

करती थी, सौ दिव्य वर्षों के अन्त में महादेवजी उसका प्रत्यक्ष हुए ॥ ३१ ॥ सायंकाल के समय शिवजी ब्रह्मचारी बनकर आये, और नाना प्रकार के वाक्यों से उसके चित्त की श्रद्धा और दृढ़ता ॥ ३२ ॥ जानकर महाप्रभु ने कहा "वर मांग, मैं देता हूँ" उस सुन्दरी ने कहा हे शिवजी ! तुम मेरे पति हो ॥ ३३ ॥ उन्होंने वही वर देकर सातों ऋषियों को याद किया, वे मुनि लोग आये और उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥ शिवजी ने कन्या के विषय में हिमाचल

ज्ञात्वाऽब्रवीद्वरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः ॥ सो वव्रे मे पती रुद्रस्त्वं भवेति मनोरमा ॥३३॥
स तथैव वरं दत्त्वा ऋषीन् सस्मार सप्त च ॥ आजग्मुस्तेऽपि मुनयः स्थिताः प्राञ्जलयः पुरः ॥३४॥
ऋषीणां ज्ञापयामास कन्यां प्रष्टुं हिमालयम् ॥ तथाऽदिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम् ॥३५॥
प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशो दश ॥ प्रत्युज्जगाम स गिरिः सप्तैतान् ब्रह्मवित्तमान् ॥३६॥
सम्पूज्य विधिवत्सर्वान् सुखासीनानपृच्छत ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहागताः॥३७॥
भवदागमनं मन्ये मम जन्मफलं त्विति ॥ न कृत्यं विद्यतेऽस्माभिः पूर्णार्थानां महात्मनाम् ॥३८॥

से पूछने के लिये ऋषियों को आज्ञा दिया, तब भगवान् से आदिष्ट होकर कन्या के लिये हिमाचल पर्वत के घर ॥ ३५ ॥ वे लोग आकाश द्वारा गये, दशों दिशा देदीप्यमान हो गईं, वह हिमाचल पर्वत इन सातों ब्रह्मवेत्ताओं को अपने साथ ले गया ॥ ३६ ॥ विधिपूर्वक इन सभों की पूजा करके सुख से इनको बैठा कर कहा—"मैं धन्य हूँ और कृतकृत्य हूँ कि आप

लोग मेरे घर पर आये ॥ ३७ ॥ मैं आप लोगों के आने को अपने पूर्वजन्म का फल मानता हूँ, पूर्णमनोरथ वाले महात्माओं के लिये हम लोगों के पास कोई पुण्य नहीं है ॥ ३८ ॥ तब भी अपना कार्य बताइये अथवा कहिये कि मुझे अभी क्या करना चाहिये, ऐसा कहने पर उन्होने महागिरि हिमालय से यह कहा ॥ ३९ ॥ हे गिरिपति। तुमने तो योग्य तथा दृढ़ वाक्य कहा, हे महोदय। अपने लोगों के आगमन का कारण तुमसे कहता हूँ ॥ ४० ॥ पार्वती नाम की तेरी कन्या

तथापि ब्रूत कार्यं वो यत्कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ इत्युक्तास्ते तथा प्रोचुर्हिमवन्तं महागिरिम् ॥३९॥

त्वया तु सदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते दृढम् ॥ अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदयम् ॥४०॥

कन्या ते पार्वती नाम पूर्वं दक्षात्मजा सती ॥ जाता तव कुमारीयं यज्ञे त्यक्तकलेवरा ॥४१॥

अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नान्यो जगत्त्रये ॥ देया सा शम्भवे देवी भवतानन्त्यमिच्छता ॥४२॥

पूर्वजन्मसहस्रेषु भवता सुकृतं कृतम् ॥ इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम् ॥४३॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा संहृष्टात्मा महागिरिः ॥ व्याजहार पुनर्वाक्यं पुत्री वल्कलधारिणी ॥४४॥

पहिले दक्ष की पुत्री सती थी, यज्ञ में शरीर त्यागी हुई यह कुमारी तुमसे उत्पन्न हुई है ॥ ४१ ॥ इसके पाणिग्रहण के योग्य तीनों जगत् में शिव के सिवाय दूसरा कोई नही है, कल्याण चाहने वाले तुम इस देवी को शिवजी को दो ॥ ४२ ॥ आपने सैकड़ों पूर्व जन्मों मे पुण्य किया था अब आपके भाग्य से वे फलीभूत होते हैं ॥ ४३ ॥ उन लोगों के इस वचन

को सुनकर प्रसन्न चित्त होकर महागिरि ने तब कहा मेरी पुत्री वल्कल धारण किये हुए ॥ ४४ ॥ विना आहार किये गङ्गा
के तीर पर शिवजी को पति बनाने की आकांक्षा से घोर तप कर रही है, उसके लिये यह तो इष्ट ही है ॥ ४५ ॥ मैंने
महात्मा शिवजी को वह कन्या दिया, आप लोग महाप्रभु शिवजी के पास शीघ्र जाकर ॥ ४६ ॥ कहिये कि हिमाचल से
प्रीतिपूर्वक दी हुई कन्या को वह ग्रहण करें, आप लोग विवाह सम्बन्धी क्रिया को कीजिये ॥ ४७ ॥ हिमाचल से

गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम् ॥ काङ्क्षमाणा पतिं शम्भुं तस्या इष्टमिदं त्विति ॥४५॥
दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यम्बकाय महात्मने ॥ शीघ्रं गत्वा भवन्तस्तु यत्र शम्भुर्महाप्रभुः ॥४६॥
प्रीत्या हिमवता दत्तां गृहाणेति निवेद्य च ॥ भवन्त एव कुर्वन्तु चैतद्वैवाहिकीं क्रियाम् ॥४७॥
इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः ॥ लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्णवाद्या देवता अपि ॥४८॥
षण्मातरोऽथ मुनयो द्रष्टुं जग्मुर्महोत्सवम् ॥ शिवः सर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा ॥४९॥
अन्वितो वृषभारूढः प्रमथैः कोटिभिर्वृतः ॥ भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिभिः ॥५०॥

ऐसा कहे जाने पर उसको समझा कर वे शिवजी के पास गये, लक्ष्मी इत्यादि सब देवियाँ तथा विष्णु आदि सब देवता ॥४८॥
छहो मातृका तथा मुनि लोग इस बड़े उत्सव को देखने के लिये गये, सब देवता, मुनि तथा मातृका ॥ ४९ ॥ सहित और
करोड़ों भूतों के साथ बैल पर बैठकर शिवजी, तुरुही, शङ्ख, मृदङ्ग इत्यादि तथा ढोल, नगाड़ा इत्यादि के साथ ॥ ५० ॥

तथा वेदध्वनि और बन्दियों के साथ हिमाचल की नगरी में पहुँचे, तथा अच्छे मुहूर्त तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि में ॥ ५१ ॥
प्रसन्न चित्त हिमाचल ने विवाह किया, हे राजन् ! तीनों लोकों के प्राणियों के लिये यह बहुत बड़ा उत्सव था ॥ ५२ ॥
इस बड़े उत्सव के समाप्त होने पर लोकों को कल्याण करने वाले शङ्कर भगवान् लोक धर्मों को पालन करते हुए स्वच्छन्दता

ब्रह्मघोषैर्वन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम् ॥ सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥५१॥
विवाहमकरोच्छैलः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ महोत्सवस्तदा चासीत्त्रिलोक्यां प्राणिनां नृप ॥५२॥
महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः ॥ रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्माननुव्रतः ॥५३॥
ऋद्धिमद्भिर्भवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे ॥ स शर्वर्यां नदीतीरे वनराजिषु शङ्करः ॥५४॥
मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्छन्दतो विभुः ॥५५॥
स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तस्मिन् काले नृपोत्तम ॥ पुंसंसर्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्रवति ध्रुवम् ॥५६॥
प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हरादतः ॥ देवानामभवच्चिन्ता पुत्रलाभाद्धराद्विभो ॥५७॥

से देवी के साथ रमण करने लगे ॥ ५३ ॥ रात्रि के समय ऋद्धि और विभवयुक्त इन्द्र के भवन के समान घर मे शङ्कर
भगवान् ॥ ५४ ॥ उन्मत्त भ्रमर तथा पक्षियो के शब्दों से युक्त और मोरों के शब्दों से सुशोभित जङ्गल में सैकड़ों दिव्य वर्षों
तक स्वच्छन्द रमण करते थे ॥५५॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्र ने स्त्रियों को शाप दिया कि उस समय पुरुष के संसर्ग से स्त्रियों के गर्भ

का अवश्य पतन होगा ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन के रमण में जब शिवजी से देवी को गर्भ न रहा, तब देवताओं को पुत्रलाभ के लिये चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ ५७ ॥ सब देवताओं ने एकट्ठा होकर आपस में सलाह करके कहा कि शिवजी कामी के समान हो गये हैं और देवी में आसक्त होकर उसके साथ प्रतिदिन रमण करते हैं ॥ ५८ ॥ नित्य गर्भ के स्राव हो जाने से हम लोगों के कार्य की सिद्धि न होगी, तो ऐसा हम लोगों को करना चाहिये कि अब वह रति न करैं ॥ ५९ ॥ वे लोग आपस

सर्वे सङ्गत्य संमन्त्र्य मिथ एवं बभाषिरे ॥ कामीवाभूद्रतौ नित्यं सक्तो देव्या हरः स्वराट् ॥५८॥
नास्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्रवात् ॥ पुनर्रतिर्यथा न स्यात्तथाऽस्माभिर्विधीयताम् ॥५९॥
मिथ एवं तु सम्भाष्य विचिन्वन् क्षणमत्र ते ॥ अग्निं कल्पं विनिश्चित्य ह्यूचुर्मानपुरःसरम् ॥६०॥
मुखं त्वदग्ने देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च ॥ इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः ॥६१॥
रत्यन्ते दर्शयात्मानं सम्भवेन्न रतिर्यथा ॥ त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी ततश्चापसरेद् ध्रुवम् ॥६२॥
शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम् ॥ तत्त्वसम्प्रश्नव्याजेन कालं बहु नय प्रभो ॥६३॥

में बात-चीत करके विचार करते हुए क्षण भर रुके, अग्नि से यह कार्य होगा, ऐसा निश्चय करके बड़े सत्कार सहित उससे बोले ॥ ६० ॥ हे अग्नि! तुम देवताओं के मुख हो, तुम बन्धु हो और सबकी गति हो, अब भी तुम वहाँ जाओ जहाँ शिवजी रमण कर रहे हैं ॥६१॥ रति के अन्त में अपने को देखलाना जिसमें रति का सम्भव फिर न हो, तुमको देखकर लज्जायुक्त देवी

अवश्य हट जायँगी ॥ ६२ ॥ तब तुम रति के अन्त में कामदेव के भस्म करने वाले शिवजी के शिष्य बनकर हे प्रभु ! तत्त्व के प्रश्नों के बहाने बहुत काल व्यतीत करना ॥ ६३ ॥ बहुत काल व्यतीत हो जाने पर देवी कुमार को प्रसव करेगी, देवता लोगों से ऐसी प्रार्थना करने पर अग्नि ने कहा "बहुत अच्छा" और शिवजी के पास गया ॥ ६४ ॥ रति के अन्त

बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति ॥ देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरं ययौ ॥६४॥
वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देवी विवस्त्रा विमना ययौ ॥६५॥
रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः ॥ वह्निं प्राह गृहाणेदमविसृष्टं तु दुर्मते ॥६६॥
मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतिविघ्नस्त्वया कृतः ॥ उत्सृजामि च मद्वीर्यं त्वन्मुखे हव्यवाहन ॥६७॥
इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यं हव्यवाहमुखे हरः ॥ तद्धृत्वा दह्यमानः सन् स्वोदरे वीर्यमुल्बणम् ॥६८॥

में वीर्य त्याग करने के पहिले ही अग्नि वहाँ पहुँच गया उसको देखकर वस्त्रहीन देवी लज्जा के मारे दुखी हुई ॥ ६५ ॥ रति जल्दी से त्याग करके शिवजी बड़े क्रुद्ध हुए और अग्नि से बोले-हे दुर्मति ! इस त्याग किये हुए वीर्य को ग्रहण कर ॥ ६६ ॥ रे पापी ! मेरा वीर्य दुःसह है, तूने रति में विघ्न किया है, तो हे हव्यवाहन ! इस त्याग किये हुए वीर्य को मैं तुम्हारे मुख में छोड़ता हूँ ॥ ६७ ॥ ऐसा कहकर शिवजी ने अग्नि के मुख में वीर्य को डाल दिया, इस

तेज युक्त वीर्य को उदर में धारण करके जलता हुआ ॥ ६८ ॥ चिन्ताकुल होकर अग्नि देवताओं के धाम में गया और देवताओं से कहा कि मैं प्राण कैसे धारण करूँगा ॥ ६९ ॥ देवताओं को अग्नि की यह बात सुनकर शोक और हर्ष दोनों ही हुआ, वीर्य स्थिर हुआ यह सुनकर तो हर्ष हुआ, परन्तु प्रसव कैसे होगा ॥ ७० ॥ इस कारण

चिन्तमानो ययौ धाम देवानां यज्ञपूरुषः ॥ कथञ्चित्प्राणमुद्धृत्य देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत् ॥६९॥
देवा वह्नीरितं श्रुत्वा हर्षशोकौ समाययुः ॥ स्थितं वीर्यमिति ह्लादं कथं तु प्रसवो भवेत् ॥७०॥
इति दुःखं तदा चासीद्वह्नेः कुक्षौ तु शाम्भवम् ॥ ववृधे तेजसाद्दिप्तं दश मासा गतास्तदा ॥७१॥
नापश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः ॥ देवान्वै शरणं प्राप गर्भमोचनहेतवे ॥ ७२ ॥
ते देवा वह्निना साकं प्रापुर्गङ्गां यशस्विनीम् ॥ गङ्गास्तोत्रेण ते स्तुत्या प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥७३॥
त्वं माता सर्व देवानां त्वमेव जगतां गतिः ॥ देवतार्थं तु त्वं भद्रे धत्स्व तेजस्तु शाम्भवम् ॥७४॥

दुःख हुआ, तेज से गिराया हुआ वह शिवजी का वीर्य अग्नि के कोंख में बढ़ने लगा, दस महीने बीत गये ॥ ७१ ॥ जब प्रसव का कोई उपाय न देख पडा, तब दुःख से बहुत व्याकुल होकर गर्भ के प्रसव के निमित्त देवताओं के शरण में गया ॥ ७२ ॥ वे देवता लोग अग्नि के साथ यशस्विनी गङ्गाजी के पास गये और स्तोत्र द्वारा गङ्गाजी की स्तुति करने लगे और प्रार्थना करने लगे ॥ ७३ ॥ तुम सब देवों की माता हो, तुमही जगत् की गति हो, हे भद्रे ! शम्भु के

इस तेज को देवताओं के लिये तू धारण कर ॥ ७४ ॥ यह गर्भ वह्नि में बढ़ रहा है, परन्तु स्त्री न होने से उसको प्रसव नहीं होता, इसलिये अग्नि का तथा हम सभों का उद्धार करो, ॥ ७५ ॥ इस प्रकार से प्रार्थना की जाने पर गङ्गा देवी ने कहा—"अच्छा" देवताओं ने अग्नि को गर्भ विमोचन मन्त्र बतलाया ॥ ७६ ॥ उस मन्त्र से अग्नि ने गर्भ को निकालकर गङ्गाजी में फेंक दिया; शिवजी का तेज बड़ा देदीप्यमान था और लोक में असहनीय था ॥ ७७ ॥ गङ्गाजी ने

तद्वह्नेर्वर्धते गर्भो न स्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च ॥ तस्माद्वह्निं च नः सर्वान् समुद्धर दयां कुरु ॥७५॥
इत्येवं पार्थिवा देवी तथाऽस्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम् ॥७६॥
तन्मन्त्राद् गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः ॥ गङ्गायां शाम्भवं तेजो भास्वल्लोकसुदुःसहम् ॥७७॥
सा चाढी कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम् ॥निर्गता तत्प्रभावेण स्फुटोद्रिक्तकलेवरा ॥७८॥
बहुदुःखाकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः ॥ उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लोकैकपावनी ॥७९॥
शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमाना समन्ततः ॥ शरकाण्डैस्तु संभिन्नः षोढा भिन्नो बभूव ह ॥८०॥

कुछ महीने तक उसको सहन किया, परन्तु इसके बाद सहन न कर सकी। इसके प्रभाव से उसका कलेवर गर्भ से पतला होने लगा ॥ ७८ ॥ पतिव्रता होने के कारण देवी गङ्गा बड़े दुःख से व्याकुल हुई और लोक की एकमात्र पवित्र करने वाली गङ्गाजी ने अपने उदर के गर्भ को फेंक दिया ॥ ७९ ॥ चारो ओर से दहकती हुई उसने इसको सरपत के जुट्टे में

फेंक दिया, सरपत के जुट्टे में इसके अनेक भाग हा गय ॥ ८० ॥ तब ब्रह्मा से प्रेरित होकर छहो कृत्तिका आईं, सरपत के जुट्टे में टुकड़े हुए शम्भु के तेज को इन्होंने लेकर ॥ ८१ ॥ इसकी एक देह तथा छ अलग-अलग मुँह बनाये और ब्रह्मा ने जैसी आज्ञा दिया था उसी के अनुसार कृत्तिका ने यह कार्य शीघ्र कर दिया ॥ ८२ ॥ इसका शरीर पुरुष के आकार का था और छ मुँह वाला था, यह सरपत के जुट्टे में पड़ा था, चिरकाल तक बिना रक्षा किये हुए यह शरकाण्ड में पड़ा

षट्कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तदा ॥ शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोढा सन्धाय शाम्भवम् ॥८१॥
षण्मुखं पुरुषं कृत्वा चैकदेहमिति स्फुटम् ॥ कृत्तिका विधिनाऽऽज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे द्रुतम् ॥८२॥
तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम् ॥ अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम् ॥८३॥
एकदा वृषभारूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ श्रीशैलगन्तुमनसौ तत्स्थानात्परिजग्मतुः ॥८४॥
तदासीत्पार्वती देवी सद्यः स्नुतपयोधरा ॥ विस्मितोवाच तं रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ ॥८५॥
कारणं ब्रूहि विश्वात्मन्नित्युक्तस्तु हरोऽब्रवीत् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुत्रोऽधो वर्तते तव ॥८६॥

था ॥ ८३ ॥ एक बार बैल पर बैठे हुए महादेव पार्वती श्रीशैल को जाने की इच्छा से उसी स्थान से जा रहे थे ॥ ८४ ॥ उस समय पार्वती देवी के स्तस्नों से एकाएक दूध बह चला, आश्चर्य में आकर उन्होंने शिवजी से पूछा कि मेरे स्तनों में से दूध क्यों आता है? ॥ ८५ ॥ इसका कारण हे विश्वात्मन्! कहिए, शिवजी ने कहा उचित ही है, हे देवि! मैं

कहता हूँ, सुनो—तेरा पुत्र नीचे पड़ा है ॥ ८६ ॥ वीर्य का उत्सर्ग होने से पहिले अग्नि आगया था, उसको देखकर लज्जित होकर तू किसी दूसरे स्थान में चली गई ॥ ८७ ॥ मैंने तेजस्वी वीर्य को क्रोध से अग्नि के मुख मे डाल दिया, उसने देवताओं के कहने से उसको गङ्गा मे फेंक दिया ॥ ८८ ॥ गङ्गा जब दहकने लगी, तो इसने इसको सरपत में फेंक दिया,

त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टं प्रागेवागाद्धविर्वहः ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता त्वं वै प्रविष्टा च स्थलान्तरम् ॥८७॥
मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम् ॥ देवानां च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्धि सः ॥८८॥
गङ्गा च दह्यमानाऽथ चिक्षेप च शरान्तरे ॥ तत्र षोढा प्रभिन्नं तु मातृभिश्च दृढीकृतम् ॥८९॥
पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ ॥ पालयैनं महावीर्यं विष्णुना समविक्रमम् ॥ ९०॥
अयमेवौरसः पुत्रस्तव भामिनि निश्चितम् ॥ तस्माद् गृहाण शीघ्रं त्वं ख्यातिर्भूयादतीव मे ॥९१॥
इत्याज्ञप्ता शम्भुना सा तमादायान्तिके द्रुतम् ॥ अङ्कमारोप्य तं देवी पाययामास स्वौ स्तनौ ॥९२॥

वहाँ पर इसके छ खण्ड हो गये जिनको मातृकाओं ने दृढ़ किया ॥ ८९ ॥ इसने पुरुष की आकृति प्राप्त किया है, इसको देखकर तेरे स्तनो से दूध आता है, विष्णु के समान पराक्रमी, इस महावीर्य का पालन करो ॥ ९० ॥ हे भामिनी ! निश्चय हमारा और तुम्हारा औरस पुत्र है, तब इसको जल्दी से ले लो, इससे तुम्हारी बड़ी प्रसिद्धि होगी ॥ ९१ ॥ शिवजी की

ऐसी आज्ञा पाकर उसके पास शीघ्र गईं और गोद में लेकर उसको अपना स्तन पान कराया ॥ ९२ ॥ दैव से मोहित होकर देवी पुत्र के स्नेह में तत्पर हो गई, बाद में पार्वती शिवजी के साथ कैलास में गईं ॥ ९३ ॥ देवी ने पुत्र का लाड़ करते हुए परम सन्तोष को प्राप्त किया, इस प्रकार से मैंने तुमसे यह अद्भुत कुमारजन्म का वर्णन किया ॥ ९४ ॥ जो कुमार के जन्म के इस शुभ वृत्तान्त को प्रतिदिन सुनते हैं, उनको पुत्र पौत्र इत्यादि की बढ़ती होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है

देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत् ॥ पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी ॥९३॥
पुत्रं लालयती देवी सन्तोषं परमं ययौ ॥ एवं कुमारजननं वर्णितं ते मयाऽद्भुतम् ॥९४॥
य इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम् ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नात्र संशयः ॥९५॥
महद्दुःखं तु जनने हरस्याप्रियतोऽभवत् ॥ प्रीत्या तु श्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमो भवेत् ॥९६॥
तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः ॥ अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसम्पद्विधायकः ॥९७॥
अनङ्गोऽपि च साङ्गत्वं यत्प्रभावादवाप्तवान् ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो यस्य वै गतः ॥९८॥

॥ ९५ ॥ शिवजी की अप्रसन्नता के कारण जो बड़े-बड़े दुःखों को प्राप्त करता है वह भी प्रीतिपूर्वक वैशाख महीने के धर्मों को सुनकर अपूर्व हो जाता है ॥ ९६ ॥ इसलिए वैशाख महीने का धर्म ही सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाला है, विधवापन यह नहीं होने देता, यह पुण्य है और सब सम्पत्ति को करने वाला है ॥ ९७ ॥ जिसके प्रसाद से कामदेव अङ्गवाला हो गया,

वैशाख महीने में स्नान न करने तथा दान न करने से ॥ ९८ ॥ सब धर्म करने पर भी दुःखों की परम्परा होती है, यदि सब धर्मों को त्यागकर भी कोई इसी एक का अनुष्ठान करै ॥ ९९ ॥ तो यमदूतों का तिरस्कार करके वह परम गति को

सर्वधर्मकृतो वापि भवेद्दुःखपरम्परा ॥ सर्वधर्मो हितः स्याच्च यद्येकोऽयमनुष्ठितः ॥९९॥
यमदूतांस्तिरस्कृत्य स याति परमां गतिम् ॥१००॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कुमारोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

प्राप्त होता है ॥ १०० ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद
में कुमारोत्पत्ति कथन नाम का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



मैथिल बोले—हे ब्राह्मण ! कामदेव की भार्या रति ने देवताओं का कहा हुआ जो अशून्यशयन नाम का व्रत किया
उस व्रत का विधान कहिए ॥ १ ॥ इसमें कौनसा दान किया जाता है, कैसी पूजा की जाती है और उसकी विधि क्या है
और उसका फल क्या है, मुझे इसके सुनने की उत्कट इच्छा है—हे भूदेव मुझसे कहिए ॥ २ ॥ श्रुतदेवजी बोले—हे
राजन् ! अशून्यशयन नाम के पाप को नाश करने वाले व्रत को जिसको विष्णुभगवान् ने लक्ष्मी से कहा था वह मैं कहता

मैथिल उवाच॥यत्कामपत्न्या चरितमशून्यशयनव्रतम्॥देवोपदिष्टं तस्यास्य विधानं ब्रूहि भूसुर॥१॥
किं दानं को विधिस्तस्य पूजनं किं फलं तथा ॥ एतदाचक्ष्व भूदेव श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥२॥
श्रुतदेव उवाच॥शृणु भूप प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम्॥अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम्॥३॥
येन चीर्णेन देवेशो जीमूताभः प्रसीदति ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथः समस्ताघौघनाशनः ॥४॥
अकृत्वा यस्त्विदं राजन् व्रतं पातकनाशनम् ॥ गार्हस्थ्यमनुवर्तेत तस्येदं निष्फलं भवेत् ॥५॥
श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते ॥ अशून्यशयनाख्यं तद् ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम् ॥६॥

हूँ सुनो ॥ ३ ॥ इसके करने से देवताओं के स्वामी, जीमूताभ, लक्ष्मीपति, सम्पूर्ण पापों के नाश करनेवाले जगत् के नाथ
विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस पाप को नाश करने वाले व्रत को न करके जो गृहस्थाश्रम में रहते हैं उनका
यह आश्रम निष्फल होता है ॥ ५ ॥ हे महीपति ! श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की द्वितीया को इस अपूर्व अशून्यशयन नाम

के व्रत को ग्रहण करै ॥ ६ ॥ और हे राजेन्द्र ! चार मास पर्यन्त मनुष्य हविष्य भोजन करै, चार महीने बाद पारण करै, तब उसका कल्याण होता है ॥ ७ ॥ जगत्पति, विष्णु भगवान् का लक्ष्मी सहित पूजन करे, पारण का दिन प्राप्त होने पर चार प्रकार के पदार्थ भोजन करै ॥ ८ ॥ और कुटुम्बी ब्राह्मण को दे, सोने या चांदी की सुन्दर मूर्ति बनवा कर ॥ ९ ॥

चातुर्मासं च राजेन्द्र हविष्याशी भवेन्नरः ॥ चतुर्भिः पारणं मासैः सम्वृद्धिः स्यादितो विभो ॥७॥
लक्ष्मीयुक्तो जगन्नाथः पूजनीयो जनार्दनः ॥ पारणादिवसे प्राप्ते भक्ष्यं चैव चतुर्विधम् ॥८॥
उपायनं च दातव्यं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सौवर्णीं राजतीं वापि मूर्तिं कृत्वा मनोरमाम् ॥९॥
पीताम्बरधरां दिव्यां वनमालाविभूषिताम् ॥ शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥१०॥
शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणां भोजनैस्तथा ॥ दम्पत्योर्भोजनैश्चैव दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥११॥
एवं तु चतुरो मासान्पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्ववद्धरिम् ॥१२॥
संरक्तचरणं ध्यायेद्रुक्मिणीसहितं हरिम् ॥ चैत्रादिचतुरो मासानेवं संपूजयेद्धरिम् ॥१३॥

इसको दिव्य पीताम्बर धारण करावे, दिव्य वनमाला से सुशोभित करके सफेद पुष्पों से तथा सुगन्धित द्रव्यों से पुरुषोत्तम भगवान् का पूजन करै ॥ १० ॥ शय्या दान से, वस्त्र दान से, ब्राह्मणों को भोजन कराके, पति पत्नी को भोजन कराके तथा दक्षिणा देकर भली भांति पूजन करै ॥ ११ ॥ इस प्रकार से चारों महीने जनार्दन की पूजा करे, अगहन इत्यादि

महीनों में पहिले की तरह हरि का पूजन करे ॥ १२ ॥ रुक्मिणी के सहित लाल चरण के हरि भगवान् का ध्यान करे, चैत्र इत्यादि चारो महीने में भी इसी प्रकार से हरि की पूजा करे ॥ १३ ॥ भक्तिपूर्वक सनन्दन इत्यादि मुनियों से सब प्रकार से स्तुति किये जाने वाले देव की भूमि सहित पूजा करें ॥ १४ ॥ आषाढ़ महीने की द्वितीया को समाप्त करे, उस

भूम्या च सहितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानं समन्ततः ॥१४॥
आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत् ॥ अष्टाक्षरेण मन्त्रेण जुहुयादादिपारणे ॥१५॥
मार्गशीर्षादिमासानां पारणे भूमिपालकः ॥ जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनां निबोधय ॥१६॥
पौरुषेयेण मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे ॥ पञ्चामृतं पायसञ्च त्वपूपं घृतपाचितम् ॥१७॥
एवं क्रमेण द्रव्याणि प्रतिमास्तु निबोधय ॥ ताम्रीं तु प्रथमं दद्याल्लक्ष्मीनारायणस्य च ॥१८॥
सौवर्णीं मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ राजतीमन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः ॥१९॥

दिन पारण करने से पहिले आठ अक्षर के मन्त्र से आहुति दे ॥ १५ ॥ हे राजन्! अगहन इत्यादि महीनों के पारण में विष्णु भगवान् को गायत्री मन्त्र से आहुति दे, चैत्र इत्यादि महीनों में ॥ १६ ॥ "पौरुषेय" मन्त्र से शुभ अग्नि में आहुति दे, पञ्चामृत, खीर, तथा घी का पका मालपुआ भोग लगावे ॥ १७ ॥ इसी क्रम से हर महीने भोग लगावे, पहिले लक्ष्मी नारायण की तांबे की प्रतिमा दे ॥ १८ ॥ मध्य में परमात्मा कृष्ण की सोने की तथा अन्त में महात्मा वराह भगवान् की चांदी

की ॥ १६ ॥ बाद में केशव इत्यादि के नामों से ब्राह्मणों को भोजन करावे, अपने वित्त के अनुसार दो वस्त्र तथा अलङ्कारों से ॥ २० ॥ पूजन करके घी के पके मालपुवा दे, और बारह ब्राह्मणों को उपायन दे ॥ २१ ॥ तब आचार्य को पहिले की बनवाई प्रतिमा दे, पहिले सब अलङ्कारों से विभूषित शय्या का संकल्प करे ॥ २२ ॥ उस पर विधिपूर्वक लक्ष्मीनारायण

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः ॥ वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः ॥२०॥
अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान् घृतपाचितान् ॥ उपायनानि विप्रेभ्यो द्वादशेभ्यो निवेदयेत् ॥२१॥
आचार्याय ततो दद्यात्प्रतिमां पूर्वकल्पिताम् ॥ शय्यां सङ्कल्पितां पूर्वं सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥२२॥
तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणं परम् ॥ कांस्यपात्रेण सहितामपूर्वैर्बहुभिस्तथा ॥२३॥
वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने ॥२४॥
प्रदद्याद्विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ लक्ष्म्या त्वशून्यशयनं यथा तव जनार्दन ॥२५॥
शय्या ममाप्यशून्या स्याद्दानेनानेन केशव ॥ एवं संप्रार्थ्य देवेशं स्वयं भोजनमाचरेत् ॥२६॥

का पूजन करके कांसे के पात्र के सहित दान दे तथा अनेक अपूर्व ॥ २३ ॥ वस्त्र और आभूषण के सहित तथा दक्षिणा सहित विशिष्ट वैष्णव कुटुम्बी को ॥ २४ ॥ दे, विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करावे, हे जनार्दन ! जिस प्रकार लक्ष्मी से शयन में तेरी शय्या ॥ २५ ॥ उसी प्रकार हे केशव इस दान से मेरी भी शय्या अशून्य होवे, इस प्रकार भगवान् की

प्रार्थना करके स्वयं भोजन करे ॥ २६ ॥ पुरुष सुवासिनी अथवा विधवा इसी प्रकार से अशून्य शयन नाम के व्रत को करे ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से मैंने तुमको विस्तारपूर्वक कहा, जगन्नाथ विष्णु भगवान् के भली भांति प्रसन्न होने पर अनेक कल्याण होते हैं ॥ २८ ॥ उस भगवान् के सन्तुष्ट होने पर देवताओं के भी दुर्लभ मनोरथ पूर्ण होते हैं, अतएव सबको प्रयत्नपूर्वक यह व्रत करना चाहिये ॥ २९ ॥ और विष्णु के परम पद को जाने की इच्छा करने वाले को तो अवश्य ही

पुरुषो वा सती वापि विधवा वा समाचरेत् ॥ अशून्यशयनाख्यं च कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥२७॥
एवं तव मयाऽऽख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम ॥ सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः शुभाः ॥२८॥
तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपि दुर्लभाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥२९॥
अवश्यं गन्तुकामस्तु तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३०॥
इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तं मुनिम् ॥ वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद ॥३१॥
शृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम् ॥ प्रत्युवाच

यह व्रत करना चाहिये मैंने सब कह दिया, अब तुम क्या अधिक सुनना चाहते हो ॥ ३० ॥ उस राजर्षि से ऐसा कहे जाने पर उस मुनि से फिर पूछा, वैशाख महीने में छाता दान करने के माहात्म्य को विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ३१ ॥ वैशाख महीने के शुभ कर्मों को सुन कर भी मेरी तृप्ति नहीं हुई; उसके ऐसे यश देने वाले और पुण्य वढ़ाने वाले वचन को सुन

कर बड़े यशस्वी श्रुतदेवजी महाराज बोले ॥ ३२ ॥ श्रुतदेवजी बोले—घाम से तपे हुए महात्माओं के वैशाख महीने में ॥ ३३ ॥ जो छाता दान देते हैं उनका पुण्य बहुत बड़ा है, यहाँ पर मैं एक प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूँ ॥ ३४ ॥ यह वैशाख मास के धर्म का लक्ष्य करके पहिले कृत युग में बना था; प्राचीन काल में वङ्ग देश में हेमकान्त नाम का एक

महाभागं श्रुतदेवो महायशाः॥३२॥श्रुतदेव उवाच॥वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम्॥३३॥
ये कुर्वन्त्यातपत्राणां तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥३४॥
वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम् ॥ वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः ॥३५॥
कुशकेतोः सुतो धीमान् राजा शस्त्रभृतां वरः ॥ एकदा मृगयासक्तो गहनं वनमाविशत् ॥३६॥
तत्र नानाविधान् हत्वा मृगान् क्रोडादिकान् बहून्॥श्रान्तो मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ॥३७॥
तदा शतर्चिनो नाम ऋषयः शंसितव्रताः॥ समाधिस्था न जानन्ति बाह्यकृत्यं तु किञ्चन ॥३८॥
तान्दृष्ट्वा निश्चलान् विप्रान् क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे॥ भूपं निवारयामास शिष्याणामयुतं तदा ॥३९॥

राजा था ॥ ३५ ॥ यह राजा कुशकेतु का पुत्र था, बड़ा धीमान था और शस्त्रधारियों मे श्रेष्ठ था, एकबार आखेट करते हुए वह घने जङ्गल में घुस गया ॥ ३६ ॥ वहाँ पर नाना प्रकार के अनेक मृग और सुअरों को मारकर थक गया और दोपहर के समय मुनियों के आश्रम में गया ॥ ३७ ॥ उस समय शतर्चि नाम के ऋषि लोग व्रत करते हुए समाधि लगाये थे, वे

शरीर के बाहर के कार्य को कुछ नहीं जानते थे ॥ ३८ ॥ उन ब्राह्मणों को निश्चल देखकर क्रोध करके राजा ने उनको मार डालने का विचार किया, तब उस राजा को दस हजार शिष्य रोकने लगे ॥ ३९ ॥ अरे दुर्बुद्धि ! हम लोगों की बात सुन, गुरु लोग समाधि लगाये हैं, वे बाहरी कृत्य को नहीं जानते, इसलिये तेरा क्रोध करना योग्य नहीं है ॥ ४० ॥ तब क्रोध से घबड़ा कर उसने यह वचन शिष्यों से कहा—हे ब्राह्मण लोग ! मार्ग मे थके हुए का, मेरा आतिथ्य-सत्कार तुम लोग

दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरवस्तु समाधिगाः॥ नो जानन्ति बहिः कृत्यं तस्मात्क्रोद्धुं न चार्हसि ॥४०॥
ततः शिष्यानुवाचेदं वचनं क्रोधविह्वलः ॥ यूयं कुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्य मे द्विजाः ॥४१॥
एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम् ॥ नाज्ञप्ता गुरुभिर्भूप वयं भिक्षाशिनः कथम् ॥४२॥
गुरुतन्त्राः स्वतः कर्तुमातिथ्यं न वयं क्षमाः ॥ प्रत्याख्यातो नृपः शिष्यैस्तान् हन्तुं धनुराददे ॥४३॥
मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षिता मया ॥ ते मामेवोपजीवन्तो मया दत्तप्रतिग्रहाः ॥४४॥
एते मां न विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः ॥ घ्नतोऽपि मे न दोषः स्यादेतान्खल्वाततायिनः ॥४५॥

ही करो ॥ ४१ ॥ राजा के ऐसा कहने पर शिष्य लोगों ने उनसे कहा—हे राजन् ! हम लोग भिक्षा माँगकर खाने वाले हैं, गुरुओं ने आज्ञा नहीं दिया है, क्या करें, ॥ ४२ ॥ हम लोग गुरुओं के अधीन हैं, स्वयं आतिथ्य-सत्कार करने के योग्य नहीं हैं । शिष्य लोगों ने जब राजा से ऐसा कहा तो उसने उनको मारने के लिये धनुष उठाया ॥ ४३ ॥ मैंने बहुधा पशु,

चोर, भय इत्यादि से उनकी रक्षा की है, वे मुझसे ही प्रतिग्रह पाकर मेरे ही भरोसे जीते हैं ॥ ४४ ॥ ये कृतघ्न, बड़े अभिमानी मुझको नहीं पहचानते, इन आततायियों को मार डालने में भी मुझे कुछ दोष न होगा ॥ ४५ ॥ ऐसा बकते हुए उसने धनुष से बाण छोडे, उनके भागने पर उसने शीघ्रही तीन सौ शिष्यों को मार डाला ॥ ४६ ॥ जल्दी से आश्रम छोड़कर वे सब भय से भाग गये। शिष्यों के भाग जाने पर हठपूर्वक आश्रम में रखी हुई ॥ ४७ ॥ सामग्री को राजा से

एवं विकत्थमानः सञ्छरान्मुञ्चन् शरासनात् ॥ तात् विद्रुताननुद्रुत्य जघ्ने शिष्यशतत्रयम् ॥४६॥

दुद्रुवुर्भयतः सर्वे विहायाश्रममञ्जसा ॥ विद्रावितेषु शिष्येषु बलादाश्रमसंस्थितान् ॥४७॥

सम्भाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः ॥ यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः ॥४८॥

ततः सेनावृतो राजा पुरीमागाद्दिनात्यये ॥ कुशकेतुस्ततः श्रुत्वा तनयस्य विचेष्टितम् ॥४९॥

पुरान्निर्यापयामास गर्हयन्नात्मनः सुतम् ॥ राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूमिप ॥५०॥

पित्रा त्यक्तस्ततो राजा हेमकान्तोऽतिविह्वलः ॥ वनं विवेश गहनं हत्याभिश्च सुपीडितः ॥५१॥

आज्ञा पाकर उस पापबुद्धि के सैनिकों ने शीघ्र ही पेट भर भोजन किया ॥ ४८ ॥ तब दिन बीतने पर सेना से घिरा हुआ राजा अपनी नगरी मे गया, तब कुशकेतु ने पुत्र के बुरे व्यवहार को सुनकर ॥ ४९ ॥ अपने पुत्र की निन्दा करता हुआ उसको नगर के बाहर निकाल दिया। हे राजन्! क्षमा न करनेवाला राज्य करने के योग्य नहीं होता ॥ ५० ॥ इसलिए

वह पिता से निकाल दिया गया, तब राजा हेमकान्त बहुत घबड़ाकर घने जङ्गल में चला गया और हत्यायें उसको पीड़ा
देने लगीं ॥ ५१ ॥ गहरे निर्जन वन में उसने बहुत काल तक निवारा किया और व्याधा का धर्म ग्रहण करके आहार करने
लगा ॥ ५२ ॥ हत्या के कारण दौड़ता और घूमता हुआ कहीं पर वह स्थायी न हुआ, उस दुरात्मा के अस्सी वर्ष बीत
गये ॥ ५३ ॥ तीर्थयात्रा करते हुए त्रित नाम के महामुनि वैशाख महीने में उसी जङ्गल मे मध्याह्न काल में पहुँचे ॥ ५४ ॥

बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने ॥ आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः ॥५२॥
न क्वापि स्थितिमापेदे हत्ययाऽभिद्रुतो भ्रमन् ॥ अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि गतान्येव दुरात्मनः ॥५३॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन त्रितो नाम महामुनिः ॥ तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यन्दिने गते ॥५४॥
गच्छन्नातपविक्लान्तस्तृषया चातिपीडितः ॥ क्वचिद् वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽपतत् ॥५५॥
दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितं नाम महामुनिम् ॥ तृषार्तं मूर्च्छितं श्रान्तं कृपां चक्रे नृपाधमः ॥५६॥
ब्रह्मपत्रैस्तु संवीज्य कृत्वा चातपवारणम् ॥ मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलं ददौ ॥५७॥

चलते हुए धूप से व्यग्र होकर वह प्यास से बड़े व्याकुल हुए, कहीं पर वृक्षहीन स्थान पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ५५ ॥
दैवयोग से हेमकान्त ने इस त्रस्त महामुनि को देखा, इस अधम राजा ने प्यास से व्याकुल मूर्च्छित तथा थके हुए मुनि पर
कृपा किया ॥ ५६ ॥ परास के पत्ते से हवा करके घाम की रुकावट किया, मुनि का सिर पकड़ कर तुम्बी से पानी पिलाया

॥ ५७ ॥ इस अन्न के उपचार से मुनि ने चेतना प्राप्त किया, तब थकावट दूर होने पर दिये हुए खाने को लेकर ॥ ५८ ॥ इन्द्रियों में कुछ बल आ जाने पर धीरे-धीरे किसी गाँव में पहुँचा, इस पुण्य के प्रभाव से तीन सौ ब्रह्महत्या ॥ ५९ ॥ उस महात्मा की क्षण भर में ही नाश हो गई, तब महारथी हेमकान्त को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ६० ॥ ये ब्रह्महत्या बहुधा

लब्धसंज्ञोऽभवत्तेन सूपचारेण स मुनिः ॥ ततस्तदन्नं तद्दत्तं गृहीत्वा गतविक्लवः ॥५८॥
ग्रामं कश्चिच्छनैः प्राप किञ्चिदाप्यायितेन्द्रियः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण ब्रह्महत्याशतत्रयम् ॥५९॥
विनष्टमभवत्तस्य क्षणार्धेन महात्मनः ॥ ततो विस्मयमापन्नो हेमकान्तो महारथः ॥६०॥
बहुधा पीड्यमानस्य ब्रह्महत्या इमाः कथम् ॥ केनाप्यनिष्कृता ह्येताः क्व गताः केन हेतुना ॥६१॥
इत्येवं चिन्तयामास ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ एवं चावस्थिते राज्ञि यमदूता ह्यथागमन् ॥६२॥
नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम् ॥ ग्रहणीं जनयामासुः प्राणान् हर्तुं महात्मनः ॥६३॥
तथा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन् ददर्श ह ॥ यमदूतान्महाघोरानूर्ध्वकेशान् भयङ्करान् ॥६४॥

मुझे पीड़ा देती थीं, किसने किस प्रकार से इनको हटाया, किस लिये हटाया, और ये कहाँ गईं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार से ब्रह्महत्या से विमुक्त होने पर विचार करने लगा, जब राजा इस स्थिति में था तब यम के दूत आये ॥ ६२ ॥ और इस महात्मा हेमकान्त को ले जाने के लिये जङ्गल में उतरे, इस महात्मा के प्राणों को हरने के लिये संग्रहणी रोग

उत्पन्न किया ॥ ६३ ॥ तथा प्राणों के वियोग से पीड़ित होकर उसने तीन पुरुषों को देखा, ये यमदूत बड़े भयङ्कर थे। ये उसको डरा रहे थे और इनके शिर के बाल ऊँचे खड़े थे ॥ ६४ ॥ अपने कर्मों को सोचता हुआ वह राजा तब चुपचाप खड़ा हो गया, छत्रदान के प्रभाव से उस राजा को विष्णु भगवान् की याद आई ॥ ६५ ॥ उससे स्मरण किये जाने पर विष्णु भगवान् ने अपने मित्र विश्वक्सेन से कहा—तुम शीघ्र जाकर यमदूतों को हटाओ ॥ ६६ ॥ वैशाख मास के धर्म में

चिन्त्यमानःस्वकर्माणि तूष्णीमासीत्तदा नृपः ॥ छत्रदानप्रभावेण जाता विष्णुस्मृतिर्नृप ॥६५॥
तेन स्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनं स्वमन्त्रिणम् ॥ उवाच तूर्णं गच्छ त्वं यमदूतान्निवारय ॥६६॥
वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तं तु पालय ॥ निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः ॥६७॥
मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुं च बोधय ॥ सर्वधर्मोज्झितो वापि ब्रह्मचर्यादिवर्जितः ॥६८॥
वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः ॥ कृताग अपि त्वत्पुत्रो मुनित्राणपरायणः ॥६९॥
वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नात्र संशयः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण शान्तो दान्तश्चिरायुषः ॥७०॥

लगे हुए हेमकान्त को बचाओ। इस पापहीन मेरे भक्त को इसके पिता को सौंपो, नगर में जाकर ॥ ६७ ॥ मेरे कहे हुए वाक्य से कुशकेतु को समझाओ कि सब धर्मों से हीन तथा ब्रह्मचर्य इत्यादि से यह रहित है ॥ ६८ ॥ परन्तु वैशाख महीने के धर्मों में निरत होने से वह मेरा प्रिय है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अनेक पाप करने पर भी तेरा पुत्र मुनि की रक्षा में

लीन हुआ था ॥ ६९ ॥ वैशाख महीने में छाते का दान देने से वह पापरहित हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसी पुण्य के प्रभाव से यह शान्त जितेन्द्रिय और दीर्घायु हुआ ॥ ७० ॥ शूरता, उदारता तथा अन्य गुणों से युक्त होकर अब वह तुम्हारे समान हुआ है, अतएव इस महाबली को राज्य का भार दे दो ॥ ७१ ॥ विष्णु भगवान् ने ऐसी आज्ञा दिया है, ऐसा उस उत्तम राजा को समझा कर पिता के वंश में हेमकान्त को रखकर मेरे पास फिर लौट आओ ॥ ७२ ॥ भगवान्

शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि ॥ तस्मादेनं राज्यभारे संस्थापय महाबलम् ॥७१॥
विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम् ॥ पितुर्वंशे हेमकान्तं स्थाप्यायाहि च मां पुनः ॥७२॥
इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महाबलः ॥ हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवर्य च ॥७३॥
पाणिनाशु तमेनैव पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम् ॥ भगवद्भक्तसंस्पर्शादुगतव्याधिः क्षणादभूत् ॥७४॥
विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः कुशकेतुर्महाप्रभुः ॥७५॥
ननाम शिरसा भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि ॥ गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः ॥७६॥

से ऐसी आज्ञा पाकर महाबली विश्वक्सेन यमदूतों को हटाकर और हेमकान्त को लेकर ॥ ७३ ॥ उस राजा के अङ्गों को शीघ्र ही इन्होंने हाथ से छुआ, भगवान् के स्पर्श से उसी क्षण उसके सब रोग हट गये ॥ ७४ ॥ तब विश्वक्सेन उसके साथ उसके नगर में गये, उसको देखकर महाप्रभु कुशकेतु आश्चर्ययुक्त हो गये ॥ ७५ ॥ भक्तिपूर्वक पृथ्वी पर सिर नवा के

उन्होंने दण्डवत् किया और परमात्मा के दूत को घर में ले गये ॥ ७६ ॥ अनेक स्तोत्रों से स्तुति करके अनेक वैभवों से उनकी पूजा किया, प्रीतियुक्त होकर महाबली विश्वक्सेन ने उनसे कहा ॥ ७७ ॥ हेमकान्त के सम्बन्ध में जो पहिले विष्णु भगवान् ने कहा था, वह सुनकर कुशकेतु ने पुत्र को राज्यासन पर बैठा कर ॥ ७८ ॥ विश्वक्सेन की आज्ञा से वह भार्या-सहित वन को चला गया और विश्वक्सेन ने हेमकान्त को समझा बुझाकर और आशीर्वाद देकर ॥ ७९ ॥ वह यशस्वी

स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयामास वैभवैः ॥ तस्मै प्रीतमनाः प्राह विष्वक्सेनो महाबलः ॥७७॥
हेमकान्तं समुद्दिश्य यदुक्तं विष्णुना पुरा ॥ तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्च पुत्रं राज्ये निवेश्य च ॥७८॥
विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभार्यो वनमाविशत् ॥ विष्वक्सेनो हेमकान्तमनुमन्त्र्याभिपूजितः ॥७९॥
श्वेतद्वीपं ययौ धीमान् विष्णुपार्श्वे महामनाः ॥ हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान् ॥८०॥
विष्णुप्रीतिकरान्धर्मान्प्रतिवर्षं चकार ह ॥ ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥८१॥
दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ प्रवृद्धः सर्वसम्पद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥८२॥

महाराज विष्णु भगवान् के पास गया, तब राजा हेमकान्त वैशाख महीने के कहे हुए कल्याण करने वाले ॥ ८० ॥ विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने वाले धर्मों को प्रतिवर्ष करता था, वह ब्राह्मणों में भक्ति करने वाला, धर्ममार्ग में चलने वाला, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, ॥ ८१ ॥ सब प्राणियों पर दयालु, सब यज्ञों में दीक्षा पाया हुआ, सब सम्पत्तियों से परिपूर्ण,

पुत्र पौत्र इत्यादि से सम्पन्न होकर ॥ ८२ ॥ सम्पूर्ण भोगों को भोगकर विष्णुलोक को प्राप्त हुआ। वैशाख महीने के धर्मों के समान सुख देने वाले और अनेक पुण्य के हेतु दूसरे नहीं हैं। ये पापरूपी इन्धन के लिये अग्नि के तुल्य हैं, ये सहज में

भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ नेत्येतु वैशाखसमांश्च धर्मान् सुखप्रयत्नान् बहुपुण्यहेतून् ॥ पापेन्धनौघाग्निनिभान्सुलभ्यान् धर्मादिमोक्षान्तपुमर्थ हेतून् ॥ ८३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे छत्रदानप्रशंसनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

प्राप्त हो सकते हैं, धर्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त सब पुरुषार्थों के हेतु हैं ॥ ८३ ॥

श्री स्कन्दपुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में

छत्रदान प्रशंसन नाम का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



मैथिलजी बोले—वैशाख महीने के धर्म सुलभ हैं,और पुण्य समुदाय को देनेवाले हैं, विष्णु भगवान् को प्रसन्न करने
वाले हैं, और शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने के हेतु हैं ॥ १ ॥ श्रुतियों में कहे हुए ऐसे स्थायी धर्मों की
प्रसिद्धि संसार में क्यों नहीं है, राजस और तामस धर्म तो अनेक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ जो दुःसाध्य हैं, बड़े यत्न से किये जाते
हैं और जिनके करने में बहुत धन का व्यय होता है, कुछ लोग माघ मास की प्रशंसा करते हैं, कुछ चातुर्मास की ॥ ३ ॥

मैथिल उवाच॥वैशाखधर्माःसुलभाःपुण्यराशिविधायकाः॥ विष्णुप्रीतिकराःसद्यःपुमर्थानांतुहेतवः॥१॥
न प्रख्याताः कथं लोके शाश्वताः श्रुतिचोदिताः॥ प्रख्याता राजसा धर्मास्तमासा अपि भूरिशः॥२॥
दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः ॥ केचिन्माघं प्रशंसन्ति चातुर्मास्यान् परे जगुः ॥ ३ ॥
व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः ॥ एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद ॥ ४ ॥
श्रुतदेव उवाच। शृणु भूप प्रवक्ष्यामि न प्रख्याता इमे कथम्॥ इतरेषां च धर्माणां कथं ख्यातिश्च भूतले॥५॥
राजसास्तामसा भूमौ बहवः कामुका जनाः ॥ इच्छन्त्यैहिकभोगांस्ते पुत्रपौत्रांश्च सम्पदः ॥ ६ ॥

कोई व्यतीपात इत्यादि धर्मों का वर्णन करते हैं, हे राजन् ! इन अन्तर को विस्तार पूर्वक कहिये, मुझे सुनने की बड़ी
अभिलाषा है ॥ ४ ॥ श्रुतदेवजी बोले, हे भूप ! सुनो, मैं कहता हूँ कि ये क्यों प्रसिद्ध नहीं हुए तथा दूसरे धर्मों की प्रसिद्धि
क्यों संसार में हुई ॥ ५ ॥ संसार में राजस और तामस प्रकृति वाले बहुत से ऐसे कामी जन हैं जो सम्पत्ति तथा

पुत्र-पौत्र इत्यादि सांसारिक भोगों की इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ संसार में कोई कभी भी बड़े परिश्रम से स्वर्ग को प्राप्त करने का प्रयत्न करता, इसलिये यज्ञ इत्यादि अच्छी क्रियाओं को ॥ ७ ॥ करता है, परन्तु मनुष्य प्रयत्न करके मोक्ष की उपासना नहीं करता, नीच आशावाले मनुष्य बड़े बड़े कर्मों से काम की चाहना करते हैं ॥ ८ ॥ इसी से राजस धर्म तामस धर्म निश्चय करके प्रसिद्ध हैं और ये हरि भगवान् को प्रीति करनेवाले सात्त्विक धर्म प्रसिद्ध नहीं हैं ॥ ९ ॥ ये धर्म निष्काम हैं

क्वचित्कथञ्चन क्वापि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः ॥ स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः ॥ ७ ॥
कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो जनाः काम्यानुपासते ॥ ८ ॥
प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसा अपि तेन वै ॥ न ख्याताः सात्त्विका धर्मा हरिप्रीतिकरा इमे ॥ ९ ॥
निष्कामका इमे धर्मा ऐहिकामुष्मिकप्रदाः ॥ न जानन्ति जना मूढा मोहिता देवमायया ॥१०॥
यथाऽधिपत्ये संप्राप्ते सर्वः सिद्धो मनोरथः ॥ मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्यं न हीयते ॥११॥
कारणं च प्रवक्ष्यामि गोपनं भूतलेऽञ्जसा ॥ यद्वैशाखोक्तधर्माणां सात्त्विकानां नृणामिह ॥१२॥

और संसार तथा परलोक के सुख को देनेवाले हैं, इनको देवमाया से मोहित हुए मूर्ख लोग नहीं जानते ॥ १० ॥ जिस प्रकार से अधिकार प्राप्त होने पर सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं और मोहन के लिये स्थान प्राप्त करने में अधिकार नाश नहीं होता ॥ ११ ॥ इसका कारण कहता हूँ, यह दृढ़ता से भूतल में गुप्त है, वैशाख महीने के कहे हुए धर्मों में सात्त्विक

मनुष्यों का धर्म है ॥ १२ ॥ प्राचीन समय में इक्ष्वाकु कुल का भूषण नृग का पुत्र बड़ा यशस्वी कीर्तिमान् नाम का सार्व-
भौम राजा था ॥ १३ ॥ वह राजाओं मे श्रेष्ठ, ब्राह्मणों में श्रद्धा रखनेवाला, क्रोध को जीतनेवाला और जितेन्द्रिय था,
एक बार आखेट करता हुआ वह वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में गया ॥ १४ ॥ मार्ग में जाते हुए उसने उस महात्मा के शिष्यों
को वैशाख महीने के धर्मों को वारंवार करते हुए देखा ॥ १५ ॥ कोई तो पौसरा चला रहे थे तथा छाया मण्डप बना

सार्वभौमः पुरा कश्चिदिक्ष्वाकुकुलभूषणः ॥ कीर्तिमानिति विख्यातो नृगपुत्रो महायशाः ॥१३॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो ब्रह्मण्यो राजसत्तमः ॥ एकदा मृगयासक्तो वसिष्ठाश्रममाययौ ॥१४॥
गच्छन्मार्गे ददर्शासौ वैशाखे धर्मनिष्ठुरे ॥ भूयो भूयः कार्यमाणाञ्छिष्यैस्तस्य महात्मनः ॥१५॥
क्वचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च ॥ तटप्रपातं निःसार्य वापीं कुर्वन्ति निर्मलाम् ॥१६॥
सूपविष्टान् क्वचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च॥क्वचिददुर्हीक्षुदण्डान् क्वचिद्गन्धान् क्वचित्फलम्॥१७॥
मध्याह्ने छत्रदानं तु, सायाह्ने पानकस्य च ॥ क्वचिद्यच्छन्ति ताम्बूलं नेत्रे कर्पूरलेपनम् ॥१८॥

रहे थे, और किनारे की भूमि हटा कर स्वच्छ बाउली बना रहे थे ॥ १६ ॥ कहीं पर वृक्ष के नीचे अच्छी तरह बैठे हुओं
को पंखे से हवा कर रहे थे, कहीं पर ऊख दान दे रहे थे कहीं पर गन्ध और कहीं पर फल ॥ १७ ॥ मध्याह्न में छाते देते
तथा सन्ध्या को शरबत पिलाते थे, कहीं पर ताम्बूल देते थे और कहीं नेत्रों में कपूर लगा रहे थे ॥ १८ ॥ कोई घने जंङ्गल

में घनी छाया में सुन्दर ऑगन को साफ कर रहे थे, कोई लोगों के हित के लिये बालू बिछा रहे थे ॥ १९ ॥ हे राजन्! कोई वृक्ष की शाखा मे झूला डाल रहे थे, तुम लोग कौन हो? यह पूछने पर उन्होंने कहा क हम वसिष्ठ ऋषि के शिष्य हैं ॥ २० ॥ क्या करते हो? यह पूछने पर उन्होने कहा–ये वैशाख महीने के धर्म हैं, हम लाग सद्धर्म के लिये जल्दी से

सुच्छाये च वने केचित्सुसंमृष्टाङ्गणे शुभे ॥ केचिदास्तरयन्त्यद्धा बालुकानि हितानि च ॥१९॥
कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन् वृक्षशाखावलम्बिनीम् ॥ के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन् ॥२०॥
किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः ॥ सद्धर्महेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा ॥२१॥
वसिष्ठस्याज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपपुङ्गवम् ॥ एतदाचरणे पुंसां किं फलं कस्तु तुष्यति ॥२२॥
एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रुतम् ॥ इति राज्ञा तु संपृष्टाः प्रत्यूचुस्ते महीपतिम् ॥२३॥
गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पति सत्क्रियाः ॥ नास्माकमवकाशोऽत्र गुरुं पृच्छ यथेप्सितम् ॥२४॥
स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः ॥ इति शिष्यैर्वसिष्ठस्य प्रत्युक्तस्तु द्रुतं ययौ ॥२५॥

इनको कर रहे हैं ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! हम लोग यह वसिष्ठ जी की आज्ञा से करते हैं, इनके करने से पुरुषों को क्या फल होता है और इससे कौन सन्तुष्ट होता है ॥ २२ ॥ जैसा तुमने सुना हो वैसा विस्तार पूर्वक मुझसे कहो, राजा के ऐसा पूछने पर उन्होंने राजा से कहा ॥ २३ ॥ हम लोग गुरुजी की आज्ञा से मार्ग में इन सत्कर्मों को करते हैं, यहाँ हम लोगों

को अवकाश नहीं है, गुरुजी से अपना मनोरथ पूछो ॥ २४ ॥ वह बड़े यशस्वी अवश्य हैं इन धर्मों के तत्त्व को जानते हैं, इस प्रकार से वशिष्ठ ऋषि के शिष्यों के उत्तर देने पर वह जल्दी से ॥ २५ ॥ उनके वेदध्वनि से आवृत पुण्य शील आश्रम में गया, राजा को आते देखकर वसिष्ठ ऋषि ने प्रीति युक्त होकर ॥ २६ ॥ भली भांति उसका आतिथ्य सत्कार किया, आतिथ्य सत्कार हो जाने पर वह महात्मा के साथ सुख से बैठ गया और गुरुजी से पूछा ॥ २७ ॥ राजा ने कहा—मार्ग

वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं विद्याघोषोपबृंहितम् ॥ समायान्तं नृपं वीक्ष्य वसिष्ठः प्रीतमानसः ॥२६॥
आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्य महात्मनः ॥ सूपविष्टः कृतातिथ्यस्ततः पप्रच्छ तं गुरुम् ॥२७॥
राजोवाच॥मार्गेदृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैस्तु कृतं शुभम्॥मया पृष्टं च तैर्नोक्तं क्रियमाणंशुभावहम्॥२८॥
नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने ॥ कर्तव्या च क्रियाऽस्माभिर्गुरुणा या च चोदिता ॥२९॥
गुरुं गच्छेति तैरुक्तमागतोऽहं तवान्तिकम् ॥ मृगयासक्तचित्तेन श्रान्तेनातिथ्यमिच्छता ॥३०॥
दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्च कारितम् ॥ जिज्ञासाऽसीत्ततः श्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर ॥३१॥

में मैंने आपके शिष्यों द्वारा किये जाते हुए बड़े-बड़े आश्चर्य के शुभ कार्य देखा, इन शुभ कार्यों को करनेवाले उन्होंने मेरे पूछने पर कहा ॥ २८ ॥ कि हम लोगों को इस धर्म की प्रशंसा करने का अभी अवकाश नहीं है, ये कर्तव्य गुरुजी से आज्ञा पाकर हम लोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥ उन्होंने कहा गुरुजी के पास जाइये, इसलिये मैं आखेट करने से थक कर आतिथ्य

सत्कार चाहता हुआ आपके पास आया हूँ ॥ ३० ॥ मार्ग में आपके शिष्यों से किये जाते ये कार्य देखे थे, हे मुनीश्वर! इन धर्मों के विषय में सुनने की मेरी बडी लालसा थी ॥ ३१ ॥ आप सब पदार्थों की उत्पत्ति जानते हो, आदरणीय हो और सब धर्मों को करते हो इसलिये इन धर्मों को सुनने की लालसावाले विनीत शिष्य को ॥ ३२ ॥ हे मुनिवर! मुझे श्रद्धावाले से कहिये, बड़े यशस्वी ऋषि ने इक्ष्वाकुवंश के राजा से ऐसा पूछने पर ॥ ३३ ॥ मन में अतिप्रसन्न हुए, मुनि ने

त्वमादरादिमान् धर्मान्समाचरसि वै यतः ॥ तान् धर्मान्श्रोतुकामाय शिष्याय प्रणताय च ॥३२॥
श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुङ्गव ॥ इतीक्ष्वाकुकुलीनेन राज्ञा पृष्टो महायशाः ॥३३॥
मनसा तोषमापेदे सम्यक्पृष्टोऽधुना मुनिः ॥ अहो व्यवसिता बुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता ॥३४॥
यस्माद्विष्णुकथायां च तद्धर्माचरणेऽपि च ॥ मतिरात्यन्तिकी जाता सुकृतं फलितं तव ॥३५॥
इति सम्भाष्य तं शिष्यं जातहर्षस्तमब्रवीत् ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥३६॥
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य वर्ततेऽविषयात्मकः ॥३७॥

कहा—आपने यह बहुत अच्छा पूछा, हे राजन्! तेरी बुद्धि स्थिर और सुशिक्षित है ॥ ३४ ॥ इसी से विष्णु भगवान् की कथा में तथा धर्मों के करने में निमग्न हुई है, तेरे पुण्य सफल होंगे ॥ ३५ ॥ उस शिष्य से ऐसा कह कर प्रसन्न होकर बोले—हे राजा! जो तूने अभी पूछा उसको मैं कहता हूँ सुनो ॥ ३६ ॥ इसके सुनने ही से मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाता है,

सब धर्मों को छोड़कर उसकी आत्मा सब विषयों से हट जाती है ॥ ३७ ॥ जो वैशाख स्नान में निरत रहता है, वह मधुसूदन भगवान् का प्रिय हो जाता है, सब धर्मों का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करके भी जो वैशाख महीने के धर्म को नहीं करता ॥ ३८ ॥ तथा स्नान, दान, पूजन और इस महीने के पुण्य को नहीं करता, उससे हरि भगवान् दूर हट जाते हैं। जो विना स्नान किये और दान दिये वैशाख महीना व्यतीत करता है ॥ ३९ ॥ वह कर्म से चाण्डाल होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, वैशाख

वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः ॥ साङ्गान् धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः ॥३८॥
स्नानदानार्चनैः पुण्यैस्तस्य दूरतरो हरिः ॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा च वैशाखो येन नीयते ॥३९॥
कर्मणा स तु चाण्डालो नात्र कार्या विचारणा ॥ वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाराधितो हरिः ॥४०॥
तैश्च तोषं समायाति प्रददाति समीहितम् ॥ लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः ॥४१॥
धर्मैः सूक्ष्मैश्च प्रीणाति न प्रयासैर्धनैरपि ॥ भक्त्या सम्पूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम् ॥४२॥
तस्माद्राजन् सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषि ॥ जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः ॥४३॥

महीने के कहे हुए धर्मों से जिसने हरि भगवान् की आराधना किया ॥ ४० ॥ वह उनसे प्रसन्न होते हैं और सब मनोरथों को देते हैं, जगन्नाथ लक्ष्मी के पति सब पापों का नाश करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥ वह सूक्ष्म धर्मों से प्रसन्न होते हैं और धन कष्टों से नहीं, भक्ति पूर्वक पूजा करने से विष्णु भगवान् सब कल्याण देते हैं ॥ ४२ ॥ इस कारण से हे राजन्! सदा

मधुसूदन भगवान् की भक्ति करना चाहिये, जल से ही जगन्नाथ विष्णु की पूजा करने पर क्लेश नाश करनेवाले हरि भगवान् ॥ ४३ ॥ शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं, जैसे प्यासा पानी से, बड़ा बड़ा कर्म भी छोटा फल देता है तथा छोटा भी बड़ा फल देता है ॥ ४४ ॥ बड़ा कर्म हो न तो हेतु है और न छोटा, किन्तु कर्म के स्वरूप ही विशिष्ट है, कर्म की गति बड़ी गम्भीर है ॥ ४५ ॥ वैशाख के कहे हुए ये धर्म छोटे है और थोड़े परिश्रम से होते हैं और इनके करने मे बहुत धन का

परितोषं व्रजत्याशु तृषार्तः सलिलैर्यथा ॥ महदप्यल्पदं कर्म तथा लघ्वपि भूरिदम् ॥४४॥
कर्मणो भूरि हेतुत्वे न हेतू महदल्पके ॥ किन्तु कर्मस्वरूपं च गहना कर्मणो गतिः ॥४५॥
वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पायासकृता अपि ॥ बहुव्ययविहीनाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः ॥४६॥
तस्मात्त्वमपि भूपाल वैशाखोक्तं समाचर ॥ त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैः सर्वैः कारयेमान् शुभावहान् ॥४७॥
न करोति च यो धर्मान् वैशाखोक्तान्नराधमः ॥ बहुधा शिक्ष्यमाणोऽपि स दण्ड्यस्तव भूपते ॥४८॥
इत्यावश्यकतां सम्यक् शास्त्रे व्युत्पाद्य तस्य च॥ पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान् धर्मान्प्रोवाच सर्वशः ॥४९॥

व्यय नहीं होता, परन्तु ये शुभकार्य विष्णु भगवान् को प्रियकर हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये हे भूपाल ! तुम भी वैशाख के कहे हुए धर्मों को करो, तुम्हारे राज्य के सब मनुष्यों को यह शुभ करने वाले कर्म करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जो अधम मनुष्य वैशाख में कहे हुए धर्मों को बहुत शिक्षा देने पर भी नहीं करता—हे भूपति ! उसको तुम दण्ड दो ॥ ४८ ॥ इस

प्रकार से भलीभाँति शास्त्रों में कही हुई आवश्यक बातों को कह कर तब वैशाख मास के सब धर्मों को कहा ॥ ४६ ॥ उन सब धर्मों को सुनकर, भक्ति पूर्वक गुरुजी की पूजा करके वह राजा घर आकर सब धर्मों को करने लगा ॥ ५० ॥ हे राजन्। वह भक्तिमान् राजा देवो के देव निरञ्जन पद्मनाभ केशव भगवान् के अतिरिक्त और किसी को नहीं देखता था ॥ ५१ ॥ हाथी पर नगाड़ा रखवा कर उसने वन्दियों से यह घोषणा करवाया कि आठ वर्ष से अधिक अस्सी वर्ष तक

श्रुत्वा तान् सकलान् धर्मान् गुरुं सम्पूज्य भक्तितः॥ स राजा गृहमापन्नः सर्वान्धर्मांश्चकार ह ॥५०॥
भक्तिमान् केशवे राजन् देवदेवे निरञ्जने ॥ नान्यं पश्यति देवेशात् पद्मनाभान्महीपतिः ॥५१॥
भेरीमुद्घाह्य मातङ्गे स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्नहि पूर्यते ॥५२॥
प्रातर्न स्नाति मेषस्थे सूर्ये सर्वोऽपि यो जनः ॥ स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्यास्यो विषयाद्ध्रुवम् ॥५३॥
पिता वा यदि वा पुत्रो भार्या वाऽथ सुहृज्जनः ॥ वैशाखधर्महीनश्च निग्राह्यो दस्युवन्मया ॥५४॥
ददध्वं विप्रमुख्येभ्यः स्नात्वा प्रातर्जले शुभे ॥ प्रपादानादिधर्मांश्च कुरुध्वं शक्तितोऽनघाः ॥५५॥

का जो पुरुष ॥ ५२ ॥ सूर्य के मेष राशि में रहने पर प्रातःकाल स्नान न करेगा, वह दण्ड पावेगा, मारा जायगा और अवश्य देश से निकाल दिया जायगा ॥ ५३ ॥ पिता हो या पुत्र हो, भार्या हो अथवा मित्र हो जो वैशाख धर्म न करेगा उसको मैं शत्रु के समान समझूँगा ॥ ५४ ॥ प्रातःकाल सुन्दर जल में स्नान करके प्रधान ब्राह्मणों को दान देने तथा

यथाशक्ति पौसरा चलाने इत्यादि पाप नाश करनेवाले धर्मों को करे ॥ धर्मशिक्षक ब्राह्मणों को गाँव-गाँव में नियुक्त किया, तथा पाँच-पाँच गाँव पर एक-एक अधिकारी नियुक्त किया ॥ ५६ ॥ धर्म छोड़नेवालों को दण्ड देने के लिये दस सवार नियुक्त किया, इस प्रकार सर्वत्र प्रबन्ध करने से उस सार्वभौम राजा के शासन से ॥ ५७ ॥ यह धर्मरूपी वृक्ष सब देशों मे विस्तार पूर्वक बढ गया, जा मनुष्य राजा के देश में मरते हैं ॥ ५८ ॥ प्रमाद से भी मरते है तो हे राजेन्द्र ! वे स्वर्ग

विप्रं च धर्मवक्तारं ग्रामे ग्रामे न्यवेशयेत् ॥ पञ्चानामेव ग्रामाणामकरोदधिकारिणम् ॥५६॥
दण्डार्थं त्यक्तधर्माणां दश वाजिनिषेवितम् ॥ एवं प्रघुष्टे सर्वत्र सार्वभौमस्य शासनात् ॥५७॥
प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात् ॥ ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः ॥५८॥
प्रमादाद्वा नृपश्रेष्ठ ते यान्ति हरिमन्दिरम् ॥ अवश्यं वैष्णवो लोके प्राप्यते मानवैर्द्रुतम् ॥५९॥
व्याजेनापि सकृत्स्नातः प्रातर्मेषगते रवौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥६०॥
न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ त्रैलोक्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप ॥६१॥

में जाते है, वे मनुष्य अवश्य विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥ ५९ ॥ सूर्य के मेष राशि मे जाने पर जा लोग प्रातःकाल एक बार किसी बहाने से स्नान करते है, वे सब पापों से मुक्त होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त हाते है ॥ ६० ॥ एक बार भी वैशाख महीने में स्नान करने से मनुष्य यम लोक को प्राप्त नही करता । हे राजन् ! सूर्यवंशी उस राजा ने मरण के

लेख को मिटा दिया ॥ ६१ ॥ तब चित्रगुप्त को लिखने का काम न रह गया, पहिले के पाप सम्बन्धी लेख मिटा दिये गये ॥ ६२ ॥ अपने किये हुए कर्मों से मनुष्यो के शीघ्र ही विष्णुलोक मे जाने से नरक सूना हो गया, सब प्राणी पाप से निर्मुक्त हो गये ॥ ६३ ॥ वैशाख धर्म के प्रभाव से नरक जाने का मार्ग रुक गया, सब मनुष्य स्वच्छ हाकर विष्णु लोक जाने लगे

लेख्यकर्माणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा ॥ मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च ॥६२॥
गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात् ॥ शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापप्राणिविवर्जिताः ॥६३॥
भग्नयानोऽभवन्मार्गो वैशाखस्य प्रभावतः ॥ सर्वोऽपि विमलाकारो जनो याति हरेः पदम् ॥६४॥
दिवौकसां तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन् ॥ शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च ॥६५॥
नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह ॥ नाक्रन्दः श्रूयते राजन् प्राक् श्रुतो नरके यथा ॥६६॥
तथा न क्रियते लेख्यं किञ्चिद्दुष्कृतकर्मणि ॥ चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनमास्थितः ॥६७॥
कारणं ब्रूहि राजेन्द्र न यान्ति तव मन्दिरम् ॥ मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः ॥६८॥

॥ ६४ ॥ देवताओं के सब लोक भी उसी प्रकार शून्य हो गये, स्वर्ग शून्य हो गया, नरक भी शून्य हो गया ॥६५॥ नारदजी ने धर्मराज के पास जाकर कहा—हे राजन् ! नरक मे अब चिल्लाहट शब्द नहीं सुन पड़ते जैसा पहिले सुन पड़ते थे ॥ ६६ ॥ किसी पाप कर्मों की लिखावट भी नहीं होती, चित्रगुप्त मुनि के समान चुपचाप मौन बैठे रहते हैं ॥ ६७ ॥ हे राजेन्द्र !

पाप कर्म करनेवाले, माया और गर्व से भरे मनुष्य आपके लोक में नहीं जाते, इसका कारण बतलाइये ॥ ६८ ॥ महात्मा नारद् के ऐसे वचन कहने पर कुछ दीनता प्राप्त करके वैवस्वत राजा बोले ॥ ६९ ॥ हे नारद ! इस समय पृथ्वी पर जो राजा है, वह पुराण पुरुषोत्तम हृषीकेश भगवान् का बड़ा भक्त है ॥ ७० ॥ उसने डुग्गी पिटवाकर आज्ञा कराया है कि

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना ॥ प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः ॥६९॥
योऽयं नारद भूपालः पृथिव्यां साम्प्रतं स्थितः ॥ सोऽतिभक्तो हृषीकेशे पुराणपुरुषोत्तमे ॥७०॥
प्रबोधयति वैशाखधर्मं भेरीस्वनेन च ॥ अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ॥७१॥
यो वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः ॥ तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लंघन्ति कदाचन ॥७२॥
गच्छन्ति वैष्णवं धाम कर्मणा तेन नारद ॥ वैशाखसेवनाल्लोका यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥७३॥
तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ मार्गो लुप्तो ममाधुना ॥ कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम् ॥७४॥
विश्रान्तो लेखको लेख्याल्लिखितं मार्जितं जनैः ॥ वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वीदृशं मुने ॥७५॥

आठ वर्ष से लेकर अस्सी वर्ष तक का जो मनुष्य वैशाख महीने के धर्मों को ॥ ७१ ॥ नहीं करेगा वह निस्सन्देह दण्ड पावेगा, उसी भय से सब लोग इसका उल्लंघन नहीं करते ॥ ७२ ॥ हे नारद ! इसी कर्म से वे विष्णुधाम को जाते हैं, वैशाख सेवा से लोग वैकुण्ठ में चले जाते हैं ॥ ७३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस राजा ने अब मार्ग रोक दिया है, नरक को, लोकों को

तथा देवलोकों को सूना कर दिया है ॥ ७४ ॥ लेखक लोग आराम करते हैं, लिखे हुए को भी मनुष्य मिटा रहे हैं, हे
मुनि! वैशाख मास के धर्म का ऐसा माहात्म्य है ॥ ७५ ॥ हे द्विज! वैशाख के धर्मों को करके लोग ब्रह्महत्या इत्यादि
पापों से मुक्त होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ ऐसा मैं काठ के समान हो गया हूँ, मुझे कुछ सूझ नहीं
पड़ता अतएव उस महाबली से युद्ध करके मैं उसको मार डालूँगा ॥ ७७ ॥ स्वामी के कार्य को न करता हुआ जो व्यापार

ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज ॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥७६॥
सोऽहं काष्ठसमो जातो न कश्चिन्मम गोचरः ॥ युद्धं कृत्वा तु तं हन्मि सर्वथाऽद्य महाबलम् ॥७७॥
अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारोयदि स्थितः ॥ तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकंध्रुवम् ॥७८॥
यदि दैवादवध्योऽयं तदा ब्रह्माणमेत्य च ॥ निवेद्य तस्मै तत्सर्वं पश्चात् स्वस्थो भवाम्यहम् ॥७९॥
इत्युक्त्वा द्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम् ॥ स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम् ॥८०॥
मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः ॥ पञ्चाशत्कोटिसंख्याकैर्यमदूतेश्वरैर्वृतः ॥८१॥

हीन पड़ा रहता है, उसका धन नाश हो जाता है और वह निश्चय नरक में जाता है ॥ ७८ ॥ यदि दैव वश वह अवध्य
होगा तो ब्रह्मा के पास जा कर उनसे सब वार्ता निवेदन करके तभी मैं अवश्य स्वस्थ हूँगा ॥ ७९ ॥ ऐसा कह कर मुनि
से सलाह करके अपने अनुचरों के साथ पृथ्वी पर गया, काले भैंसे पर चढ़कर भयङ्कर दण्ड उठाकर ॥ ८० ॥ मृत्यु, रोग,

ज्वर इत्यादि भयङ्कर सहायकों को लेकर पचास करोड़ संख्या में यमदूतों से घिरा हुआ ॥ ८१ ॥ शीघ्र ही उस राजा की पुरी को घेर लिया, सब लोगों को भय करनेवाले शङ्ख का बडा शब्द किया ॥ ८२ ॥ उसको सुन वह राजर्षि वैवस्वत यम आया है ऐसा जानकर, अपनी सब सेना एकट्ठी करके क्रोध से नगर के बाहर निकला ॥ ८३ ॥ तब इन दोनों का रोवाँ खडा करनेवाला भयङ्कर युद्ध हुआ। मृत्यु, काल, रोग तथा यमदूतों के स्वामी को ॥ ८४ ॥ जीतकर उस राजर्षि ने

स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलां पुरीम् ॥ शङ्खं दध्मौ महाघोषं सर्वलोकभयङ्करम् ॥८२॥

तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वा वैवस्वतं यमम् ॥ ससज्जीकृतसर्वस्वः पतनान्निर्ययौ रुषा ॥८३॥

तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम् ॥ मृत्युं कालं तथा रोगं यमदूतपतींस्तथा ॥८४॥

जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास दूरतः ॥ ततः क्रुद्धो यमो राजा स्वयमभ्येत्य तं रुषा ॥८५॥

युयुधे बहुभिर्बाणैः सिंहनादं चकार च ॥ चकर्त राजा तस्यापि कार्मुकं विशिखैस्त्रिभिः ॥८६॥

पुनश्चर्मासिमादाय यमो हन्तुमथागमत् ॥ तं दृष्ट्वा तु नृपः क्रुद्धः पुनश्छित्त्वाऽसिचर्मणी ॥८७॥

क्षणभर में इनको दूर भगा दिया, तब यमराज क्रोध करके स्वयं उसके पास आये ॥ ८५ ॥ उसने बहुत बाणों से युद्ध किया और सिंह के समान गर्जना किया, राजा ने तीन बाणों से धनुष को तोड़ डाला ॥ ८६ ॥ तब ढाल, तलवार लेकर यम मारने को चला, उसको देख कर राजा ने क्रुद्ध होकर ढाल और तलवार को काट डाला ॥ ८७ ॥ और काले नाग के

समान एक तीर उसके मस्तक पर चुभाया, उससे चोट खाकर यम से क्रुद्ध होकर दण्ड उठाया ॥ ८८ ॥ ओर ब्रह्मास्त्र से
अभिमन्त्रित करके उसके ऊपर दण्ड फेंका, तब देखनेवाले मनुष्यों ने बड़ा हाहाकार मचाया ॥ ८९ ॥ तब विष्णु ने
अपने भक्त की रक्षा के लिये अरिचक्र फेंका, विष्णु भगवान् से फेंका हुआ चक्र तब जल्दी से रण में आया ॥ ९० ॥

निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभम् ॥ यमस्तेनाहतः क्रुद्धस्ततो दण्डमुपाददे ॥८८॥
ब्रह्मास्त्रेण च संमन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह ॥ हाहाकारो महानासीज्जनानां पश्यतां तदा ॥८९॥
तदा विष्णुः स्वभक्तस्य रक्षार्थे प्राहिणोदरिम् ॥ विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे ॥९०॥
यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च ॥ यमं हन्तुमथारेभे सहस्रारं महाद्भुतम् ॥९१॥
देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमञ्जसा ॥ सहस्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण ॥९२॥
त्वं सर्वलोकरक्षार्थे हरिणा च धृतं पुरा ॥ त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम् ॥९३॥
नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हि न चापरः ॥ तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते ॥९४॥

यमदण्ड से युद्ध करके तथा ब्रह्मास्त्र को हटा कर वह अति अद्भुत अस्त्र यम को मारने में उद्यत हुआ ॥ ९१ ॥ तब वह
देवभक्त डर कर जल्दी से चक्र की स्तुति करने लगा, हे सहस्रार ! हे विष्णु के हाथ के आभूषण ! तुमको नमस्कार ॥ ९२ ॥
तुमको भगवान् हरि ने सर्वलोक की रक्षा करने के लिये पहिले धारण किया था, हे महाबल ! हे विष्णुभक्त ! तुमको मैं
यम की रक्षा करने के लिये माँगता हूँ" ॥ ९३ ॥ देवताओं से द्रोह करनेवाले मनुष्यों का काल तुमही हो, दूसरा कोई

नहीं है, इसलिये हे जगत् पति! इस यम की रक्षा करो, कृपा करो ॥ ९४ ॥ राजा से ऐसी स्तुति किये जाने पर चक्र ने यम को राजा के समीप पहुँचा कर! देवताओं के देखते देखते स्वर्ग में चला गया, ॥ ९५ ॥ तब यम बहुत निर्विघ्न होकर ब्रह्मा के स्थान को गया, वहाँ पर मूर्तिमान् तथा अमूर्तिमान् प्राणियों से घिरे हुए ब्रह्माजी को बैठे देखा ॥ ९६ ॥ वह सब

नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम् ॥ पुनर्ययौ महाराज देवानां पश्यतां दिवि ॥९५॥

ततो यमोऽतिनिर्विघ्नो ब्रह्मणः सदनं ययौ ॥ स ददर्श समासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम् ॥९६॥

सर्वाश्रयं जगद्बीजं सर्वलोकपितामहम् ॥ उपास्यमानं विविधैर्लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥९७॥

इतिहासपुराणाद्यैर्वेदैर्विग्रहसंस्थितैः ॥ मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरोवरैः ॥९८॥

देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषतः ॥ वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः ॥९९॥

अहोरात्रैस्तथा पक्षैर्मासैः संवत्सरैस्तथा ॥ कलाकाष्ठानिमेषैश्च ऋतुभिश्चायनैर्युगैः ॥१००॥

के आश्रय हैं, जगत् के बीज हैं, सब लोकों के पितामह हैं, अनेक लोकपाल तथा दिक्पालों से उपासना किये जाते हैं ॥ ९७ ॥ इतिहास, पुराण इत्यादि तथा विग्रहस्थिति वेदों से मूर्ति धारण करनेवाले तथा समुद्र, नदी और सरोवर ॥ ९८ ॥ मूर्ति धारण किये तथा पीपल इत्यादि सब वृक्ष, बाउली, कुवाँ, तालाब, तथा पर्वत मूर्ति धारण किये ॥ ९९ ॥ दिन, रात,

पक्ष, महीने, संवत्सर तथा कला, काष्ठा, निमेष, ऋतु, अयन, युग ॥ १०० ॥ संकल्प, विकल्प, निमेष तथा ऋक्ष, योग, करण, पौर्णमासी, चन्द्रमा का क्षय ॥ १ ॥ सुख, दुःख, भय, लाभ, हानि, जय, अजय, सत्त्व, रज तथा तमस से युक्त ॥ २ ॥ शान्ति मूढ़, अतिघोर, विकार और प्रकृति से वायु, देव, श्लेष्मा, पित्त इत्यादि से युक्त ॥ ३ ॥ यम इनके मध्य

सङ्कल्पैश्च विकल्पैश्च निमेषोन्मेषणैस्तथा ॥ ऋक्षैर्योगैश्च करणैः पौर्णमासीन्दुसंक्षयैः ॥ १ ॥
सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभालाभैर्जयाजयैः ॥ सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम् ॥ २ ॥
शान्तिमूढातिघोरैश्च विकारैः प्राकृतैरपि ॥ वायुना चैव देवेन श्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम् ॥ ३ ॥
तेषां मध्येऽविशत्सौरिः सव्रीडा च वधूर्यथा ॥ विलोकयन्धरापृष्ठं म्लानवक्त्रं व्यदर्शयत् ॥ ४ ॥
सम्प्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम् ॥ विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह ॥ ५ ॥
सम्प्राप्तो लोककर्तारं द्रष्टुं देवं पितामहम् ॥ विर्व्यापारः क्षणमपि योऽयं नास्ति रवेः सुतः ॥ ६ ॥
सोयमभ्यागतः कस्मात् कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम् ॥ आश्चर्यातिशयो यश्च संमार्जितपटस्त्वयम् ॥ ७ ॥

में वधू के समान लज्जायुक्त पहुँचा, और उसने मलिन मुख किये हुए पृथ्वी तल को देखा ॥ ४ ॥ पास में बैठे हुए लोग यम को आते हुए देख आश्चर्य से आपस में कहने लगे, कि यम यहाँ क्यों आया ॥ ५ ॥ लोक की सृष्टि करने वाले पितामह से भेंट करने आया है, यह रविसुत तो एक क्षण के लिये भी व्यापार शून्य नहीं रहता ॥ ६ ॥ यह यहाँ किस

लिये आया है ? क्या देवता लोग कुशल से हैं ? बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इसकी पटिया धो गई है ॥ ७ ॥ इसके पीछे पीछे इसका लेखक भी आया है, उसका मुख भी दीनता से दबा है, इस अधर्म से डरने वाले की भी कदाचित् पटिया धो गई है ॥ ८ ॥ जो न देखा था और न सुना था वह अब हो गया है, उनके ऐसा कहने पर प्राणियों के प्रेत पर शासन करनेवाला ॥ ९ ॥ सूर्य का पुत्र यम ब्रह्मा जी के आगे भूमिपर ऐसा गिरा जैसे जड़ कटा हुआ वृक्ष; और "बचाओ बचाओ"

लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महतान्वितः ॥ न कदाचित्पटो ह्यस्य मार्जितोऽधर्मभीरुणा ॥ ८ ॥
यन्न दृष्टं श्रुतं वापि तदिहैव प्रपद्यते ॥ एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः ॥ ९ ॥
निष्पपाताग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः ॥ कृन्तमूलो यथा शाखी त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥१०॥
परिभूतोऽस्मि देवेश संमार्जितपटः कृतः ॥ त्वयि नाथेऽपि विफलं पश्यामि कमलासन ॥११॥
एवं ब्रुवन् हि निश्चेष्टो बभूव नृपसत्तम ॥ ततः कोलाहलः शब्दः सभायां समजायत ॥१२॥
यो हि खादयते मर्त्यान्सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ॥ स वै रोदिति दुःखार्तः कस्माद्वैवस्वतो यमः ॥१३॥

कह कर रोया ॥ १० ॥ वह कहने लगा—हे देवेश ! मैं हारा हूँ, मेरी पटिया धुल गई है, हे कमलासन ! आपके नाथ रहने पर भी मैं नाश देखता हूँ ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा कह कर वह चेतना शून्य हो गया, सब सभा में कोलाहल का शब्द हुआ ॥ १२ ॥ जो सब स्थावर, जङ्गम मर्त्य प्राणियों को रुलाता है, वह वैवस्वत यम किस लिये दुःखी होकर रोता

है ॥ १३ ॥ जो मनुष्यों को कष्ट देनेवाला है वह इतनी जल्द दुखी क्यों हुआ ? अवश्य पाप करनेवाला मनुष्य कल्याण को प्राप्त नहीं करता ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजी की इच्छा जानकर वायु ने उसका मुख बन्द कर दिया ॥ १५ ॥ लोगों को हटा कर सब लोकों के सूत्ररूप उदार चित्त वाले ब्रह्माजी ने अपनी मोटी भुजाओं से धीरे धीरे उसको उठाया ॥ १६ ॥

जनसन्तापकर्ता यः सोऽचिराद्यात्यशोभनम् ॥ न हि दुष्कृतकर्ता हि नरः प्राप्नोति शोभनम् ॥१४॥
ततो निवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा ॥ लोकानां समवेतानां मतं ज्ञात्वा स वेधसः ॥१५॥
निवार्य लोकान्मार्तण्डिं शनैरुत्थापयन्मरुत् ॥ भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः ॥१६॥
विह्वलन्तं परायत्तमासने सन्न्यवेशयत् ॥ आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम् ॥१७॥
केन त्वमभिभूतोऽसि केन स्थानान्निवारितः ॥ केनायं मार्जितो देव पटो लोकपतेस्तव ॥१८॥
ब्रूहि सर्वमशेषेण कुशकेतोः सुताग्रतः ॥ यः प्रभुस्तात सर्वेषा स ते कर्ता ममापि च ॥
अपहृष्यति मार्तण्डे दुःखं हृदयसंस्थितम् ॥ १९ ॥

और कलपते हुए उस पराधीन को आसन पर बैठा कर रविसुत यम से पूछा ॥ १७ ॥ किससे तुम हराये गये हो और किसने तुमको स्थान से हटाया है, हे लोकपति ! किसने तुम्हारी पटिया को डाली है ॥ १८ ॥ सब बात पूर्णरूप से कुशकेतु के पुत्र

के आगे कहो, हे तात ! वह सबका प्रभु है, तेरा है, मेरा भी है। हे मार्तण्डे ! तुम्हारे हृदय के दुःख को यह हरेगा ॥ ११९ ॥

जब पवन देवता ने ऐसी बात कहा, तब अतिदीन रविपुत्र यम ने कुशकेतु के पुत्र के मुख की ओर देखकर गद्गद् वाणी

स एव मुक्तः श्वसनेनसत्यमादित्य सूनुर्वचनंबभाषे ॥ विलोक्यवक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽतिदीनः ॥ १२० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कीर्तिमद्विजयवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः॥११॥

से कहा "सच है" ॥ १२० ॥

श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में

कीर्तिमद्विजय नाम का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



यम ने कहा—हे शम्भो ! हे पितामह ! मेरे वचन को सुनो, मैं लोपित हुआ हूँ, अपने पद के खण्डन को मैं मरण से भी अधिक मानता हूँ ॥ १ ॥ हे कमलासन ! किसी काम में नियुक्त किया हुआ मनुष्य यदि अपने काम को नहीं करता, वह अपने मालिक के धन को वृथा खाता है, वह काठ का कीड़ा अर्थात् दीमक होता है ॥ २ ॥ जो बुद्धिमान् लोभ से राजा

यम उवाच ॥ शृणु मे वचनं शम्भो लोपितोऽहं पितामह ॥ मरणादधिकं मन्ये मत्पदस्य च खण्डनम् ॥ १ ॥
नियोगी न नियोग्यं हि करोति कमलासन ॥ प्रभोर्वित्तं समश्नाति स भवेत्काष्ठकीटकः ॥ २ ॥
योऽश्नाति लोभाद्वित्तानि प्रज्ञावांश्च महीपतेः ॥ नियोगी नरकं याति यावत् कल्पशतत्रयम् ॥ ३ ॥
निस्पृहो नाचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसम्भव ॥ भुक्त्वा तु नरकान्घोरान्स पुमान्वायसो भवेत् ॥ ४ ॥
आत्मकार्यपरो यस्तु स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥ भवेद्वेश्मनि पापात्मा आखुः कल्पशतत्रयम् ॥ ५ ॥
नियोगी यस्तु भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यं स्ववेश्मनि ॥ शक्तस्तु कार्यकरणे मार्जारो जायते नरः ॥ ६ ॥
सोऽहं देव तवादेशात्प्रजा धर्मेण पालये ॥ पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा ॥ ७ ॥

का धन खाता है, वह नौकर तीन कल्प तक नरक में जाता है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मा ! जो लोभ त्याग करके स्वामी की सेवा नहीं करता, वह घोर नरक भोग कर कौवा होता है ॥ ४ ॥ अपने कार्य में लीन होकर जो स्वामी के कार्य नष्ट करता है, वह पापात्मा तीन कल्प तक घर में चूहा होता है ॥ ५ ॥ जो नियोगी कार्य करने में समर्थ होकर भी प्रतिदिन अपने घर रहता है, वह मनुष्य बिलैया होता है ॥ ६ ॥ हे देव ! आपकी आज्ञा से मैं धर्म से प्रजा का पालन करता हूँ, पुण्य करने

वाले को पुण्य से और पाप करने वाले को पाप से ॥ ७ ॥ हे प्रभो। धर्मशास्त्र जानने वाले मुनियों ने भली भाँति विचार करके कल्प के आरम्भ से आज तक मुझे ॥ ८ ॥ इस कार्य करने के लिये नियुक्त किया, इस काम के करने में मैं अशक्य हूँ, कीर्तिमान् राजा ने पृथ्वी पर आपको नियुक्ति को तोड़ डाला ॥ ९ ॥ हे जगन्नाथ! इसके भय से समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी

सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो ॥ कल्पादौ वर्तमानस्य यावदद्य दिनं मम ॥ ८ ॥
कर्तुं नियोगमेवं हि त्वदीयं नैव शक्नुयाम् ॥ राज्ञा कीर्तिमता भग्नो नियोगस्तव च क्षितौ ॥ ९ ॥
भयादस्य जगन्नाथ पृथिवी सागराम्बरा ॥ वैशाखधर्मनिरता न क्षितौ वर्तते क्वचित् ॥१०॥
विहाय सर्वधर्मांश्च विहाय पितृपूजनम् ॥ विहायाग्निसपर्यां तु तीर्थयात्रादिसत्क्रियाः ॥११॥
योगसांख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणनिरोधनम्॥त्यक्त्वा स्वाध्यायहोमौ तु कृत्वा पापानि भूरिशः॥१२॥
प्रयान्ति वैष्णवं लोकं कृत्वा वैशाखसत्क्रियाः ॥ मनुजाः पितृभिः सार्द्धं तथैव च पितामहैः ॥१३॥

वैशाख मास में कहे हुए धर्मों में लीन है, संसार में कोई ऐसे नहीं हैं ॥ १० ॥ जो सब धर्मों को छोड़कर, पिता का पूजन छोड़ कर, अग्नि की पूजा तथा तीर्थ यात्रा इत्यादि शुभ क्रियाओं को छोड़ कर ॥ ११ ॥ दोनों योगों को छोड़ कर, प्राणायाम त्याग कर, स्वाध्याय तथा होम को त्यागकर तथा अनेक पापों को करते हुए भी ॥ १२ ॥ वैशाख मास

के धर्मों को करके विष्णु लोक को न जाते हैं ॥ मनुष्यों के पिता तथा दादा के साथ ॥ १३ ॥ दादा के पितर लोग तथा पितरों के पिता तथा मातामह और इनके पिता इत्यादि ॥ १४ ॥ इनके जनन करने वाले तथा इन जनन करने वालों के भी पूर्वज विष्णु लोक को प्राप्त होते हैं । हे देव । यही दुःख मेरे मस्तक को पीड़ा देता है ॥ १५ ॥ मेरे लेख को धो कर भार्या के पितर लोग तथा हे प्रभु । पितरों के बीज से आए हुए वे धात्री के कोख से उत्पन्न हुए भी विष्णु लोक को प्राप्त

तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा ॥ तथा मातामहा यान्ति तेषां ते जनकादयः ॥१४॥
तेषामापि जनेतारो जनितॄणां हि पूर्वजाः ॥ एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम् ॥१५॥
प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम॥पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतोविभो॥१६॥
यदेकेन कृतं कर्म तदेकेनैव भुज्यते ॥ तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुले तु यः ॥१७॥
तारयेत्तावुभौ पक्षौ षड्विंशोपर्यलं विभो ॥ प्रियायाश्चापि वै तात सर्वे वै कुक्षिसम्भवाः ॥१८॥
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ न मे प्रयोजनं देव वियोगेनेदृशेन वै ॥१९॥

होते हैं ॥ १६ ॥ जो कोई कर्म कोई पुरुष करता है वही उसको भोगता है, परन्तु कुल में विरला ही मनुष्य ऐसा उत्पन्न होता है जो सब के किये हुए पापों को हटा कर ॥ १७ ॥ हे विभु । दोनों पक्ष की छब्बीस पीढ़ियों को तारता है तथा हे तात । भार्या के तथा सबकी कोख से उत्पन्न हुए सभी को तारता है ॥ १८ ॥ और हे जगन्नाथ । वे सब भी विष्णु के

परम पद को प्राप्त करते हैं, हे देव। इस प्रकार की नियुक्ति में मेरा क्या प्रयोजन है ॥ १९ ॥ वैशाख मास के धर्मों को करने वाले मुझको त्याग कर हरि भगवान् के पास जाते हैं और इक्कीस कुलों का उद्धार करके पापों से विमुक्त होकर अति शोभायमान होते हैं ॥ २० ॥ मेरे लोक को छोड़ कर वैकुण्ठ को जाते हैं। हे तात। ऐसे यज्ञों से मनुष्य लोग दिव्यगति नहीं प्राप्त करते ॥ २१ ॥ सब तीर्थों से, दान इत्यादि से, तपों से, व्रतों से अथवा सब धर्मों को करके भी यह

वैशाखधर्मनिरतः स मां त्यक्त्वा व्रजेद्धरिम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य त्यक्तपापोऽतिशोभनः ॥२०॥
संत्यक्त्वा मम लोकं हि प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ न यज्ञैस्तादृशैस्तात गतिं प्राप्नोति मानवः ॥२१॥
सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः ॥ अपिवा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाप्नोति तां गतिम् ॥२२॥
प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद्भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम्॥न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाख-
निष्ठे न च या प्रपद्यते ॥२३॥ प्रातः स्नात्वा देवपूजां च कृत्वा श्रुत्वा कथां मासमाहात्म्यसंज्ञाम् ॥
धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः ॥ २४ ॥ अप्रमाणमहं मन्ये

गति प्राप्त नहीं होती ॥ २२ ॥ मनुष्य लोग प्रयाग में पतन होने से, युद्ध में मरने से, भृगु के पतन तथा काशी में मरने से उस गति को प्राप्त नहीं होते जो वे वैशाख महीने के धर्मों के करने से प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥ प्रातःकाल स्नान करके देवता की पूजा करके तथा वैशाख मास के माहात्म्य को बारबार सुनकर, वैष्णवों के उचित धर्मों को करके मनुष्य सब

लोकों का नाथ भगवान् विष्णु होता है ॥ २४ ॥ मैं जगत्पति विष्णु के लोक को अप्रमाण अर्थात् अति विस्तृत मानता
हूँ जो करोड़ों पाप और अल्प लाञ्छन से पूर्ण नहीं होता ॥ २५ ॥ हे पितामह ! माधव मास के धर्म से सब बराबर हो जाता
है, बुरे कर्म में रहनेवाले भले. तथा अपवित्र पवित्र हो जाते है ॥ २६ ॥ वैशाखमास के धर्मों को लोग राजा की आज्ञा से
करके स्वर्ग में जाते हैं, यह हमारा बड़ा शत्रु है, और आपका भी विशेष करके है ॥ २७ ॥ हे नाथ ! आप इस राजा को

लोकं विष्णोर्जगत्पते ॥ यो न पूर्येत कोट्योघैः सर्वतः कुशलाञ्छनः ॥२५॥ माधवस्य तु धर्मेण
समस्ताश्च पितामह ॥ विकर्मस्थाविकर्मस्थाः शुचयोऽशुचयस्तथा ॥२६॥ कृत्वा वैशाखकृत्यानि
लोका यान्ति नृपाज्ञया ॥ अस्माकं हि महाशत्रुर्भवतां च विशेषतः ॥ २७ ॥ निग्राह्यो जगतां
नाथ भवताऽसौ महीपतिः ॥ हित्वा हि सकलान्धर्मान्सकृद्वैशाखस्नानतः ॥ २८ ॥ असंस्कृतजना
यान्ति वैकुण्ठं हरिवल्लभ ॥ अस्माभिस्तु कृतोपेक्षो विष्णुपादैकसंश्रयः ॥ २९ ॥ समस्तं
नेष्यते लोकं पार्थिवो नात्र संशयः ॥ एष दण्डः पटो ह्येषस्तव पद्भ्यां निवेदितः ॥ ३० ॥

संसार से हटा दीजिये, सब धर्मों को त्याग करके एक बार वैशाख महीने में स्नान करके ॥ २८ ॥ हे हरिवल्लभ ! बिना
संस्कार के लोग भी वैकुण्ठ को जाते हैं, केवल विष्णु के चरण का आश्रय करते हुए हम लोगों की उपेक्षा करते हैं ॥ २९ ॥
सबको यह राजा वैकुण्ठ में ले जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह दण्ड और यह पटिया आपके पैरों पर मैं रक्खे देता

हूँ ॥ ३० ॥ इस राजा ने बड़े लोकपालत्व को धो डाला, उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है जो माता को केवल क्लेश ही देता है ॥ ३१ ॥ जो शत्रु को जेठ महीने के सूर्य के समान नहीं तपाता, उसके माता का जन्म वृथा ही हुआ वह कुपुत्रिणी है ॥ ३२ ॥ मेघ में बिजली के समान जिसकी कीर्ति नहीं चमकती है जो विद्या अथवा धन से पिता को पाप से उद्धार नही करता ॥ ३३ ॥ जो पुत्र धर्म, अर्थ और काम में विमुख रहता है, वह माता के कोख से उत्पन्न हुआ रोग

लोकपालत्वमतुलं मार्जितं तेन भूभुजा ॥ किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै ॥ ३१ ॥
यो न तापयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः ॥ वृथा सुता हि युवतिर्जाता चैव कुपुत्रिणी ॥३२॥
न यस्या स्फुरते कीर्तिर्घनस्येव शतह्रदा ॥ यः पितुर्नोद्धरेत्पापाद्विद्यया वा धनेन वा ॥३३॥
मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यः प्रतीपो भवेत्सुतः ॥३४॥
मातृहेत्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः ॥ तन्माता नृपपत्नी च लोकविख्यातसत्क्रिया ॥३५॥
एकैकवीरसूर्लोके रचिता नात्र संशयः ॥ यथा वै कीर्तिमान् जातो मल्लिपेर्मार्जनाय वै ॥३६॥

है । पृथ्वीपर जन्म लिया हुआ नहीं है ॥ ३४ ॥ पुरुषों में अधम ऐसे पुत्र को सज्जन लोग मातृहा अर्थात् माता को मारने वाला कहते हैं । इसकी माता राजा की भार्या है और इसके भले कर्म लोक में प्रसिद्ध हैं ॥ ३५ ॥ मेरी लिपि को धो डालनेवाला जैसा यह कीतिमान् उत्पन्न हुआ है वैसा पुत्र जननेवाली माता विरली ही जन्मती है, इसमें कोई सन्देह नहीं

है ॥ ३६ ॥ हे देव। किसी दूसरे क्षत्रिय ने ऐसा नहीं किया था, हे जगन्नाथ। पुराणों में भी पटिये का धुला जाना नहीं सुना गया था ॥ ३७ ॥ हे जगत्पति। हरि भगवान् में तत्पर इस राजा को छोड़ कर मैं किसी दूसरे को नहीं जानता,

नेदं व्यवसितं देव केनचित्क्षत्रियेण हि ॥ पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम् ॥३७॥ सोऽहं न जानामि जगत्यधीश ऋते क्षितीशं हरितत्परं तम्॥प्रचोदयन्तं पटहं सुघोषं विलोपमानंममवेश्ममार्गम्।३८।

इति श्रीस्कन्दमहापुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे यमदुःखनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥

जिसने नगाड़ा पिटवाकर घोषणा करके हमारे मार्ग को रोक दिया है ॥ ३८ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख महात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में यम दुःख निरूपण नाम का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



ब्रह्माजी बोले—तुमने क्या आश्चर्य देखा, आप क्यों खिन्न होते हैं, सद्गुणों में सन्ताप करने पर, यह ताप मरण करनेवाला होता है ॥ १ ॥ इस सद्गुण के उच्चारणमात्र से परम पद प्राप्त होता है, राजा के शासन से क्या प्रजा ब्रह्मलोक में न जायगी ॥ २ ॥ यदि कोई एक बार भी कृष्ण भगवान् को प्रणाम करता है तो यह अनेक यज्ञ और तप के समान होता है, यज्ञ के करनेवाले को दूसरा जन्म मिलता है, हरि भगवान् को प्रणाम करनेवाला दुबारा जन्म नहीं लेता ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच॥किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थं खिद्यते भवान्॥सद्गुणेषु कृतस्तापः सन्तापो मरणान्तिकः॥ १॥

तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम् ॥ न गच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्य शासनात् ॥ २ ॥

एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामःसमस्तयज्ञावभृथेन तुल्यः॥यज्ञस्य कर्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामीनपुनर्भवाय।३

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा ॥ जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन्विशेषेण रजस्वलाम् ॥ स मुक्तशमलो याति मरणे हरिमुच्चरन् ॥ ५ ॥

अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाघस्य सञ्चयम् ॥ प्रयाति विष्णुसायुज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः ॥६॥

जिसकी जीभ पर "हरि" ये दो अक्षर नहीं रहते उसको कुरुक्षेत्र से क्या और सरस्वती से क्या लाभ ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला तथा चाण्डाली से विशेष कर रजस्वला से उपभोग करता है वह हरि उच्चारण करने से उन पापों से छूट कर मरने पर मुक्त होता है ॥ ५ ॥ स्मृति में ऐसा कहा है कि अभक्ष्य पदार्थों को खाकर पापों का सञ्चय करनेवाला के हरि

का नाम लेने से छूट जाते हैं, वह विष्णु का प्रिय होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार
से हे यम ! वैशाख नाम का महीना विष्णु को प्रिय है, इसके धर्मों को सुनने ही से मनुष्य सब पापों से विमुक्त हो जाता है
॥ ७ ॥ इसके अनुष्ठानों को करता हुआ बैकुण्ठ में जाता है। इसको क्या कहना है, हमारा प्रिय जगत् का स्वामी तथा
पुरुषोत्तम हो जाता है ॥ ८ ॥ विष्णु के प्रिय माधव मास के धर्म को जो करता है, उस पर वह अति प्रसन्न होते हैं और

एवं विष्णुप्रियो मासो वैशाखो नाम वै यम ॥ यद्धर्मश्रवणादेव मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ ७ ॥
यातीति किमु वक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः ॥ अस्माकं जगतां नाथो जनिता पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥
तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतान्करोति यः ॥ तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः ॥ ९ ॥
न तस्य भूपतेः सौरे प्रभावो मम शिक्षणे ॥ न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥१०॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं वाऽप्युपजायते ॥ नियोगी स्वामिकार्यं तु यावच्छक्ति समीहते ॥११॥
तावता स कृतार्थः स्यान्नरकान्नैव गच्छति ॥ कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत् ॥१२॥

सर्वदा सहायता के लिये खड़े रहते हैं ॥ ९ ॥ हे सौरे ! उस राजा का प्रभाव मेरे आधीन नहीं है, वासुदेव भगवान् के
भक्तों के लिये कहीं भी अशुभ नहीं है ॥ १० ॥ उसको जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग इत्यादि का कभी भय नहीं होता, वह
निरोगी रह कर यथाशक्ति अपने स्वामी का कार्य सम्पादन करता है ॥ ११ ॥ इस प्रकार से कृतार्थ होकर वह नरक में नहीं

जाता, यदि कार्य शक्ति से बाहर हो तो स्वामी को सूचना कर दे ॥ १२ ॥ तो वह सेवक नियोगी अऋणी होकर सुख प्राप्त करता है, अतएव सच्ची बात निवेदन करने से पातक नहीं होता ॥ १३ ॥ अपना कर्तव्य यत्नपूर्वक करने से प्राणियों को कोई अपराध नहीं होता, अतएव तुमको इस कार्य के लिये जिसको तुम कर नहीं सकते शोच न करना चाहिये ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर यम बड़ा खिन्न हुआ, आँखों में आँसू भर कर दीन वाणी से बोला ॥ १५ ॥

अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते ॥ तस्मान्निवेदितार्थस्य नानृतं न च पातकम् ॥१३॥
यत्ने कृते स्वकर्तव्ये नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्नैव शोचितुमर्हसि ॥१४॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा सौरिः पुनरत्यन्तखिन्नधीः ॥ उवाच दीनया वाचा गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥१५॥
प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै ॥ नाहं यास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसम्भव ॥१६॥
प्रशासति महावीर्ये भूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले ॥ चालयित्वा स्वधर्माच्च तमेकं भूपतिं विभो ॥१७॥
कृतकृत्योऽस्मि तनयो गयायां पिण्डदो यथा ॥ कृपालो तदिदं कार्यं साधयस्व ममाव्यय ॥१८॥

हे तात ! चरणों की सेवा से मुझको सब कुछ प्राप्त हो गया है परन्तु हे ब्रह्मा ! मैं अपने कार्य करने को तब तक न जाऊंगा ॥ १६ ॥ जब तक यह अति प्रतापी राजा भूमण्डल पर शासन करता है, हे विभु ! इस राजा को अपने धर्म से चलायमान करने पर ॥ १७ ॥ मैं वैसा ही कृतकृत्य हूँगा जैसे गया में पिण्डदान करनेवाला पुत्र होता है, हे कृपालु ! तो मेरे इस

कार्य को साधन करके मुझको स्थिर कीजिये ॥ १८ ॥ तब मैं प्रसन्नता से आपकी आज्ञा पालन करूँगा ॥ १९ ॥
यम से कहे हुए वाक्य को सुन कर ब्रह्माजी फिर चिन्ता में पड़ गये और नीचे मुख किये हुए यम को अनेक प्रकार से
समझाने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले—विष्णु के धर्म में प्रवृत्त राजा का मैं नाश नहीं कर सकता ॥ २१ ॥ यदि कोप के
कारण तू यही चाहता है तो चलो, हरि भगवान् के पास चलो, और उनसे सब वार्ता निवेदन करके जैसी वे आज्ञा दें वैसा

विज्वरस्तु ततो भूयः शासनं ते करोम्यहम् ॥१९॥ श्रुत्वा ब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः ॥
अवाङ्मुखं यमं प्राह सान्त्वयन् बहुधाप्ययम्॥२०॥ब्रह्मोवाच॥ननिग्राह्योमयाराजा विष्णुधर्मपरायणः२१।
यदिच्छलयसे कोपाद्गच्छामो ह्यन्तिकं हरेः ॥ निवेद्य सकलं तस्मै कर्म पश्चात्तदीरितम् ॥२२॥
स एव कर्ता लोकस्य धर्मस्य परिपालकः ॥ स च दण्डधरोऽस्माकं शास्ता कर्ता नियामकः ॥२३॥
न तदुक्तेऽस्ति प्रत्युक्तिरस्माकं विहिता नृप॥ न राजोक्तैस्तु प्रत्युक्तिर्दृश्यते क्वापि भूतले ॥२४॥
इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ ॥ ब्रह्मा तुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणं परमेश्वरम् ॥२५॥

करें ॥ २२ ॥ वही लोकों की सृष्टि करनेवाले हैं और धर्म के पालन करने वाले हैं, वही हम लोगों के दण्ड धारण करने
वाले और नियम बतलाने वाले है ॥ २३ ॥ हे नृप ! उनकी आज्ञा के विपरीत हम कुछ भी नहीं कर सकते, पृथ्वी पर कहीं
भी उस राजा की आज्ञा के प्रतिकूल कुछ नहीं देख पड़ता ॥ २४ ॥ इस प्रकार यम को सन्तोष दिलाकर उसके साथ क्षीर

समुद्र में गये और उस चिन्मात्र, निर्गुण, परमेश्वर को ब्रह्माजी ॥ २५ ॥ उस एक, अद्वितीय पुरुषोत्तम भगवान् की सांख्य-योग से स्तुति करने लगे, ब्रह्मा से स्तुति किये जाने पर विष्णु भगवान् प्रगट हुए ॥ २६ ॥ यम और ब्रह्मा दोनों ने तुरन्त उनको प्रणाम किया तब महा विष्णु ने बादल की गर्जना के समान गम्भीर वाणी से उनसे कहा ॥ २७ ॥ तुम लोग आज यहां क्यों आये हो, क्या राक्षसों ने दुःख दिया है ? यम का मुख किस कारण से मलीन है ? और यह कन्धे को क्यों

सांख्ययोगैरद्वीतीयमेकं तं पुरुषोत्तमम् ॥ अविरासीत्तदा विष्णुर्ब्रह्मणा संस्तुतो हरिः ॥२६॥
प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम् ॥ तावुवाच महाविष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ॥२७॥
कस्माद्युवामिहायातौ किं दुःखं दनुजैरभूत् ॥ म्लानं यममुखं कस्मात्केन वा नतकन्धरः ॥२८॥
एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तः प्राह कंकजः ॥ त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः ॥२९॥
वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते पदमव्ययम् ॥ ततो यमपुरी शून्या तेन चातीव दुःखितः ॥३०॥
तेन युद्धश्चकारासौ हन्तुं दण्डमथाददे ॥ त्वच्चक्रेण पराभूतो ययावद्य ममान्तिकम् ॥३१॥

झुकाये हुए हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मा ! यह सब मुझसे कहो, ऐसी आज्ञा पाकर ब्रह्माजी ने कहा—आपके उत्तम दास उस राजा के पृथ्वी पर शासन करते हुए मनुष्य लोग ॥ २९ ॥ वैशाख मास के धर्मों में निरत होकर परम पद को पा रहे हैं, इसीसे यम की नगरी शून्य हुई है, इसी से यह दुःखी है ॥ ३० ॥ इसी कारण इसने उस राजा से युद्ध किया था और मारने के

तब मेरा काम होगा, दुःख मत करो ॥ ४३ ॥ माधवप्रिय इस वैशाख मास में सब मनुष्य तथा धर्म में श्रद्धा रखनेवाला महात्मा लोग तुमको भी तेरा भाग देंगे ॥ ४४ ॥ राजा से भी समय से तू अपना भाग पावेगा, इस लिये खेद को शान्त कर, बल के अधिक होने से तेरा शत्रु पराक्रम के शुल्क को स्वयं खा जाता है ॥ ४५ ॥ अपने-अपने भाग को ग्रहण करता हुआ भाग लेनेवाला दुखी नहीं होता, जो लोग संसार मे प्रतिदिन तुम्हारे लिए बलि नहीं देते है ॥ ४६ ॥ स्नान नहीं

दापयिष्यामि ते भागं मासेऽस्मिन्माधवेऽपि च ॥ नरैः सर्वैश्च वैशाखे धर्मनिष्ठैर्महात्मभिः ॥४४॥
भूपेनापि च कालेन खेदं शमय तेन च ॥ वीर्यशुल्कं तु ते भागं शत्रुर्भुङ्क्ते बलाधिकात् ॥४५॥
गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति ॥ त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहं ये नरा भुवि ॥४६॥
स्नानं चार्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चान्तिमे दिने ॥ वैशाखे सकलं कर्म तेषां वै विफलं भवेत् ॥४७॥
तस्मात्क्रोधं त्यज नृपे भागदे मत्परायणे ॥ ये के चापि प्रकुर्वन्ति लोके ते भागदा नराः ॥४८॥
वैशाखोक्तं महाधर्मं तेषां विघ्नं च मा कुरु ॥ मामेव ये यजन्त्यद्धा त्वां हित्वा धर्मपालनम् ॥४९॥

करते, अर्घ्य, जल का भरा घड़ा तथा अन्न अन्तिम दिन मे दान नहीं देते, उनके वैशाख महीने के सब कर्म अवश्य निष्फल होते हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये तेरे भाग देनेवाले मेरे मे लीन उस राजा पर तू क्रोध मत कर, जो कोई लोग संसार में तेरे भाग को देते है ॥ ४८ ॥ वैशाख मे कहे हुए बड़े धर्मों में तू उनका विघ्न मत कर अथवा जो लोग तुझे छोड़ कर धर्म पालन

करते हैं ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! मेरी आज्ञा से तुम उसको दण्ड दो, तुम्हारा भाग दिलाने के लिये उस राजा के पास मैं सुनन्द को भेजता हूँ ॥ ५० ॥ मेरी आज्ञा से वह जाकर तेरा भाग दिलवावेगा, विष्णु भगवान् के पास यम के बैठे रहते ॥ ५१ ॥ भगवान् ने राजा को समझाने के लिये सुनन्द को भेजा, वह भी जाकर राजा को समझाकर लौट आया ॥ ५२ ॥

मदाज्ञया महाभाग तदा दण्डं च त्वं कुरु ॥ नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च ॥५०॥
मच्छासनात्सतं गत्वा भागं ते दापयिष्यति ॥ तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः ॥५१॥
सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः ॥ सोऽपि गत्वा बोधयित्वा पार्श्वं च पुनरागमत् ॥५२॥
इत्याश्वास्य यमं शम्भु विष्णुरन्तरधीयत ॥ यमं स्वयं सान्त्वयित्वा तमनुज्ञाप्य वै ततः ॥५३॥
अतिविस्मयमापन्नो ययौ धाम सहानुगैः ॥ यमोऽपि स्वपुरीं प्रायात्किञ्चित्संहृष्टमानसः ॥५४॥
पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिभाषितः ॥ भागदाः सकला लोका ये वैशाखपरायणाः ॥५५॥

इस प्रकार से यम को आश्वासन करके विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गये, यम को स्वयं समझाकर और आज्ञा देकर ॥ ५३ ॥ अति विस्मित होकर ब्रह्माजी अपने धाम को चले गये, यम भी अपने अनुचरों के साथ कुछ प्रसन्न होकर अपनी यमपुरी को चला गया ॥ ५४ ॥ बाद में विष्णु की आज्ञा से जैसा कि सुनन्द ने कहा था वैशाख मास के धर्म करनेवाले सब लोग

यम भाग को देने लगे ॥ ५५ ॥ राजा ने कहा कि जो मनुष्य धर्मराज के निमित्त धर्म न करेंगे उनके वैशाख मास के धर्मों के पुण्य को स्वयं यमराज ले लेंगे ॥ ५६ ॥ प्रतिदिन स्नान करके यम को अर्घ्य दे, नहीं तो वैशाख के सम्पूर्ण पुण्य विफल हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ मनुष्यों को वैशाख मास की पूर्णमासी के दिन पहिले धर्मराज के निमित्त जल से भरा घड़ा, दही

धर्मराजं समुद्दिश्य ये न कुर्वन्ति मानवाः ॥ तेषां हि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसम्भवम् ॥५६॥
कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै ॥ वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥५७॥
सोदकुम्भं च दध्यन्नं पौर्णमास्यां च माधवे ॥ धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमं जनैः ॥५८॥
पश्चात्पितॄन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः ॥ मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं जनार्दनम् ॥५९॥
शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलं च सदक्षिणम् ॥ सफलं काँस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥६०॥
दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम् ॥ मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते ॥६१॥

और अन्न दान देना चाहिये ॥ ५८ ॥ बाद मे पितर और गुरु को उद्देश्य करके, फिर मधुसूदन भगवान् को उद्देश्य करके और तब जनार्दन भगवान् को ॥ ५९ ॥ दक्षिणा सहित शीतल जल, दही तथा अन्न काँसे के पात्र में फल रखकर ब्राह्मण को दान दे ॥ ६० ॥ मधुसूदन भगवान् की दिव्य प्रतिमा भी इस महीने के धर्म का उपदेश करनेवाले ब्राह्मण को प्रसन्न करने

के लिये दे ॥ ६१ ॥ उसी धर्मोपदेशक का स्वयं विधिपूर्वक पूजन करे, सुनन्द से ऐसी आज्ञा पाकर राजा ने वैसाही किया ॥ ६२ ॥ अपने चाहे हुए भोगो को भोगकर उसने अपनी बची हुई आयुष्य को बिताया और पुत्र, पौत्र इत्यादि से पूर्ण होकर बैकुण्ठ मे गया ॥ ६३ ॥ उस राजा के वैकुण्ठ में रहने पर वेन नाम का अधम राजा हुआ, सब धर्मों को विशेष

तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः ॥ इत्यादिष्टः सुनन्देन तथा राजा चकार ह ॥६२॥
स नीत्वा चायुषः शेषं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम् ॥६३॥
बैकुण्ठस्थे नृपे तस्मिन्वेनो राजाऽधमोऽभवत् ॥ सर्वे धर्माश्च वैशाखधर्मा अपि विशेषतः ॥६४॥
दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे ॥ न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः ॥६५॥
यः कश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान् ॥ बहुजन्मार्जिते पुण्ये परिपाकमुपागते ॥६६॥
वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत्॥मैथिल उवाच॥पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान्॥६७॥

कर वैशाख महीने के धर्मों का ॥ ६४ ॥ उस दुरात्मा ने लोप कर दिया और पृथ्वी पर फिर से मोक्ष देनेवाले धर्म प्रसिद्ध न हुए ॥ ६५ ॥ सब कोई वैशाख महीने के इन कल्याणकारी धर्मों को नहीं जानता, अनेक जन्मो के कमाये हुए पुण्य का यह फल होता है ॥ ६६ ॥ वैशाख मास मे कहे हुए धर्मों की बुद्धि अन्त में आती है। मैथिलजी ने कहा—पूर्व मन्व-

न्तर में वेन नाम का दुरात्मा राजा हुआ था ॥ ६७ ॥ यह वैवस्वत का पुत्र था तथा इक्ष्वाकुवंश का राजा था, यह
कथा मैंने पहिले सुना था, अब भी आपने इसी को कहा ॥ ६८ ॥ इस राजा के बैकुण्ठ जाने पर वेन राजा होगा हे महा-
मति श्रुतदेव ! इस संशय को हटा दीजिये ॥ ६९ ॥ श्रुतदेवजी ने कहा—युग तथा कल्प की व्यवस्था पुराणों में उल्टी है,
इस कथा के असङ्गत होने के विषय में आपको कोई शङ्का न करना चाहिये ॥ ७० ॥ जैसे क्रम से ये कथा निरन्तर होती

अयं वैवस्वतः पुत्रो राजा चेक्ष्वाकुभूपतिः ॥ इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीं तूच्यते त्वया ॥६८॥
अथ वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति ॥ इत्येतत् संशयं छिन्धि श्रुतदेव महामते ॥६९॥
श्रुतदेव उवाच॥पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया॥न चाप्रामाण्यशङ्का ते कथाया व्यत्यये क्वचित्॥७०॥
गते दैनंदिने कल्पे कथैषा शाश्वती शुभा ॥ मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्ता तव भूपते ॥७१॥
तत्मान्न ख्यातिमायाता धर्मा वैशाखसम्भवाः ॥ कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः ॥७२॥
इति श्रीस्कन्दमहापुराणे वैशाखमहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे यमदुःखसान्त्वनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

गई हैं और मार्कण्डेय ऋषि ने जैसा मुझ से कहा है, हे भूपति ! वैसेही मैंने तुमसे कहा है ॥ ७१ ॥ इसी से वैशाख मास
के धर्म प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं होते, विरले ही विष्णु भगवान् के भक्त इसको जानते हैं ॥ ७२ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख महात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में
दुःख सान्त्वन नाम का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रुतदेवजी ने कहा—सूर्य के मेषराशि में जाने पर वैशाख महीने में जो प्रातःकाल स्नान करता है और मधुसूदन भगवान् की पूजा करके हरि की यह कथा सुनता है ॥ १ ॥ वह पापों से मुक्त होकर विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता है, जो मूर्ख वाँची जाती हुई इस कथा को छोड़ कर दूसरी कथा सुनता है ॥ २ ॥ वह रौरव नाम के नरक को प्राप्त करके पिशाच योनि में जाता है, इसका एक पुराना इतिहास तुमसे कहता हूँ ॥ ३ ॥ यह प्राचीन इतिहास, पाप को नाश करने-

श्रुतदेव उवाच॥ यः प्रातः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां श्रुत्वा हरेरिमाम्॥ १॥
स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥ वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः ॥२॥
रौरवं नरकं प्राप्य पैशाचीं योनिमाप्नुयात् ॥ अत्रैवोदाहरन्तीदमितिहासं पुरातनम् ॥ ३ ॥
पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो हृद्यं पुरातनम् ॥ पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे ॥ ४ ॥
दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ ॥ सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ ॥ ५ ॥
भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ ॥ सत्यनिष्ठतपोनिष्ठा इति ख्यातौ जगत्त्रये ॥ ६ ॥

वाला, पवित्र, धर्म करनेवाला तथा तत्काल हृदय में ग्रहण करने योग्य है। प्राचीन काल में गोदावरी नदी के तीर पर शुभ ब्रह्मेश्वर क्षेत्र में ॥ ४ ॥ दुर्वासा ऋषि के दो शिष्य परमहंस तथा ब्रह्म में भक्ति रखनेवाले थे, उनको किसी पदार्थ की अभिलाषा न थी और वे सर्वदा उपनिषद् विद्या में तत्पर रहते थे ॥ ५ ॥ बड़े पुण्यात्मा थे, गुहा में निवास करते थे और

भिक्षा माँगा हुआ ही भोजन करते थे, तीनों जगत् में सत्यनिष्ठ और तपोनिष्ठ नाम से प्रसिद्ध थे ॥ ६ ॥ उन दोनों में सत्यनिष्ठ सदा विष्णु भगवान् की कथा में लीन रहता था, हे राजन् ! श्रोतागण तथा व्याख्यान देनेवालों के अभाव में ॥ ७ ॥ यह मुनीश्वर स्वयं इन कार्यों को करने लगता था, यदि कोई श्रोता रहता था तो दिन रात उसको व्याख्यान देता था ॥ ८ ॥ यदि कोई शुभ पुण्यवती विष्णु भगवान् की कथा का व्याख्यान करता था, तो वह सब काम छोड़ कर

तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठः सदा विष्णुकथापरः ॥ श्रोतॄणामप्यभावे च व्याख्यातॄणां तथा नृप ॥ ७ ॥

तदा कर्मकलापानि करोत्यद्धा मुनीश्वरः॥श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम् ॥ ८ ॥

यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम् ॥ तदा सङ्कोच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः ॥९॥

अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च ॥ हित्वा कथाविरोधीनि तथा कर्माणि भूरिशः ॥१०॥

शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम् ॥ विना कथां न जानाति सेव्यमन्यन्नरेश्वर ॥११॥

व्याख्याति च गृहे स्वस्य वक्ता रोगाद्युपद्रुतः ॥ कूपस्नानपरो भूत्वा शृणोत्येव कथां मुनिः ॥१२॥

इसको सुनने में लग जाता था ॥ ९ ॥ बड़े दूरवाले तीर्थ तथा देवमन्दिरों को छोड़ कर कथा विरोधियों के लिये सर्वदा यह कार्य करता था ॥ १० ॥ दिव्य कथा को सुनता था, सुननेवालों को स्वयं सुनाता था, हे राजेन्द्र ! बिना कथा के वह अन्न नहीं ग्रहण करता था ॥ ११ ॥ रोग से ग्रस्त होने पर यह वक्ता अपने घर में व्याख्यान करता था, कुवें पर स्नान

करके मुनि कथा सुनता हुआ ॥ १२ ॥ कथा के अन्त में अपना कृत्य करता था, कथा सुनने से मनुष्य का जन्म का बन्धन नहीं होता ॥ १३ ॥ विष्णु भगवान् में सत्त्व शुद्धि होती है और दुःख दूर होते हैं, विष्णु भगवान् में प्रेम होता है और साधुओं में मित्रता-उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥ हृदय में निरञ्जन, निर्गुण ब्रह्म शीघ्र हृदय में आजाते हैं, ज्ञानहीन पुरुष

कथायाश्च विरामे तु स्वकृत्यं साधयत्यलम् ॥ कथा वै शृणवतः पुंसो जन्मबन्धो न विद्यते ॥१३॥
सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति ॥ रतिश्च जायते विष्णौ सौहृदं चैव साधुषु ॥१४॥
निरञ्जनगुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते ॥ ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत् ॥१५॥
बहुधा धारितं चापि यथैवान्धस्य दर्पणम् ॥ कर्माणि क्रियमाणानि बहुधा शोचितात्मभिः ॥१६॥
सत्त्वशुद्ध्या भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत् ॥ श्रुते तु ज्ञानमासाद्य ज्ञानाद्ध्यानाय कल्पते ॥१७॥
बहुधा श्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम् ॥ यत्र विष्णुकथा नास्ति यत्र साधुजना नहि ॥१८॥

के कर्म निश्चय निष्फल हो जाते हैं ॥ १५ ॥ अनेक बार किये हुए कर्म वैसेही निष्फल होते हैं जैसे अन्धे को दर्पण । दुःखी मन से जो कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ वह सत्त्व शुद्धि के लिये होता है और सत्त्व शुद्धि से श्रुति में प्रवेश होता है और श्रुतियों का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥ और श्रुतिवाक्यों पर विचार ध्यान और श्रवण बहुधा होता है, जहाँ

विष्णु भगवान् की कथा नहीं होती और जहाँ साधु जन नहीं रहते ॥ १८ ॥ वह स्थान साक्षात् गङ्गा तट होने पर भी
अवश्य त्याग देना चाहिये, जिस देश में तुलसी न हो तथा विष्णु भगवान् के सुन्दर मन्दिर न हों ॥ १९ ॥ और जहाँ
विष्णु भगवान् का स्मरण न किया जाता हो वहाँ पर मरने से अन्धकार प्राप्त होता है, जिस गाँव में विष्णु भगवान् का
मन्दिर न हो और काले मृग न हों ॥ २० ॥ जहाँ विष्णु भगवान् की कथा न होती हो, जहाँ साधु लोग आश्रय न लेते

साक्षाद्गङ्गातटं वापि त्याज्यमेव न संशयः ॥ यद्देशे तुलसी नास्ति वैष्णवं धाम वा शुभम् ॥१९॥
यत्र विष्णुस्मृतिर्नास्ति मृतस्तत्र ततो व्रजेत्॥ यद्ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा ॥२०॥
यत्र विष्णुकथा नास्ति साधवो वा तदाश्रयाः ॥ मृतस्तत्र पुमान्क्षिप्रं श्वानयोनिशतं व्रजेत् ॥२१॥
विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः ॥ सदा विष्णुकथासक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः ॥२२॥
न किञ्चिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम् ॥ इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठो दुराग्रहः ॥२३॥
न व्याख्याति स्वयं वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम्॥ वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति॥२४॥

हों वहाँ पर मरने से मनुष्य शीघ्रही कुत्ते की योनि को प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ वह मुनि उपनिषद् विद्या पर विचार करके
ऐसा निश्चय करके सर्वदा विष्णु भगवान् की कथा में लीन तथा विष्णु भगवान् का स्मरण किया करता था ॥ २२ ॥
और कथा सुनने से बढ़ कर कोई बात नहीं मानता था, दूसरा जो तपोनिष्ठ नाम का ऋषि था उसकी श्रद्धा बुरे कर्मों में
रहती थी ॥ २३ ॥ वह न तो स्वयं कथा सुनाता था न सुनता ही था, कथा बाँची जाती रहते तीर्थ स्नान के लिये चला जाता

था ॥ २४ ॥ हे भूमिपाल ! तीर्थ में होती हुई कथा को भी शङ्कित होकर चञ्चलता के कारण तथा कर्मलोप के भय से छोड़कर दूर चला जाता था ॥ २५ ॥ कार्य करनेवाले श्रोता तथा वक्ता उसके पास नहीं जाते थे, घर के कार्य के लिये भी लोग उसका साथ छोड़ देते थे ॥ २६ ॥ उस दुराग्रही दुर्बुद्धि का समय इसी प्रकार बीतता था, भगवान् की कथा से उसकी जीभ तथा उसके कानों ने पुण्य प्राप्त न किया ॥ २७ ॥ जब उस मुनि ने दुर्बुद्धि और दुराग्रह से कथा न सुनने

तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायां कथायां भूमिपालक ॥ कर्म लोपभयाद्दूरं याति चाञ्चल्यशङ्कितः ॥२५॥
व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं सङ्गमात्परतो जनाः ॥ न श्रोतारो न वक्तारस्तस्य पार्श्वे तु कर्मिणः ॥२६॥
दुराग्रहस्य दुर्बुद्धेः काल एवं क्षयं गते ॥जिह्वा श्रुतिश्च न क्वापि न प्राप्ता हि कथा विभोः ॥२७॥
अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात् ॥ पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः ॥२८॥
पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे छिन्नकर्णाह्वयो बली ॥ निराश्रयो निराहारः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥२९॥
एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्ययुता गताः ॥ नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः ॥३०॥

और न बाँचने के कारण धर्म प्राप्त न किया तो, मर जाने पर ॥ २८ ॥ वह शमी वृक्ष के ऊपर छिन्नकर्ण नाम का बलवान् पिशाच हुआ, वह आश्रय और आहार रहित था उसके कण्ठ और तालु सूखे थे ॥ २९ ॥ इस प्रकार से दुखी रहकर उसके दिव्य दस हजारवर्ष बीते, निराहार और अति दुखी रहता हुआ, उसने अपने तारण करनेवाले को नहीं देखा ॥ ३० ॥

०
७५
अपने किये पर चिन्ता करता हुआ अति उन्मत्त के सदृश्य भूख के मारे घूमते हुए उस मूढ़ बुद्धि ने मोक्ष नहीं प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ उस अकृतात्मा के शरीर पर वायु अग्नि के समान स्पर्श करती थी, जल कालाग्नि के समान तथा फल और पुष्प इत्यादि उसको विष के समान जान पड़ते थे ॥ ३२ ॥ ऐसी स्थिति में उस निर्जन वन में इस विचारे कुकर्मी ने कहीं सुख प्राप्त

स्वकृतं चिन्तयानश्च मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत् ॥ क्षुधया पर्यटन्वापि निर्वृत्तिं नाम मूढधीः ॥३१॥
कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वाऽकृतात्मनः ॥ कालाग्नितुल्या आपश्च फलपुष्पादिकं विषम् ॥३२॥
न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम् ॥ एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते ॥३३॥
कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रये साधुवर्जिते ॥ दैवादायात्सत्यनिष्ठस्तदा पैठीनसीं पुरीम् ॥३४॥
गच्छन्मार्गे ददर्शासौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम् ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मानं खादयन्तं रुदन्तं क्षुधयाऽऽतुरम् ॥३५॥
मा भैषीरिति चाभाष्य कोऽसीत्याह मुनीश्वरः ॥ दशेदृशी च कस्मात्ते नं ते दुःखमतः परम् ॥३६॥

नहीं किया ॥ ३३ ॥ कथा से रहित तथा साधुओं से त्याग किये हुए इस क्षेत्र में जहाँ पर वह रहता था उस पैठीनसी नाम पुरी में तब दैवयोग से सत्यनिष्ठ नाम के मुनि ने ॥ ३४ ॥ मार्ग में जाते हुए अति पीड़ित इस छिन्नकर्ण को देखा, रोते हुए क्षुधा से पीड़ित, अपने शरीर को खाते हुए इसको देखकर ॥ ३५ ॥ उस मुनीश्वर ने कहा—तुम कौन हो, भय मत करो,

किस कारण से तुम्हारी यह दशा है? अब इससे अधिक दुःख तुमको न होगा ॥ ३६ ॥ मुनि से इस प्रकार आश्वासन
किये जाने पर अति विह्वल होकर छिन्नकर्ण ने कहा—हे प्रभु! मैं दुर्वासा ऋषि का शिष्य तपोनिष्ठ नाम का यति हूँ ॥ ३७ ॥
ब्रह्मेश्वर क्षेत्र का रहनेवाला मैं कर्मों में श्रद्धा रख कर दुराचारी था, हे मुनि! कर्मों के लोप के भय से मैंने मूर्खता और
दुर्बुद्धि से ॥ ३८ ॥ साधुओं से बाँची जाती हुई विष्णु भगवान् की सत्कथा का आदर नहीं क्रिया और अकर्म को हटानेवाली

इत्याश्वस्तोऽमुना च्छिन्नकर्णः प्राहातिविह्वलः ॥ तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः प्रभो ॥३७॥

ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही ॥ कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मया दुर्बुद्धिना मुने ॥३८॥

साधुभिर्वाच्यमानापि नादृता विष्णुसत्कथा ॥ न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी ॥३९॥

तेन कर्मविपाकेन महता दुर्गतिं गतः ॥ छिन्नकर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचो दुःखविह्वलः ॥४०॥

न पश्यामि च त्रातारं दुःखादस्मात्कथञ्चन ॥ तव दृष्टिपथं यातो दिष्ट्याऽहं गतकल्मषः ॥४१॥

अद्य मे देवतास्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये ॥ हरिश्च मे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम ॥४२॥

कथा को श्रोतागण को नहीं सुनाया ॥ ३९ ॥ इस कर्म के परिणाम में मैंने बड़ी दुर्गति प्राप्त किया है, दुःख से व्याकुल मैं
छिन्नकर्ण नाम का पिशाच हुआ हूँ ॥ ४० ॥ मुझको दुःख से छोड़ानेवाला कोई देख नहीं पड़ा, आप मुझको देख पड़े
हैं, आपको देखने से मैं पाप रहित हो गया हूँ ॥ ४१ ॥ आज मुझ पर देवता, गुरु तथा साधु लोग प्रसन्न हुए हैं, आपके

दर्शन से हरि भगवान् भी मुझपर प्रसन्न हो गये हैं ॥ ४२ ॥ मेरी रक्षा कीजिये । मेरी रक्षा कीजिये । ऐसा रोता हुआ
वह उनके पैरों पर पृथ्वी पर गिर पड़ा, तब महात्मा सत्यनिष्ठ ने कृपा करके ॥ ४३ ॥ अपने हाथों से उसको उठाया और
जल छिड़िक कर उसको उत्तम पुण्य दिया ॥ ४४ ॥ तथा वैशाख मास के माहात्म्य सुनने से मुहूर्त भर में उत्पन्न होनेवाला

पपात पादयोर्भूमौ त्राहि त्राहीति वै रुदन् ॥ ततस्तु कृपयाविष्टः सत्यनिष्ठो महायशाः ॥४३॥
दोर्भ्यामुत्थापयामास सन्तमाभ्यां मुनीश्वरम् ॥ ततस्त्वप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥४४॥
वैशाखमासमाहात्म्यं श्रवणस्य मुहूर्त्तजम् ॥ तेन पुण्यप्रभावेण सद्यो ध्वस्ताखिलाशुभः ॥४५॥
पिशाचदेहान्निर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम् ॥४६॥
आमन्त्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोः परं पदम् ॥ सत्यनिष्ठस्ततो धीमान् ययौ पैठीनसीं पुरीम् ॥
माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तमानः पुनःपुनः ॥४७॥ श्रुतदेव उवाच ॥ यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा ॥

पुण्य भी दिया, उसके प्रभाव से उसके सम्पूर्ण पाप तुरत नष्ट हो गये ॥ ४५ ॥ पिशाच का शरीर छोड़ कर वह दिव्य
शरीरधारी हो गया, उस महामुनि को प्रणाम करके विमान पर चढ़कर ॥ ४६ ॥ आमन्त्रण करके तथा परिक्रमा करके
वह विष्णुलोक को गया, तब सत्यनिष्ठ नाम का बुद्धिमान् ऋषि पैठीनसी नगरी में गया और बारम्बार माहात्म्य सुनने के

विषय में विचार करने लगा ॥ ४७ ॥ श्रुतदेवजी ने कहा--जहाँ शुभ फल देनेवाली, और पुण्य करनेवाली भगवान् की दिव्य कथा होती है वहाँ पर सब तीर्थ और पुण्य क्षेत्र आ जाते है ॥ ४८ ॥ जहाँ पापों को हरानेवाली पुण्य देनेवाली

तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥४८॥ यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथाऽऽपगा ॥
तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः ॥ ४९ ॥

इति श्री स्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीपसंवादे कथा प्रशंसायां
पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

विष्णु भगवान् की शुभ कथा होती है, उस देशवासियों के हाथों में मुक्ति रहती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥

श्री वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप संवाद में कथा प्रशंसा मे
पिशाचमुक्ति प्राप्ति नाम का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



श्रुतदेवजी ने कहा-हे भूपाल ! पाप नाश करनेवाले मधुसूदन के प्रिय इस माधव मास के माहात्म्य को सुनिये ॥ १ ॥ प्राचीन समय में पाञ्चाल देश में पुण्यशील और बुद्धिमान् भूरियश नाम के राजा का पुरुयश नाम का पुत्र था ॥ २ ॥ पिता के स्वर्ग चले जानेपर धर्मों का पालन करनेवाला, शूरता तथा उदारता के गुणों से युक्त धनुर्विद्या में कुशल यह

श्रुतदेव उवाच॥ भूयःशृणुष्व भूपाल माहात्म्यं पापनाशनम्॥ पुण्यमाधवमासस्य वल्लभस्य मधुद्विषः॥ १॥

पुरा पाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशोऽभवत् ॥ तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥ २ ॥

पितरि प्रस्थिते स्वर्गं राज्यस्थो धर्मपालकः ॥ शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः ॥ ३ ॥

शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः ॥ पूर्वजन्मकृतेनैव दोषेण महता वृतः ॥ ४ ॥

सम्पद्धानिमवापासौ कालेन कियताऽनघ ॥ हया गजा मृतिं याता महद्रोगेण पीडिताः ॥ ५ ॥

दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम् ॥ राज्यं कोशरतदा चासीद्गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ६ ॥

राजा राज्यसिंहासन पर बैठा ॥ ३ ॥ यह अति बुद्धिमान् राजा धर्मपूर्वक पृथ्वी पर राज करने लगा, पूर्वजन्म के किये हुए बड़े पाप से ॥ ४ ॥ कुछ समय में इसकी सम्पत्ति की हानि हो गई, बड़े बड़े रोगों से पीड़ित होकर उसके हाथी घोड़े मर गये ॥ ५ ॥ मनुष्य हीन करनेवाला बड़ा दुर्भिक्ष देश में व्याप्त हुआ, हाथी से खाये हुए कैथ के फल के समान राज्य

का कोश पोला हो गया ॥ ६ ॥ राजा को कोश तथा राज्य से हीन तथा बलहीन जानकर उसके जीतने का यह समय है ऐसा सोचते हुये ॥ ७ ॥ उस राजा के सैकड़ो शत्रु राजा लोग आये ॥ और उस पाञ्चाल देश के राजा को उन्होंने जीत लिया ॥ ८ ॥ तब उस राजा ने हार कर शिखिनी रानी, धात्री इत्यादि तथा सेवकों के साथ पहाड़ की कन्दरा में प्रवेश

बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम् ॥ तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसाः ॥ ७ ॥
आजग्मुः शतशो भूपा रिपवस्तस्य भूपतेः ॥ जिग्युर्युद्धेन तं भूपं पाञ्चालविषयाधिपम् ॥ ८ ॥
पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे ॥ शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः ॥ ६ ॥
अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः ॥ त्रिपञ्चाशत्समा नीतास्तेन राज्ञा यतात्मना ॥१०॥
चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धोऽहं मातृपितृहिते रतः ॥११॥
गुरुभक्तः सदार्जिवयो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेन्द्रियः ॥१२॥

क्रिया ॥ ९ ॥ वहाँ का मार्ग कोई नहीं जानता था, बहुत दुःख सह कर उस राजा ने कष्ट से तिरपन वर्ष बिताये ॥ १० ॥ राजा ने वारम्वार सोचा कि ऐसा क्यों हुआ है, मैं तो शुद्ध हूँ और माता पिता के हित में तत्पर रहता हूँ ॥ ११ ॥ मैं गुरुभक्त, सरल और धर्म तत्पर हूँ, मैं ब्राह्मण का भक्त हूँ, सब प्राणियों पर दया करता हूँ, देवताओं का भक्त और

जितेन्द्रिय हूँ ॥ १२ ॥ न मेरे भाई, न मेरे पुत्र और न मेरे मित्र हितकारी हैं, कुलीन होनेपर भी मेरी दया और पराक्रम की प्रसिद्धि कहाँ गई ॥ १३ ॥ किस कर्म से अति दुःख देनेवाली दरिद्रता हुई है, किस कारण मेरा पराजय हुआ और आज मैं किस कारण से वनवास करता हूँ ॥ १४ ॥ उस दुखी राजा ने चिन्ता से व्याकुल होकर अपने गुरु का स्मरण किया । तब

न भ्राता मे न पुत्रो मे न च मे सुहृदो हिताः ॥ दयापौरुषविख्यातिः कुलीनस्यापि मे कुतः ॥१३॥
केन वा कर्मणा चासीद्दारिद्र्यं भूरिदुःखदम् ॥ केन वाऽपजयो मेऽद्य केन वा वनवासिता ॥१४॥
इति चिन्ताकुलो राजा गुरुं सस्मार खिन्नधीः ॥ याजोपयाजकौ नाम सर्वज्ञौ मुनिसत्तमौ ॥१५॥
आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तु राज्ञाऽऽहूतौ महामती ॥ तौ दृष्ट्वा सहसोत्थाय राजा पाञ्चालवल्लभः ॥१६॥
ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनातिपीडितः ॥ राजचिह्नविहीनत्वात्केनाप्यज्ञातपद्धतिः ॥१७॥
तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः ॥ दोर्भ्यामुत्थापितस्ताभ्यां परिमृष्टाश्रुलोचनः॥१८॥

याजक और उपयाजक नाम के त्रिकालज्ञ दो श्रेष्ठ मुनि ॥ १५ ॥ राजा से बुलाये जाने पर आये, उनको देखकर पाञ्चाल-वल्लभ राजा ने तुरन्त उठकर ॥ १६ ॥ वनवास से पीड़ित राजचिह्नों से हीन उस राजा ने जिसकी पद्धति किसी को ज्ञात न थी, भक्तिपूर्वक शिर झुकाकर उनको नमस्कार किया ॥ १७ ॥ उनके चरणों पर पृथ्वी में गिरकर मुहूर्तभर तक चुपचाप

पड़ा था, उन्होंने उसको अपने हाथों से उठाया, आँसू पोंछ कर ॥ १८ ॥ उसने वन की शुभ सामग्री से उनकी विधिपूर्वक पूजा किया, स्वस्थ्य होकर बैठने पर उन दोनों ब्राह्मणों से मस्तक नीचा किये हुए उस राजा ने पूछा ॥ १९ ॥ हे दोनों ब्राह्मणों कर्म तथा जन्म से शुद्ध, पिता और देवताओं के प्रिय मुझ राजा के दुःख का कारण कहिये ॥ २० ॥ पाप से डरनेवाला दयावान्, गुरुभक्त मैं दरिद्र क्यों हो गया, मेरा कोश क्यों नष्ट हो गया और मैं शत्रुओं से क्यों जीता गया ॥ २१ ॥ किस

विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवार्हणैः शुभैः ॥ सूपविष्टौ तु तौ विप्रौ पप्रच्छानतकन्धरः ॥१९॥

ब्रह्मिष्ठौ वदतं दुःखकारणं च क्षितीशितुः ॥ कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्य च ॥२०॥

पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः ॥ दारिद्र्यं कोशहानिश्च रिपुभिश्च पराभवः ॥२१॥

कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम ॥ न पुत्रो न च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे ॥२२॥

दुर्भिक्षं वा कुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ ॥२३॥

इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूपेनात्यन्तदुःखिना ॥ प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किञ्चिद्ध्यानपरायणौ ॥२४॥

कारण से मैं वनवास करता हूँ, मैं अकेला क्यों हो गया, न मेरे पुत्र, न भाई और न मित्र मेरे हितकारी हैं ॥ २२ ॥ पाप रहित मेरे शासन करते हुए देश में दुर्भिक्ष क्यों हुआ ? हे दोनों मुनिवर ! इन सबका कारण मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २३ ॥ दोनों मुनिवर महात्माओं ने अत्यन्त दुखी राजा के ऐसा पूछने पर क्षण भर ध्यान करके कहा ॥ २४ ॥ याज

और उपयाज ऋषियों ने कहा—हे राजा। सुनो, हम दोनों तुम्हारे दुःख के कारण को बतलाते हैं। तुम प्राचीन काल में दस जन्मतक महापापी बहेलिया थे ॥ २५ ॥ तुम बडे निर्दयी थे, सब प्राणियों के हिंसा में लगे रहते थे, तुम मे शान्ति और इन्द्रियों का दमन न था और धर्म का लेशमात्र न था ॥ २६ ॥ तेरी जीभ विष्णु भगवान् का नाम कभी नहीं लेती थी,

याजोपयाजावूचतुः॥शृणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्य कारणम्॥पुरा भूप महापापी व्याधस्त्वं दशजन्मसु२५

निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः ॥ धर्मलेशकरः क्वापि न दमो न च वै शमः ॥२६॥

न जिह्वा वक्ति नामानि विष्णोर्वापि कथञ्चन ॥ न चेतः स्मरति श्रीशचरणाम्बुरुहद्वयम् ॥२७॥

न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने ॥ नव जन्मानि ते भूप गतान्येव दुरात्मनः ॥२८॥

दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे ॥ निष्ठुरः सर्वलोकानां नराणां त्वं नरान्तकः ॥२९॥

दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः ॥ निर्गुणः सकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः ॥३०॥

तेरा हृदय विष्णु भगवान् के चरण युगलों का ध्यान नहीं करता था ॥ २७ ॥ तुमने अपने मस्तक से परमात्मा को प्रणाम नहीं किया, हे राजन्! तुझ दुरात्मा के नव जन्म इसी प्रकार से बीते ॥ २८ ॥ दसवें जन्म में सह्य-पर्वत पर बहेलिया होकर तू सब लोगों पर निर्दयी हुआ तथा मनुष्यों का यमराज हो गया ॥ २९ ॥ तू दयाहीन था, शस्त्र द्वारा अपनी जीविका

चलाता था, सर्वदा मार काट में लगा रहता था, गुणहीन था, मनको त्रास देनेवाला और दुष्ट था तथा मार्ग चलनेवालों को पीड़ा देता था ॥ ३० ॥ तू राक्षस था और गौड देश के निवासी मनुष्यों का माँस खाता था। अपना हित न जाननेवाले तूने इस प्रकार से अपनी आयुष्य विताई ॥ ३१ ॥ पशु पक्षियों के छोटे छोटे बच्चों की हत्या करने से तुझ दयाहीन दुर्बुद्धि को पुत्र नहीं हुए ॥ ३२ ॥ विश्वासघात करने के कारण तेरे सहोदर भाई नहीं हुए। मार्ग में चलनेवालों को पीडा

प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः ॥ एवं चाब्दान्यतीतानि नैजं हितमजानतः ॥३१॥
वालापत्यमृगाणां च पक्षिणां च वधात्तव ॥ दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता ॥३२॥
विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नैव सोदराः ॥ मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः ॥३३॥
साधूनां च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः ॥ कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥३४॥
सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः ॥ सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम् ॥३५॥
निराहारोऽप्यतः पूर्वं सदा क्रूरेण कर्मणा ॥ तस्माद्राज्यापहारस्ते जन्मन्यस्मिन्महीपते ॥३६॥

देने के कारण तू मित्रवर्ग से त्याग दिया गया ॥ ३३ ॥ साधुओं का तिरस्कार करने के कारण तू शत्रुओं से जीता गया, कभी दान न देने के दोष से तेरे घर में दरिद्रता आई ॥ ३४ ॥ सदा उद्वेग करने के कारण तुझको दुःखमय वनवास हुआ, सबका अप्रिय होने के कारण तुझको अत्यन्त दुस्सह दुःख प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ पूर्वकाल में 'सर्वदा क्रूरकर्म करने के कारण

तू आहाररहित हुआ, हे राजा! इसीसे इस जन्म में तेरा राज्य हरण हुआ है ॥ ३६ ॥ अब मैं उच्च कुल में जन्म लेने के कारणों को बताता हूँ। जब तू बहेलिये के अन्तिम जन्म में गौड़ देश में रहता था ॥ ३७ ॥ और काँटों से भरे जङ्गल में अपने क्रूरकर्मों को करता रहा और दयाहीन बना था तथा पथिकों को कष्ट देता था ॥ ३८ ॥ उस समय दैववश घाम से पीड़ित वेदवेदाङ्गों के पण्डित कर्षण नाम मुनि तथा दो धनी वैश्य वहाँ आये ॥ ३९ ॥ पुण्यात्मा ऋषि जटाधारी थे, चीर

अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥ यदाऽभूगौंड़देशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि ॥३७॥
स्वकर्मनिरते क्रूरे विपिने कराटकान्विते ॥ तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि ॥३८॥
वैश्यावाजग्मतुर्दैवाद्धनाढ्यौ धर्मपीडितौ ॥ मुनिश्च कर्षणो नाम वेदवेदाङ्गपारगः ॥३९॥
जटाचीरधरः पुरायः कमराडलुपरिग्रहः ॥ तान् दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः ॥४०॥
अथोद्धृत्य शरौ वैश्यौ कृत्वा छिन्नशरीरकौ ॥ तयोरेकं च हत्वा तु गृहीत्वा खलु तत्पणम् ॥४१॥
अपरं हन्तुमुद्युक्ते स दुद्राव भयाद्द्रुतम् ॥ पणं गुल्मे विनिक्षिप्य भीतः प्राणपरीप्सकः ॥४२॥

पहिने थे और कमण्डलु लिये थे। उनको देख कर धनुष लेकर मार्ग रोक कर तू खड़ा होगया ॥ ४० ॥ तीर छोड़ कर तूने दोनों वैश्यों का शरीर छिन्न किया, इनमें से एक को मार कर तूने उसका धन ले लिया ॥ ४१ ॥ और जब दूसरे को मारने चला तब वह भय के मारे भागा, डर कर प्राण बचाने के लिये उसने अपना धन किसी झाड़ी में फेंक दिया ॥ ४२ ॥

कर्षण मुनि भी व्याध द्वारा शीघ्र मारे जाने के डर से घाम में दौड़ता हुआ घाम और प्यास से पीड़ित होकर ॥ ४३ ॥ मूर्च्छित हो गया, साँस निकलने से नाममात्र बच गया, अपने प्राण बचाने में तत्पर वह वैश्य इनको छोड़कर भाग गया ॥ ४४ ॥ तुमने उसको भागता हुआ तथा ब्राह्मण को मार्ग में मूर्च्छित देख कर बनियाँ धन फेंक कर कितनी दूर भागा

कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशङ्कया ॥ आतपे धावमानः सन् तृषाघर्मप्रपीडितः ॥४३॥
मूर्च्छामाप गतश्वासः संज्ञामात्रावशेषितः ॥ दुद्रुवे च विहायैनं वैश्यो जीवनतत्परः ॥४४॥
त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितं पथि भूसुरम् ॥ पणं कुत्र विनिक्षिप्तं कियद्दूरं गतो वणिक् ॥४५॥
इति पृष्टं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः ॥ फूत्कृत्य कर्णयोस्तस्य चकार स्मृतिकारिणम् ॥४६॥
पल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा ॥ नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः संवीज्य तन्मुखे ॥४७॥
ससंज्ञं च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वस्थमानसः ॥ मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने ॥४८॥

॥ ४५ ॥, यह ब्राह्मण से पूछा और उसको जिलाने के लिये उद्यत हुआ, उसको चैतन्य करने के लिये तूने उसके कानों में फूँका ॥ ४६ ॥ कीड़ी और कीचड़ मिले गड़ही के पानी से उसके नेत्रों को धोकर उस थके हुए ऋषि के मुख पर पंखा करने लगा ॥ ४७ ॥ मुनि को सचेत करके स्वस्थचित्त होकर तूने कहा—हे मुनि ! इस वन में मेरे शस्त्र धारण करते हुए तुमको

कोई शङ्का न करनी चाहिये ॥४८॥ जिसके पास कुछ नहीं है, वही संसार में सुखी है तुमको कुछ भय नहीं है। तुम्हारे टूटे पात्र और चीर से मेरा कुछ न होगा ॥४९॥ हे विद्वन्! मुझे यह बताओ कि बनियाँ कहाँ भागा, कहाँ झाड़ी में धन फेंक कर जल्दी से भाग गया ॥ ५० ॥ यदि झूठ कहोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा। कर्षण मुनि बोले—इस झाड़ी में उसने धन फेंका है

निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम् ॥ भिन्नपात्रेण चीरेण न मे किञ्चिद्भविष्यति ॥४९॥
एतावद्वद मे विद्वन् वणिक् कुत्र पलायितः ॥ कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रं पलायता ॥५०॥
अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि॥कर्षण उवाच॥धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गादस्मात्पलायितः॥५१
इति प्राह त्वया सोऽपि पृष्टः प्राणपरीप्सया ॥ गच्छ विप्र सुखं मार्गं मत्तो भीतिं विहाय च ॥५२॥
इतो विदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम् ॥ तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छ गामं गतश्रमः ॥५३॥
अधुनैवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथाऽमुना ॥ मत्पादान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः ॥५४॥

और इस मार्ग से भागा है ॥ ५१ ॥ प्राण बचाने के लिये तुमसे पूछने पर उसने ऐसा कहा तब तूने कहा—हे विप्र। मेरा भय छोड़ कर तुम सुख से अपने मार्ग से जाओ ॥ ५२ ॥ यहाँ से कुछ दूर पर एक तालाब में सुन्दर जल है, उस सुन्दर जल को पीकर थकावट हटा कर अपने गाँव को जाओ ॥ ५३ ॥ इस वणिक्पति का क्रन्दन सुन कर हमारे पैरों की खोज

करते हुए राजा के कर्मचारी अभी यहाँ आवेंगे ॥ ५४ ॥ हे द्विज। प्यास से व्याकुल तुम्हारे पीछे मैं नहीं चल सकता, पत्ते से पंखा करने पर पसीना कुछ हट जायगा ॥ ५५ ॥ उसको परास का पत्ता देकर तू जङ्गल में गया, वैशाख मास के तीव्र घाम के निमित्त इस पुण्य कार्य के प्रभाव से ॥ ५६ ॥ मुनि की रक्षा के लिये अपने कार्य के लिये भी इस कार्य के करने से तेरा जन्म महा पुण्य विशाल राजवंश में हुआ ॥ ५७ ॥ यदि तू सुख, राज्य, धन धान्य इत्यादि सम्पत्ति, स्वर्ग, मोक्ष,

तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज ॥ वीजयानेन पर्णेन घर्मः किञ्चिद्गमिष्यति ॥५५॥
तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमगाद्विपिनं पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण वैशाखे धर्मनिष्ठुरे ॥५६॥
स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणाय पद्धतौ ॥ जन्मासोत्ते महापुण्ये राजवंशेऽतिविस्तृते ॥५७॥
यदीच्छसि सुखं राज्यं धनधान्यादिसम्पदः ॥ स्वर्गापवर्गौ यदि वा सायुज्यं वा हरेः पदम् ॥५८॥
कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि ॥ मासोऽयं माधवो नाम तृतीया चाक्षयाह्वया ॥५९॥
गां सवत्सां च सम्पूज्य देहि विप्राय सीदते ॥ तेन ते कोशपूर्तिः स्याच्छय्यां देहि सुखं भवेत् ॥६०॥

सायुज्य मुक्ति अथवा विष्णु भगवान् के पद को इच्छा करता है ॥ ५८ ॥ तो तू वैशाख मास के धर्मों को कर, इससे तू सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा, इस महीने का नाम माधव है, उसकी तृतीया का नाम अक्षय है ॥ ५९ ॥ बछवा सहित गाय का पूजन करके उस दिन ब्राह्मण को दान देने से तेरे कोश की पूर्ति होगी, शय्या दान करने से तुझे सुख

प्राप्त होगा ॥ ६० ॥ छाते का दान तू कर तेरा साम्राज्य मिल जायगा, विधानपूर्वक स्नान कर, तथा माधव भगवान् का
पूजन कर ॥ ६१ ॥ दिव्य प्रतिमा का दान देने से तेरा जय होगा । हे राजन्! यदि अपने समान गुणी पुत्रों को इच्छा
करता है ॥ ६२ ॥ तो सब प्राणियों के हित के लिये पौसरा चला, हे राजा! वैशाख महीने के कहे हुए इन धर्मों को
भली भांति कर ॥ ६३ ॥ इससे निस्सन्देह सब लोक तेरे वश होवेंगे, यदि तू विना किसी मनोरथ के इन धर्मों को

कुरु च्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति ॥ स्नानं कुरु यथान्यायं तथवार्चय माधवम् ॥६१॥
देहि त्वं प्रतिमां दिव्यां कृत्वा तेन जयो भवेत् ॥ आत्मतुल्यगुणान्पुत्रान् यदि कामयसे नृप ॥६२॥
सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु ॥ वैशाखोक्तानिमान् धर्मान् सम्यगाचर भूपते ॥६३॥
तेन ते सकला लोका वशं यान्ति न संशयः ॥ निष्कामकेन चित्तेन यदि धर्मान् करिष्यसि ॥६४॥
वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन् प्रीतये मधुघातिनः ॥ प्रत्यक्षो भविता विष्णुस्तव निर्मलचेतसः ॥६५॥
येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः ॥ तस्य चैवाक्षया लोकाः पुराणे कवयो विदुः ॥६६॥
एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इति राजानमामन्त्र्यब्राह्मणौ च पुरोधसौ ॥६७॥

करेगा ॥ ६४ ॥ तथा मधुसूदन भगवान् की प्रीति के लिये इस पुण्य मास वैशाख में धर्म करेगा तो तेरी आत्मा निर्मल हो
जायगी और विष्णु भगवान् तुझे प्रत्यक्ष होंगे ॥ ६५ ॥ जो मनुष्य कल्याणकारी इन धर्मों को करता है, उसको अक्षय
लोक प्राप्त होते हैं-इसको प्राचीन कवि लोग जानते हैं ॥ ६६ ॥ यह सब जैसा मैंने देखा था और सुना था सो तुमसे कहा,

इस प्रकार से राजा को समझा कर ये दोनों ब्राह्मण ॥ ६७ ॥ याज और उपयाजक नाम से यथास्थान को चले गये; तब महा पराक्रमी राजा पुरोहितों से समझाये जाने पर ॥ ६८ ॥ श्रद्धापूर्वक वैशाख महीने के सब धर्मों को करने लगा और जैसा मैंने कहा था वैसा ही मधुसूदन भगवान् का पूजन किया ॥ ६९ ॥ तब पराक्रमी होकर सब बन्धुजनों के साथ तथा बची हुई सेना

याजोपयाजकौ नाम जग्मतुस्तौ यथाऽऽगतौ ॥ ततो राजा महावीर्यः पुरोधोभ्यां च बोधितः ॥६८॥
वैशाखधर्मान् सकलांश्चकार श्रद्धयाऽन्वितः ॥ मयोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमर्चयत् ॥६९॥
ततो लब्धप्रभावः सन् बन्धुभिः सकलैर्वृतः ॥ पाञ्चालनगरीं प्राप हतशेषबलान्वितः ॥७०॥
ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः ॥ प्रवेशं च पुरेऽस्याथ पुनराजग्मुरुद्धताः ॥७१॥
तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणः ॥ जिग्ये सर्वान्महाबाहूनेक एव महारथः ॥७२॥
पलायितेषु भूपेषु नानादेशपतिष्वपि ॥ राज्ञां कोशं गजानश्वान् स्वयं जग्राह वीर्यवान् ॥७३॥
अश्वानामर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटयः ॥ रथानामर्बुदं चैव दीर्घग्रीवायुतं तथा ॥७४॥

से घिरा हुआ वह पाञ्चाल नगरी में पहुँचा ॥ ७० ॥ तब उसके शत्रु राजा लोग उस राजा के आने को सुनकर उद्धत होकर उससे युद्ध करने के लिये फिर आये ॥ ७१ ॥ तब इन लोगों से पाञ्चाल के राजा से युद्ध हुआ तब इसी एक महारथी ने सब को जीत लिया ॥ ७२ ॥ भिन्न भिन्न देश के राजाओं के भाग जाने पर इस प्रतापी राजा ने उन राजाओं के कोश, हाथी, घोड़े, स्वयं ले लिया ॥ ७३ ॥ एक अरब घोड़े, तीन करोड़ हाथी, एक अरब रथ, दस हजार ऊँट ॥ ७४ ॥ तीन लाख गदहे

उसकी नगरी में लाये गये, वैशाख मास के धर्मों के माहात्म्य से राजा लोग उसी क्षण से ॥ ७५ ॥ सङ्कल्प भग्न होने तथा पददलित होकर उसको राजकर देने लगे, पाञ्चाल देश में बड़ी सस्ती हो गई ॥ ७६ ॥ इस प्रकार से मधुसूदन भगवान् के प्रताप से वह छत्रपति सार्वभौम राजा हुआ। शूरता, उदारता आदि गुणों से पूर्ण उसके पाँच पुत्र हुए ॥ ७७ ॥ वे

रासभानां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम् ॥ वैशाखधर्ममाहात्म्यात् क्षणात्सर्वेऽपि भूभृतः ॥७५॥
करदा भग्नसङ्कल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे ॥ सुभिक्षमतुलञ्चासीत् पाञ्चालविषयेषु च ॥७६॥
एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः ॥ पुत्राः पञ्चापि तस्यासञ्छौर्यौदार्यगुणान्विताः ॥७७॥
धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथापरः ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः ॥७८॥
अनुरक्ताः प्रजाश्चासन् धर्मेण प्रतिपालिताः ॥ वैशाखस्य प्रभावेण प्रत्यक्षं तत्क्षणादभूत् ॥७९॥
पुनश्चकार तान् धर्मान् पाञ्चालनगरीश्वरः ॥ अकामुकेन चित्तेन प्रीतये मधुघातिनः ॥८०॥
धर्मेणानेन सन्तुष्टो भगवान् मधुसूदनः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत ॥८१॥

धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय, चित्रकेतु, ये मयूरध्वज के समान थे ॥ ७८ ॥ धर्म से पालन की हुई प्रजा राजा में अनुरक्त हो गई, वैशाख के प्रभाव से उसी क्षण से सब बात प्रत्यक्ष हो गई ॥ ७९ ॥ पाञ्चाल नगरी के राजा ने निष्काम चित्त से मधुसूदन भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उन धर्मों को फिर से करने लगा ॥ ८० ॥ इस धर्म से सन्तुष्ट होकर

मधुसूदन भगवान् अक्षय तृतीया के दिन उसको प्रत्यक्ष हुए ॥ ८१ ॥ उस शङ्ख, चक्र तथा गदा को धारण किये हुए चार बाहु के नारायण अच्युत परमात्मा को देखकर वह राजा बड़ा चकित हुआ ॥ ८२ ॥ पीताम्बर धारण किये हुए, वनमाला से विभूषित, लक्ष्मी सहित, अनुचर सहित तथा गरुड़ पर बैठे हुए भगवान् ॥ ८३ ॥ को उसने देखा, उनके असह्य तेज से

तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम् ॥ नारायणं चतुर्वाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥८२॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ सलक्ष्मीकं सानुगं च गरुडोपरि संस्थितम् ॥८३॥
निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्यो मीलितलोचनः ॥ उत्पतन् सम्पतन्हर्षान्मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥८४॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रणतो भुवि ॥८५॥

इतिश्रीस्कन्दपुराणेवैशाखमाहात्म्येनारदाम्बरीषसंवादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिर्नामपञ्चदशोऽध्यायः॥ १५

उसकी आँखे तुरन्त बन्द हो गईं; मदोन्मत्त पुरुष की तरह वह उठने-बैठने और घूमने लगा ॥ ८४ ॥ सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्चित होकर आँखों में आँसू भर कर, पृथ्वीपर झुककर बड़ी भक्ति से हाथ जोड़ कर वह स्तुति करने लगा ॥ ८५ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष संवाद में पाञ्चाल देशाधिपति की जयप्राप्ति नाम का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



श्रुतदेवजी कहा—जगत् के स्वामी, विश्वात्मदेव भगवान् को उत्सुक नेत्रों से देर तक देखकर तथा उनके दर्शन के आनन्द से आशा बढ़ जाकर, उसने तुरत उठ कर शिर झुकाकर नमस्कार किया ॥ १ ॥ उनके चरणों को धोकर उस जल को मस्तक पर धरा, जो चरणारविन्द सम्पूर्ण संसार को पवित्र करता है, तब बड़ी बड़ी विभूतियों से बहुमूल्य वस्त्र, अलङ्कार, अनुलेपन इत्यादि से उनकी पूजा किया ॥ २ ॥ निर्गुण, अद्वितीय, नारायण, पुराणपुरुष, विष्णु भगवान् को उस राजा ने

श्रुतदेव उवाच ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना ॥ चिरं निरीक्ष्याकुललो-
चनैरमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम्॥१॥दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति॥
समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः॥२॥स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगात्रवि-
त्तात्मसमर्पणेन ॥ तुष्टाव विष्णुं पुरुषं पुराणं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम् ॥३॥ निरञ्जनं विश्व-
सृजामधीशं परात्परं पद्मभवादिवन्दितम्॥यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधी-
श्वरम्॥४॥मुह्यन्ति मायारचितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम्॥अनीह एतद्बहुधैक आत्मना

माला, धूप, दीप, अमृत भक्षण, इत्यादि से तथा अपना शरीर, धन तथा आत्मसमर्पण से उनको सन्तुष्ट किया ॥ ३ ॥ उस भगवान् को—जो निरञ्जन हैं, विश्व के रचने वालों के स्वामी हैं, अपरिमित हैं, ब्रह्मा इत्यादि से पूजा किये जाते हैं, जिनकी माया से बड़े बड़े तत्त्ववेत्ता भी मोहित हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जिनकी रची हुई माया के गुणों से मूर्ख लोग मोह जाते हैं,

जिस भगवान् की कृति विलक्षण है, जो अपनी आत्मा को एक तथा अनेक करते हैं, तथा सृष्टि को उत्पत्ति और नाश करते हैं ॥ ५ ॥ सब देवता और दैत्यों के कल्याण और दुःख की प्राप्ति के लिये जो भगवान् पूर्ण मनोरथ होते हैं, तथा समय पर अपने प्राणियों की रक्षा के लिये जो बल धारण करते हैं ॥ ६ ॥ दुष्टों का नाश करने के लिये जो तमोगुण, तथा राक्षसों का बन्धन करने के लिये रजोगुण धारण करते हैं. हे निर्गुण। हे विश्वमूर्ति। ये आपके चरण धन्य हैं,

सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ॥५॥समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्राप्त्यै भवान् पूर्णमनोरथोऽपि॥ तत्रापि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय॥६॥ तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुण-विश्वमूर्ते॥दिष्ट्यात्वदङ्घ्रिप्रणताघनाशनं तीर्थास्पदं हृदि धृतं सुविपक्वयोगैः॥७॥ उत्सिक्तभक्त्यपहृ-ताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतोये॥ भवाख्यकालोरगपाशबद्धाःपुनःपुनर्जन्मजरादिदुः-खैः॥८॥ भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्षवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः॥ नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता

जो प्रणाम करने वालों का पाप नाश करते हैं, तीर्थों के स्थान हैं, जो योग के परिपक्व होने पर हृदय में धारण होते हैं ॥ ७ ॥ जिनके मनोरथ पूरे नहीं हुए हैं और जिनको जीवन की आशा नहीं है, ऐसे शिथिल भक्तिवाले मनुष्य भी आपके चरणों का स्मरण करके परम गति प्राप्त करते हैं, संसार के कालरूपी सर्प के फन्दे से बँधा हुआ तथा पुनर्जन्म, बुढ़ापा इत्यादि दुःखों से ॥ ८ ॥ आपके चरणों को याद न करता हुआ, उत्कण्ठा से व्याकुल अनेक योनियों में मैं ऐसा घूमता

हूँ, जैसे बिल्ली चूहों के खोज में घूमती है, मैंने न तो दान किया, न आपकी कथा सुना और न साधु लोगों की सेवा किया ॥ ९ ॥ इसी कारण से मैं शत्रुओं से जीता गया, धन हर गया और मैंने जङ्गल में प्रवेश किया, मैंने तब अपने दोनों गुरुओं का स्मरण किया, स्मरण करनेपर वे दोनों दीनबन्धु मेरे पास आये और उन्होंने दुःखी होकर मुझको समझाया ॥ १० ॥ उन्होंने श्रुतियों में कहे हुए स्वर्ग, पुरुषार्थ, मोक्ष इत्यादि को करनेवाले शुभ वैशाख मास के धर्मों को मुझसे

न साधवो जातु मयापि सेविताः ॥९॥ तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरू अहं स्मरन् ॥
स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्सम्बोधयाञ्चक्रतुरार्तबन्धू ॥१०॥ वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः
स्वर्गापवर्गादिसुपर्थहेतुभिः ॥ तद्बोधितोऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान्माधवमासधर्मान् ॥११॥
तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाखिलाः सम्पद ऊर्जिता इमाः ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न
भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥१२॥ उपासितास्तेऽपि हरन्त्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया ॥
यन्मन्यसे त्वं भवतोऽपि भूरिशस्त्यक्तैषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान् ॥१३॥ नमः स्वतन्त्राय विचित्रकर्मणे

कहा, उनके समझाने पर मैंने कल्याण करनेवाले माधव मास के सब धर्मों को किया ॥ ११ ॥ उन्हीं के परम प्रसाद से मैं ऐसा हुआ, ये मेरी सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त हुईं, मैंने न तो अग्नि, न सूर्य, न चन्द्र, न तारा, न पृथ्वी, न जल, न आकाश, न श्वास, न वाणी और न मन की ॥ १२ ॥ उपासना किया, ये पाप को अधिक काल में हरते हैं, परन्तु अपने

मनोरथों को त्याग किये हुए, आपके चरणों को स्मरण करनेवाले ऐसे महात्मा जिनको आप मानते हैं, वे मुहूर्त भर की सेवा में ही पाप नाश कर देते हैं ॥ १३ ॥ हे स्वतन्त्र ! हे विचित्र कर्म करने वाले ! हे परमात्मा ! हे साधुओं पर अनुग्रह करनेवाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मैं आपकी माया में मोहित होकर अनर्थ देखलाने वाले भार्या, धन, रूप इत्यादि गुणों में भ्रमण करता हूँ ॥ १४ ॥ आपके चरणकमल संसार जन्म कष्टों के मूल को नाश करनेवाले, सम्पूर्ण पापों

नमः परस्मै सदनुग्रहाय ॥ त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक् ॥१४॥ यत्पादपद्मं सृतिमूलनाशनं समस्तपापापहरं सुनिर्मलम् ॥ सुखेच्छयाऽनर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः॥१५ न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन् ॥ लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वयत्नतः सर्वपुमर्थहेतु ॥१६॥पादारविन्दं न भजामि देव सन्मूढचेताविषयेषु लालसः॥ करोमिकर्माणि सुनिश्चितः सन् प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया दहन् ॥१७॥ पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः ॥

को हरनेवाले तथा अति निर्मल हैं, सुख की इच्छा से अनर्थों के प्रधान कारण—सुत, आत्मा, स्त्री इत्यादि की ममता से घिर कर ॥ १५ ॥ मुझको न तो कहीं नींद आती है और न सुख मिलता हैं, इन्हीं में मेरी तृषा बढ़ती जाती है, दुःख से प्राप्त करने योग्य, सब पुरुषार्थों का हेतु राजा का जन्म यत्न करके आपसे प्राप्त होने पर ॥ १६ ॥ मैं आपके चरण कमल का भजन नही करता, क्योकि हे देव ! मैं मूढ़ चित्त हूँ और विषयों में मेरी लालसा है, श्रद्धापूर्वक मैं कर्म करता हूँ,

परन्तु इनके लिये मेरी बढ़ती हुई तृष्णा मुझे जला रही है ॥ १७ ॥ हे विभो। मैं आज यह हो जाऊँ, कल यह हो जाऊँ इस प्रकार की सैकड़ों चिन्ता से मेरा चित्त चञ्चल है। अनन्तशक्ति, विश्वमूर्ति आपकी कृपा जिस प्राणी पर होती है ॥ १८ ॥ उसी का समागम ऐसे महात्मा पुरुषों से होता है, जो संसाररूपी समुद्र को गाय के खुर के समान छोटा कर देते हैं। हे देव। जब महात्माओं का सङ्गम होता है, तभी आप में बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ १९ ॥ मुझको

यदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्तेः ॥१८॥ समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते ॥ सत्सङ्गमो देव यदैव भूयात्तदैव देव त्वयि जायते मतिः ॥१९॥ समस्तराज्योपगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसो ॥ यत्प्रार्थ्यते ब्रह्म सुरासुराद्यैर्निवृत्ततर्षैरपि हंसयूथैः॥२०॥ इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो ॥ न किञ्चनप्राथ्र्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मतः॥२१॥ अतो न राज्यं न सुतादिकोशं न दासदासीर्न च जीवितं हि मे ॥

सम्पूर्ण राज्य का ऐश्वर्य शीघ्र मिल गया यह मैं आपकी कृपा मानता हूँ, इस आपके अनुग्रह को ब्रह्मा, देवता लोग, राक्षस तथा महात्मा लोग तृषाओं से निवृत्त होकर चाहते हैं ॥ २० ॥ हे विभु। संसार से मुक्त करनेवाले अच्युत चरण कमल को मैं आदर पूर्वक स्मरण करता हूँ, अभागे को भाग्य देनेवाले आपके चरणकमल को छोड़ कर मैं किसी अन्य पदार्थ

की प्रार्थना नहीं करता ॥ २१ ॥ अतएव मैं राज्य, पुत्रादिक, कोश, दास-दासी और प्राण की भी इच्छा नहीं रखता, केवल मुनियों से चिन्ता किये जाने वाले आपके चरणारविन्द की उपासना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ हे देवताओं के स्वामी! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये, जिसमें आपके चरण कमल में भक्ति हो। हे प्रभु। स्त्री, कोष, पुत्र अपने धन इत्यादि गुणों से मेरा प्रेम हट जावे ॥ २३ ॥ कृष्ण भगवान् के चरण कमलों में मेरा मन निरन्तर लगे, मेरी वाणी आपकी कथा के

भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिभिर्विचिन्त्यम् ॥२२॥ प्रसीद देवेश जगन्निवास भक्तिर्यथा स्यात्तव पादपङ्के ॥ सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मवित्तेषु गुणेषु मे प्रभो ॥२३॥ भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसितेदिव्यकथाऽनुवर्णने॥नेत्रेममास्तांतवविग्रहेक्षणेश्रोत्रेकथायांरसनात्वदर्पिता॥२४ घ्राणं च ते पादसरोजसौरभेत्वद्भक्तगन्धादिविलेपने त्वक् ॥ स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो सम्मार्जनादौ मम नित्यदेव ॥२५॥ पादौ हरेः क्षेत्रपथानुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् ॥ कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम् ॥२६॥ दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गी-

वर्णन करने में लगे, आपके दर्शन में मेरे नेत्र लगें, कान कथा सुनने में और जिह्वा आपको अर्पण हो ॥ २४ ॥ नासिका आपके चरणकमल की सुगन्ध में, त्वचा आपके भक्तों के गन्ध इत्यादि के लेप में तथा हे प्रभु मेरे हाथ प्रतिदिन आपके मन्दिर के झाड़ू बोहारू करने में लगे रहैं ॥ २५ ॥ मेरे पैर हरि भगवान् के क्षेत्र मार्ग चलने में, मूर्धा प्रतिदिन आपकी

वन्दना में, मेरी कामना और बुद्धि आपकी सत्कथा में तथा वन्दना में सदा लगे रहें ॥ २६ ॥ घर पर आये हुए मुनियों
से गाई हुई सत्कथा में मेरे दिन बीतें । हे विष्णु भगवान् मेरे एक क्षण अथवा आधे क्षण भी आपके प्रसङ्ग के बिना न
बीतें ॥ २७ ॥ हे विष्णु । मैं पारमेष्ठ्य अथवा सार्वभौम पद को तथा मोक्ष को नहीं चाहता, मैं सर्वदा आपके चरणकमल
की सेवा चाहता हूँ, जिसको लक्ष्मी, ब्रह्मा इत्यादि देवता चाहते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार राजा की स्तुति करने पर कमल-

यमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः ॥ हीनप्रसङ्गैस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्द्धमथापि विष्णो ॥२७॥ न पारमेष्ठ्यं
न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो॥ त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः॥२८॥
इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम् ॥२९॥
श्रीभगवानुवाच॥ जाने त्वां दासवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम्॥ अथापि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम्॥३०॥
आयुष्यं चायुतं दिव्यं सम्पदश्च न नश्वरः॥ भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमाप्नुयाः ॥३१॥

नयन विष्णु भगवान् प्रसन्न हुए और उस राजा से मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहने लगे ॥ २९ ॥ श्रीभगवान् बोले
मैं तुमको पापरहित निष्काम श्रेष्ठ दास मानता हूँ और तुमको वह वर देता हूँ जो देवताओं को दुर्लभ हैं ॥ ३० ॥ तेरी
दस हजार वर्ष की दिव्य आयुष्य हो, तेरे पास नाश न होने की सम्पत्ति हो, मुझ में तेरी गाढ़ भक्ति हो और अन्त में तू

सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ तुम्हारे किये हुए स्तोत्र से जो लोग संसार में मेरी स्तुति करेंगे, उन पर प्रसन्न हो कर मैं अवश्य उनको मुक्ति और भुक्ति दूँगा ॥ ३२ ॥ अक्षयनामकी यह तृतीया संसार में प्रसिद्ध होगी, जिसमें भुक्ति तथा मुक्ति देनेवाला मैं तुम पर प्रसन्न हुआ ॥ ३३ ॥ जो मूर्ख बहाने से अथवा स्वभाव से स्नान, दान इत्यादि क्रिया करते हैं, वे मेरे अक्षय पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अक्षयतृतीया के दिन पितरो के उद्देश्य से श्रद्धा करते हैं, उनका

त्वया कृतेन स्तोत्रेण मां स्तुवन्ति च ये भुवि ॥ तेषां तुष्टः प्रदास्यामि भुक्तिं मुक्तिं न संशयः ॥३२॥

तृतीयैषाऽक्षया नाम भुवि ख्याता भविष्यति ॥ यस्यां तव प्रसन्नोऽहं भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥३३॥

ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥व्याजेनाऽपिस्वभावाद्वा यान्तिमत्पदमव्ययम् ॥३४॥

ये चाक्षयतृतीयायां पितृनुद्दिश्य मानवाः ॥ श्राद्धं कुर्वन्ति तेषां वै तदानन्त्याय कल्पते ॥३५॥

न चानया तिथिर्लोके समाना वाऽधिका भुवि ॥ अस्यां कृतं स्वल्पमपि तदक्षय्यफलं भवेत् ॥३६॥

यो गां दद्यान्नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ सर्वसम्पत्प्रवर्षाख्या भुक्तिर्मुक्तिः करे स्थिता ॥३७॥

यह कर्म अनन्त होता है ॥ ३५ ॥ इस तिथि के समान अथवा इससे बढ़कर संसार में दूसरी तिथि नहीं है, इसमें किया हुआ थोड़ा भी न नाश होनेवाले फल को देता है ॥ ३६ ॥ हे नृपेन्द्र ! जो कुटुम्बी ब्राह्मण को गाय दान देता है, उस पर सब प्रकार के सम्पत्तियों की वर्षा होती है और भुक्ति और मुक्ति उसके हाथ में आजाती हैं ॥ ३७ ॥ जो वैशाख में समस्त

पाप नाशक बैल का दान करता है वह काल मृत्यु से छूट कर दीर्घ आयु वाला हो जाता है ॥ ३८ ॥ जो वैशाख
महीने में मेरे प्रिय कर्मों को करता है उसके मृत्यु जरा तथा जन्म के भय तथा पाप को मैं हर लेता हूँ ॥ ३९ ॥ जैसा
वैशाख मास के धर्मों से मैं प्रसन्न होता हूँ वैसा सम्पूर्ण मासो के धर्मों से नही होता, क्योंकि वैशाख महीना मुझको

यो हि दद्यादनड्वाहं सर्वपापविनाशनम् ॥ कालमृत्युविमुक्तः सन् दीर्घायुष्यमवाप्नुयात् ॥३८॥
वैशाखमासे ये धर्मान् कुरुते मत्प्रियावहान् ॥ तेषां मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम् ॥३९॥
यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यां सकलैरपि ॥ मासधर्मैर्न तुष्टः स्यां मासो मे माधवः प्रियः ॥४०॥
सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ॥ वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम् ॥४१॥
यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगमखैरपि ॥ तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः ॥४२॥
अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ ॥ प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा ॥४३॥

प्रिय है ॥ ४० ॥ सब धर्मों को त्याग कर तथा ब्रह्मचर्य छोड़कर भी जो वैशाखमास के धर्म में निरत रहता है, वह मेरे
अविनाशी पद को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जो परम धाम तपों से,। सांख्य योग तथा यज्ञों से दुर्लभ है वह धाम मनुष्य
वैशाख मास के धर्मों से प्राप्त करते हैं ॥ ४२ ॥ सैकड़ों पापों को यह मास हर लेता है, जिस प्रकार से प्रायश्चित किये

विना ही मेरे पैरो के स्मरण से होता है ॥ ४३ ॥ गुरु के उपदेश से तुम जङ्गल में वैशाखमास के धर्मों में प्रवृत्त हुए। हे राजन्! जगन्नाथ की आराधना करके इसी से तुमने सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥ ४४ ॥ इस धर्म से प्रसन्न होकर मैं तुझको प्रत्यक्ष हुआ हूँ, देवताओं को भी दुर्लभ इन भोगों को तू इच्छा पूर्ण भोग कर ॥ ४५ ॥ यह वर उसको देकर देवों के देव जनार्दन भगवान् सब लोगो के देखते देखते अन्तर्धान हो गये ॥ ४६ ॥ तब यह श्रेष्ठ राजा अति विस्मित हुआ, जैसे

गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे निरतो भवान् ॥ समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप ॥४४॥
धर्मेणानेन सम्प्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामि ते ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं देवैरपि सुदुर्लभान् ॥४५॥
इति तस्मै वरं दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः ॥ पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥४६॥
ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः ॥ हृष्टपुष्टतनुर्भूप लब्धनष्टधनो यथा ॥४७॥
ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः ॥ महद्भिर्बोधितो नित्यं गुरुभिश्च निरन्तरम् ॥४८॥
नान्यत् प्रियतमं मेने वासुदेवस्मृतेर्नृपः ॥ यत्सम्पर्कात्प्रिया आसन् दारामात्यसुतादयः ॥४९॥

हे राजन्! नष्ट धन के प्राप्त होने पर मनुष्य हृष्ट पुष्ट हो जाता है ॥ ४७ ॥ तब उन्हीं में लवलीन रह कर राजा ने पृथ्वी पर शासन किया, प्रतिदिन बडे बडे गुरुओं से निरन्तर वह बोध प्राप्त करता था ॥ ४८ ॥ उस राजा ने वासुदेव भगवान् के अतिरिक्त किसी को भी प्रियतम नहीं माना, इस सम्बन्ध से स्त्री, मन्त्री, पुत्र इत्यादि सब प्रिय हुए ॥ ४९॥ इसने

वारम्बार वैशाख मास के कहे हुए सब धर्मों को किया, उस पुण्य के प्रभाव से पुत्र पौत्र इत्यादि सहित ॥ ५० ॥ देवताओं
को भी दुर्लभ सब मनोरथों को भोगकर अन्त में चक्रपाणि विष्णु भगवान् के सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ जो इस

सर्वान् धर्मांश्चकारासौ वैशाखोक्तान्पुनः पुनः ॥ तेन पुण्यप्रभावेण पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः ॥५०॥
भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् देवानामपि दुर्लभान्॥अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥५१॥
य इदं परमाख्यानं शृण्वन्ति श्रावयन्ति च ॥ ते सर्वपापनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परम्पदम् ॥५२॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्येनारदाम्बरीषसंवादेपाञ्चालाधिपतेःसायुज्यप्राप्तिर्नामषोडशोऽध्यायः१६

उत्तम कथा को सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, वे सब पापों से निर्मुक्त होकर विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ५२ ॥

श्री स्कन्द पुराण वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में पाञ्चाल के राजा
की सायुज्य प्राप्ति नाम का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



मैथिलजी बोले-इस संसार तथा परलोक में फल देनेवाले वैशाख मास के सम्पूर्ण धर्मों को बारम्बार सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ जहाँ निष्कपट धर्म होते हैं, जहाँ विष्णु भगवान् की शुभ कथा होती है, उस शास्त्र को सुनते हुए कानों को तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ दैववश मेरे पूर्व जन्म के किये पुण्य उदय हुए हैं क्योंकि आप पाहुन के बहाने मेरे

मैथिल उवाच॥ वैशाखधर्मानखिलानिहामुत्रफलप्रदान्॥ भूयोऽपि शृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाद्यापि मानद॥ १॥
यत्र चाकैतवो धर्मो यत्र विष्णुकथाः शुभाः ॥ तच्छास्त्रं शृण्वतो नैव तृप्तिः कर्णरसायनम् ॥२॥
पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम् ॥ आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान् गृहमागतः ॥३॥
वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम् ॥ पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षं वा न च कामये ॥४॥
तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् भूयो विस्तरतो वद ॥५॥
इति पृष्टस्तदा राज्ञा श्रुतदेवो महायशाः ॥ संहृष्टात्मा शुभान् धर्मान्पुनर्व्याहर्तुमारभत् ॥ ६ ॥

घर पर आये हैं ॥ ३ ॥ आपके मुखकमल से निकले हुए परम अद्भुत वचनामृत को पीकर मैं तृप्त हो गया हूँ, मुझे पारमेष्ठ्य और मोक्ष की कामना नहीं है ॥ ४ ॥ अतएव विष्णु को प्रीति करनेवाले, भुक्ति और मुक्ति को देनेवाले उन्हीं धर्मों को फिर से विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ५ ॥ राजा के ऐसा पूछने पर महात्मा श्रुतदेवजी ने प्रसन्न होकर शुभ धर्मों

को वर्णन करना फिर से आरम्भ किया ॥ ६ ॥ श्रुतदेवजी ने कहा—हे राजन्। पापनाश करने वाली कथा को सुनो, मैं कहता हूँ। यह वैशाख मास के धर्म संबन्धी कथा को मुनियों ने बारम्बार कहा है ॥ ७ ॥ पम्पा के तीर पर शङ्ख नाम का एक यशस्वी ब्राह्मण बृहस्पति नक्षत्र के सिंहराशि में जाने पर शुभ गोदावरी नदी पर गये ॥ ८ ॥ और पुण्य भीमरथी को पार करके घाम से व्याकुल वैशाख महीने में घोर, निर्जन, निर्जल काटों से भरी पहाड़ी पर पहुँचे ॥ ९ ॥ मध्याह्न के

श्रुतदेव उवाच॥शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्॥ वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः॥७॥
पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खो नाम महायशाः॥ गुरौ सिंहगते चागान्नदीं गोदावरीं शुभाम्॥८॥
तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाबिले॥ निर्जले निर्जने घोरे वैशाखे तापकर्शितः॥९॥
वृक्षे चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः॥ तदा कश्चित्क्रूरवाक्यो व्याधश्चापधरः शठः॥१०॥
निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवापरः॥ तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम्॥११॥
दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः॥ उपानहौ च छत्रं च अक्षमालां कमण्डलुम्॥१२॥

समय यह ब्राह्मण वृक्ष के नीचे बैठ गया, तब एक दुष्ट व्याध हाथ में धनुष लिये हुए आया ॥ १० ॥ वह सब प्राणियों से घृणा करता था और मानों दूसरा यमराज था, उसने सूर्य के समान कुण्डल धारण किये हुए दीक्षा प्राप्त ब्राह्मण को ॥ ११ ॥ देखकर बाँध लिया और उसका कुण्डल इत्यादि, जूता, छाता, रुद्राक्ष की माला तथा कमण्डलु को छीन लिया

॥ १२ ॥ और तब उस मूर्ख ने उस ब्राह्मण से "तू चला जा" यह कह कर उसको छोड़ दिया ॥ १३ ॥ उस दुष्ट से छूट कर वह ब्राह्मण सूर्य के किरणों तथा गरम बालू से तपा हुआ जल हीनं वन के मार्ग में चला, कहीं तो उसके जलते हुए पैर तिनकों से ढपी भूमि पर पड़ते थे। और कहीं कांटों पर पड़ते थे ॥ १४ ॥ वह जल्दी जल्दी गिरता पड़ता और बैठता

पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः ॥१३॥ ततः स गच्छन् पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते वने ॥सन्तप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्च चारोपरिसन्निवेशन्॥१४॥ स वै द्रुतं सम्पतन्क्वापि तिष्ठन् हाहेति वादी च जगाम तूर्णम् ॥ दृष्ट्वा मुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यं गते पूष्णि दया बभूव ॥१५॥ व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम् ॥१६॥ चौर्येणैव स्वधर्मेण यद्गृहीतं वनान्तरे ॥ तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्म निर्णयः ॥१७॥ तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये ॥ तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥१८॥

हुआ हाय ! हाय ! करता हुआ शीघ्र चला, उस दुखी मुनि को देख कर, पृथ्वी पर पहुँचने पर उस व्याध को दया आई ॥ १५ ॥ उस धर्म विमुख पापबुद्धि व्याध ने सोचा कि मैं इसको सुख देने वाली पैर की रक्षा दूँ ॥ १६ ॥ जिसको मैंने अपने धर्म के अनुसार दूसरे वन में चोरों से लिया था, व्याधों का धर्म निर्णय यही सब कुछ है ॥ १७ ॥ इसलिये

इसके दुःख को हटाने के लिये मैं इसको जूता दूँगा, ऐसा करने से मुझ पापी का कल्याण होगा ॥ १८ ॥ मेरे पैरों में उत्तम पुराने जूते हैं, इनसे मुझे अब काम नहीं है, इसलिये इन्हीं को मैं दे दूं ॥ १९ ॥ ऐसा मन में निश्चय करके शीघ्र जाकर बालू और घाम से तपे हुए पैरों के श्रेष्ठ ब्राह्मण को जूता दे दिया ॥ २० ॥ जूता लेकर उसको परम सन्तोष हुआ

जीर्णे चोपानहौ दिव्ये वर्तेते पादयोर्मम ॥ ताभ्यामस्ति च मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम् ॥१९॥
इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते ॥ शर्करोत्तप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥२०॥
उपानहौ गृहीत्वा ते निर्वृत्तिं च परां ययौ ॥ सुखी भवेति तं व्याधमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥२१॥
नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखे दत्तवानमू ॥ व्याधस्यापि च दुर्बुद्धेः प्रायो विष्णुः प्रसीदति ॥२२॥
सर्वस्याप्त्या च भूयोऽपि यत्सुखं तदभून्मम ॥ ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः ॥२३॥
व्याजहार पुनर्विप्रं ब्राह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम् ॥ त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम ॥२४॥

"तुम खुशी हो" यह आशीर्वाद व्याध को देकर उसने कहा ॥ २१ ॥ वैशाख महीने में इसके देने से अवश्य पुण्य का फल मिलेगा, दुर्बुद्धि व्याध पर भी विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ जो सुख सब पदार्थों के प्राप्त करने से होता है वही सुख मुझको अभी हुआ, इस वाक्य को सुन कर आश्चर्य युक्त होकर यह क्या है ? ॥ २३ ॥ ऐसा ब्रह्मिष्ठ, ब्रह्मवादी

ब्राह्मण से फिर कहा, तुम्हारी ही वस्तु तुमको देकर मुझे पुण्य कैसे होगा ॥ २४ ॥ तुम वैशाख मास की प्रशंसा करते हो और कहते हो कि हरि संतुष्ट होंगे, हे ब्रह्मन्! मुझे बतलाओ कि वैशाख कौन है? और हरि कौन हैं? ॥ २५ ॥ हे दयानिधि! मुझको सुनने की अभिलाषा है कि धर्म क्या है और उसका फल क्या है? व्याध के इस वचन को सुन कर शङ्ख बड़े प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ उन्होंने फिर से विस्मित होकर और वैशाख की प्रशंसा करते हुए कहा,—इस समय इस

प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टो भवेदिति ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् को वैशाखस्तु को हरिः ॥२५॥
को धर्मः किं फलं तस्य शुश्रूषोर्मे दयानिधे ॥ इति व्याधवचः श्रुत्वा शङ्खस्तुष्टमना अभूत् ॥२६॥
प्रशंसन् स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः ॥ इदानीं दत्तवान् पादत्राणे मे लुब्धकः शठः ॥२७॥
सद्यो बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत ॥ सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै ॥२८॥
वैशाखमाराधर्माणां फलं सद्यः क्षणं नृणाम् ॥ पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्यापि दुरात्मनः ॥२९॥
दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो ॥ यच्च विष्णोः प्रियं कर्म यत्तत्सन्तोषकारणम् ॥३०॥

लालची दुष्ट ने मुझे जूता दिया है ॥ २७ ॥ मुझको बड़ा आश्चर्य है कि इस दुर्बुद्धि का मन अभी विपरीत क्यों हुआ? सब धर्मों का फल जन्मान्तर में होता है ॥ २८ ॥ परन्तु वैशाख मास के धर्मों का फल मनुष्यों को उसी क्षण मिलता है, पापी दुरात्मा, दुर्बुद्धि व्याध की ॥ २९ ॥ दैवयोग से जूता दान करने से सत्त्व शुद्धि हो गई, यह बड़ा आश्चर्य है,

जो कार्य विष्णु भगवान् को प्रिय होता है और जो उनके सन्तोष का कारण होता है ॥ ३० ॥ उसी को मनु इत्यादि धर्म वेत्ताओं ने "धर्म" कहा है वैशाख महीने के धर्म विष्णु भगवान् को बड़े ही प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ वैशाख मास के धर्मों से केशव भगवान् जैसे सन्तुष्ट होते हैं वैसे सब दानों से, तपों से और बड़े बड़े यज्ञों से नहीं होते ॥ ३२ ॥ सब धर्मों में इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, गया में मत जाओ, गङ्गा में मत जाओ, प्रयाग तथा पुष्कर में मत जाओ ॥३३॥

तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः ॥ धर्मा माधवमासीयाः प्रिया विष्णोरतीव ते ॥३१॥
धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः ॥ न तथा सर्वदानैश्च तोभिश्च महामखैः ॥३२॥
नानेन सदृशो धर्मः सर्वधर्मेषु विद्यते ॥ मा गयां यातु मा गङ्गां मा प्रयागं तु पुष्करम् ॥३३॥
मा केदारं कुरुक्षेत्रं मा प्रभासं स्यमन्तकम् ॥ मा गोदां मा च कृष्णां च मा सेतुं मा मरुद्वृधाम् ॥३४॥
वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसिनी च कथापगा ॥ तत्र स्नातस्य वै विष्णुः सद्यो हृद्यवरुद्ध्यते ॥३५॥
मासे माधवसंज्ञेऽस्मिन्यत्स्वल्पेनैव साध्यते ॥ एतद्बहुव्ययैर्दानैर्न धर्मैर्नापि वै मखैः ॥३६॥

केदारनाथ में, कुरुक्षेत्र में, प्रभास में, स्यमन्तक में, गोदावरी में, कृष्णा में, सेतुबन्ध रामेश्वर में, मरुद्वृद्ध में मत जाओ ॥३४॥ वैशाख के धर्म माहात्म्य की प्रशंसा करनेवाली कथारूपी नदी में स्नान करने से विष्णु भगवान् तुरत ही हृदय में सबके आते हैं ॥ ३५ ॥ इस माधव नाम के मास में जो थोड़े ही में साधन होता है, वह बहुत धन का व्यय करने से, धर्मों से तथा

यज्ञों से साधन नहीं हो सकता ॥ ३६ ॥ हे व्याध ! यह माधव नाम का पुण्य बढ़ानेवाला महीना है, इसीसे तुमने ताप नाशनेवाले जूते दिये ॥ ३७ ॥ इसी से तुम्हारे पूर्वकाल में किये हुए पुण्य का उदय हुआ, भगवान् प्रसन्न होंगे और प्रायः तेरा कल्याण होगा ॥ ३८ ॥ नहीं तो तुम्हारी ऐसी शुभ बुद्धि कैसे हुई. जब दोनों मुनि इस प्रकार कह रहे थे,

मासोऽयं माधवो नाम व्याधपुण्यविवर्धनः ॥ तस्मिन्मह्यं त्वया दत्ते पादुके तापनाशने ॥३७॥
तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम् ॥ तुष्टस्तु भगवान् प्राय प्रायः श्रेयो भविष्यति ॥३८॥
अन्यथा ते कथं भूयाद् बुद्धिरेतादृशी शुभा ॥ मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली ॥३९॥
सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः ॥ मध्ये दृष्ट्वा च मातङ्गं दैवाद्देवेन कल्पितम् ॥४०॥
तं हन्तुमुद्यतोऽगच्छन् पादाक्रान्तव्यवस्थितम् ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरं सिंहमातङ्गयोर्वने ॥४१॥
श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः॥ व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना॥४२॥

मृत्यु से प्रेरित होकर बलवान् ॥ ३९ ॥ सिंह व्याघ्र का वध करने के लिये क्रोध से विह्वल होकर दौड़ा, बीच में दैव का बनाया हुआ हाथी देख कर ॥ ४० ॥ वह बड़े वेग से दौड़कर उसको मारने में उद्यत हुआ, उस जङ्गल में सिंह और हाथी का घोर युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ युद्ध से थक कर ये दोनों एक दूसरे को देखते हुए चुप चाप बैठ गये, महात्मा मुनि से

॥ ५४ ॥ धर्म में लालसा रखनेवाले पिता ने क्रुद्ध होकर तुरत उन दोनों को शाप दिया, धर्म विमुख पुत्र को, अप्रिय बोलनेवाली भार्या को ॥ ५५ ॥ ब्रह्मद्रोही राजा को तुरत त्याग देना चाहिये नहीं तो विपरीत फल होता है. जो धन के लोभ से अथवा दाक्षिण्य से जो इनका संसर्ग करते हैं ॥ ५६ ॥ वे सब चौदह मन्वन्तर तक नरक में जाते हैं, यह समझ कर मद और

क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥५५॥
अब्रह्मण्यं च राजानं त्यजेत्सद्योऽन्यथा भवेत् ॥ दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते ॥५६॥
ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति ज्ञात्वा शशापावां मदक्रोधपरिप्लुतौ ॥५७॥
क्रुद्धस्त्वं दन्तिलो भूयाः सिंहः क्रोधपरिप्लुतः ॥ मत्तस्तु कोहलो भूयाः मत्तमातङ्गयूथपः ॥५८॥
कृतानुतापौ पश्चात्त प्रार्थयावो विमोचनम् ॥ आवाभ्यां प्रार्थितो भूयो विशापं च ददौ पिता ॥५९॥
युवां प्राप्य च दुर्योनिं कियत्कालान्तरेऽपि च ॥ सङ्गमो भविता तत्र परस्परवधैषिणोः ॥६०॥

क्रोध से भरे हुए हम लोगों को शाप दिया ॥ ५७ ॥ तू क्रोधी दन्तिक क्रोध से भरे सिंह हो जा, उन्मत्त कोहल मस्त हाथियों का राजा हो जा ॥ ५८ ॥ बाद में पश्चात्ताप करके उससे मुक्त होने के लिये हम दोनों के प्रार्थना करने पर पिताजी ने शाप से मुक्त होने के विषय में कहा ॥ ५९ ॥ तुम दोनों दुर्योनि प्राप्त करके कुछ समय के बाद आपस में एक दूसरे की जान

मारने के लिये एकत्र हो जाओगे ॥ ६० ॥ उसी समय दैवयोग से शङ्ख और व्याध की वैशाख मास के धर्म विषय की वार्ता तुम लोग सुनोगे ॥ ६१ ॥ उसी क्षण इससे तुम दोनों मुक्ति मार्ग में चले जाओगे, तुम दोनों पुत्र शाप से मुक्त होकर पहिले का रूप पाओगे ॥ ६२ ॥ मुझको प्राप्त करके रहोगे, मेरी वाणी वृथा न होगी, इस प्रकार गुरु से शाप

तस्मिन्नेव हि समये संवादो व्याधशङ्खयोः ॥ वैशाखधर्मविषये दैवाद्वां श्रवणस्य च ॥६१॥
गमिष्यति क्षणान्मार्गं तस्कान्मुक्तिर्भविष्यति ॥ शापान्मुक्तो पूर्वमेव रूपमास्थाय पुत्रकौ ॥६२॥
मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत् ॥ इति शप्तौ च गुरुणा दुर्योनिं प्राप्य दुर्मती ॥६३॥
प्राप्य दैवात्सङ्गतिं च परस्परवधैषिणौ ॥ संवादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे ॥६४॥
तेन सद्यो विमुक्तिश्च क्षणादेवावयोरभूत् ॥ इति सर्वं समाख्याय प्रणम्य च मुनीश्वरम् ॥६५॥
समामन्त्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम् ॥ तदेव सम्प्रदर्श्याह मुनिर्व्याधं दयानिधिः ॥६६॥

पाकर हम दोनों दुर्बुद्धियो ने बुरी योनि पाकर ॥ ६३ ॥ दैववश परस्पर हत्या करने के लिये हम लोग एकत्र हुए और आप दोनों का दिव्य शुभ संवाद हमने सुना ॥ ६४ ॥ उसी से तत्क्षण हम लोगों की मुक्ति हुई, यह सब कहकर तथा मुनीश्वर को प्रणाम करके ॥ ६५ ॥ मुझसे पूछ कर और आज्ञा पाकर वे दोनों अपने पिता के पास गये, दयानिधि मुनि ने

व्याध को देखला कर कहा ॥ ६६ ॥ वैशाख माहात्म्य के सुनने के बड़े फल को देखो, मुहूर्त भर सुनने से ही उन दोनों की मुक्ति हो गई ॥ ६७ ॥ उस श्रेष्ठ मुनि के ऐसा कहने पर शास्त्रों को फेंककर व्याध ने उस दयानिधि, निस्पृह, तीव्रबुद्धि, विशुद्धात्मा, पुण्य के एक मात्र पात्र से कहा ॥ ६८ ॥

पश्य वैशाखमहात्म्यश्रवणस्य फलं महत् ॥ मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करे स्थिता ॥६७॥ इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निस्पृहमग्र्यबुद्धिम् ॥ विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं स न्यस्तशस्त्रः पुनराह व्याधः ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे दन्तिलकोहलयोर्मुक्तिप्राप्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप के संवाद में दन्तिल और कोहल की मुक्ति प्राप्ति नाम का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥



व्याध ने कहा—हे मुनि ! मुझ पापी और दुर्बुद्धि पर आपने कृपा किया है, महात्मा साधुलोग स्वभाव ही से दया युक्त होते हैं ॥ १ ॥ कहाँ मैं अकुलीन व्याध कहाँ आपकी ऐसी बुद्धि, केवल आपही की उत्तम कृपा का यह फल मैं मानता हूँ ॥२॥ हे साधु ! मैं आपका शिष्य हूँ और कृपा के योग्य हूँ, अनुग्रह के योग्य हूँ, पुत्र हूँ, हे दयानिधि ! कृपा कीजिये ॥ ३ ॥ जिसमें

व्याध उवाच ॥ भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने पापोऽतिदुष्टधीः॥ दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः॥ १॥
क्व वा व्याधाकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी ॥ केवलं भवतामेव मन्येऽनुग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥
अथ साधु च शिष्योऽस्मि कृपापात्रोऽस्मि मानद ॥ अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे ॥ ३॥
यथा मे न पुनर्भूयादसन्मतिरनर्थदा ॥ सद्भिश्च सङ्गतिः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते ॥ ४ ॥
तस्माद्बोधय मां विप्र सूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः ॥ येन चाद्धा तरिष्यन्ति संसाराब्धिं मुमुक्षवः ॥ ५ ॥
साधूनां समचित्तानां तथा भूतदयावताम् ॥ न हीनो नोत्तमः क्वापि नात्मीयो न परस्तथा ॥ ६ ॥

अनर्थ देने वाली बुरी बुद्धि मेरी न हो और मैं सज्जनों के सत्सङ्ग से फिर से दुःख न भोगूँ ॥४॥ इसलिये हे विप्र ! पाप नाश करनेवाले उन सूक्तों का मुझे उपदेश कीजिये, जिससे मुक्ति चाहनेवाले संसाररूपी समुद्र को पार करते हैं ॥ ५ ॥ प्राणियों पर दया करनेवाले समचित्त साधुओं को न तो कुछ उत्तम होता है न अधम, न अपना और न पराया होता है ॥ ६ ॥ वे इस

प्रकार से चित्त की शुद्धि खोजते हैं, सब दोषों से पूर्ण तथा सब धर्मों का त्याग करके ॥ ७ ॥ जिसको पश्चात्ताप करके गुरु
से पूछता है तब संसार से मुक्त होने के ज्ञान को वे शिक्षा देते हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार मनुष्यों के पाप नाश करना गङ्गाजी का
स्वभाव है इसी तरह मूढ़ों का उद्धार करना साधुओं का स्वभाव है ॥ ९ ॥ हे दीनवत्सल ! हे दयालु ! आपको शुश्रूषा से,

एवमेव विचिन्वन्ति चित्तशुद्धिं च पृच्छति ॥ सर्वदोषयुतो वापि सर्वधर्मोज्झितोऽपि वा ॥ ७ ॥
कृतानुतापश्च यदा यदा पृच्छति वै गुरुम् ॥ तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम् ॥ ८ ॥
यथा गङ्गा मनुष्याणां पापनाशस्वभाविनी ॥ तथा मन्दसमुद्धारस्वभावाः साधवः खलु ॥ ९ ॥
मां विचारय मां वोद्धुं दयालो दीनवत्सल ॥ शुश्रूषुत्वात्प्रसन्नत्वाच्छुद्धत्वात्तव सङ्गतेः ॥१०॥
इति व्याधवचः श्रत्वा पुनर्विस्मितमानसः ॥ साधु साध्वितिसम्भाष्य धर्मानेतानुवाच ह ॥११॥
शङ्ख उवाच ॥ विष्णुप्रीतिकरान् दिव्यान् संसाराब्धिविमोचकान् ॥ कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध

योग्यता से, आपकी संगति से शुद्ध मुझको उपदेश देने का विचार कीजिये ॥ १० ॥ ऐसा व्याध का वचन सुन कर फिर
से आश्चर्य चित्त होकर "वाह ! वाह" ! ऐसा कह कर इन धर्मों को उससे कहा ॥ ११ ॥ शंख जी ने कहा—हे व्याध !
यदि तू शान्ति चाहता है तो विष्णु भगवान् को प्रिय करनेवाले दिव्य, संसार सागर से मुक्त करनेवाले वैशाख मास के

धर्मों को कर ॥ १२ ॥ यहाँ पर कड़ी धूप है, यहाँ छाया और जल नहीं है, अतएव दूसरे स्थान में चलो चलें जहाँ छाया
हो ॥ १३ ॥ वहाँ जाकर जल पीकर घनी छाया में स्वस्थ होकर तुझसे पाप नाश करनेवाले माहात्म्य का वर्णन करूँगा
॥ १४ ॥ विष्णु भगवान् के प्रिय वैशाख मास का माहात्म्य जैसा देखा और सुना है, मुनि के ऐसा कहने पर व्याध ने

शमिच्छसि॥१२॥ आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाम्बु चात्र च ॥ तस्मात्स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया
तु वर्तते ॥१३॥ तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः॥ तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापना-
शनम् ॥१४॥ विष्णोर्माधवमासस्य यथा दृष्टं यथाश्रुतम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृताञ्ज-
लिः ॥१५॥ इतो विदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥ कपित्थास्तत्र वै सन्ति फलभारेण पीडिताः
॥१६॥ गच्छावस्तत्र सन्तुष्टिर्भविता नात्र संशयः॥ व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन साकं ययौ मुनिः ॥१७॥
कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्रे सरोवरम् ॥ वककारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥१८॥
हंससारसक्रौञ्चाद्यैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ क्रीडोत्कोकिलघोषैश्च कूजितं भ्रमरैरपि ॥१९॥

हाथ जोड़कर कहा ॥ १५ ॥ यहाँ से कुछ दूर पर एक सरोवर में जल है, वहाँ फलों के भार से झुके हुए कैथ के पेड़ हैं
॥ १६ ॥ आइये, सभी लोग वहीं चलें वहाँ हम लोगों को अवश्य संतोष होगा, व्याध के ऐसा कहने पर मुनि जो उसके
साथ गये ॥ १७ ॥ कुछ दूर जाकर बकुले, हंस तथा चकवों से सुशोभित सरोवर को सामने देखा ॥ १८ ॥ हंस सारस

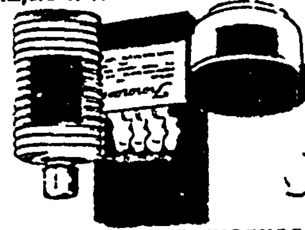
तथा क्रौंच इत्यादि पक्षियों से, कोयलों के क्रीड़ा शब्दों से तथा गूँजते हुए भौरों से यह सरोवर सुशोभित था ॥ १९ ॥ मगर, कछुआ, मछली इत्यादि से सुशोभित था, इसमें कुमुद, उत्पल, कल्हार, पुण्डरीक इत्यादि के पूर्ण ॥ २० ॥ तथा शतपत्र और कोकनद इत्यादि नाना प्रकार के कमलों से शोभित था, पक्षियों के कलकल शब्द सुन पड़ते थे और यहाँ

नक्रकच्छपमीनाद्यैरगाह्यं सुमनोहरम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकाविलं महत् ॥२०॥
शतपत्रैः कोकनदैः समन्तात्परिशोभितम् ॥ पक्षिणां च कलारावैर्मुखरं नयनोत्सवम् ॥२१॥
तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्च शोभितम् ॥ वटैः करञ्जैर्नीपैश्च तिंतिणीभिस्तथैव च ॥२२॥
निम्बैः प्लक्षैः प्रियालैश्च पनसैश्चम्पकैरपि ॥ पुन्नागैस्तूवरैश्चैव कपित्थामलकैरपि ॥२३॥
निष्पेपणैश्च जम्बूभिः समन्तात्परिशोभितम् ॥ वन्यमातङ्गसारङ्गवराहमहिषादिभिः ॥२४॥
शशैश्च भल्लकैश्चैव गवयैरुपशोभितम् ॥ खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैस्तथा ॥२५॥

नेत्रों को आनन्द मिलता था ॥ २१ ॥ किनारे पर कीचक की झाड़ियाँ, वट, करञ्जन, कदम्ब, इमली इत्यादि वृक्षों से ॥ २२ ॥ तथा नीम, परास, प्रियाल, पनस, चम्पक, पुन्नाग, तुम्बर, कैथा, आँवला इत्यादि वृक्षों से ॥ २३ ॥ तथा निष्पेपण और जामुन के वृक्षों से चारों ओर सुशोभित था, जङ्गली हाथी, हिरन, सूअर, भैंसे इत्यादि से ॥ २४ ॥ तथा

खरहा, भालू, गवय से सुशोभित था, खड्ग, नाभीमृग, व्याघ्र, सिंह, भेड़िया इत्यादि से ॥ २५ ॥ गदहा, शरभ, खच्चर, सुरागाय से सुशोभित था, बन्दर जल्दी जल्दी एक शाखा से दूसरी शाखापर कूद रहे थे ॥ २६ ॥ बिल्ली, भालू, तथा रुरु के, झींगुर के झनकारों से, बाँसों के शब्द से सुशोभित था ॥ २७ ॥ प्रचण्ड वायु के चलने से वृक्ष घर्घर शब्द, कर रहे

खरान्तकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमण्डितम् ॥ शाखात् शाखान्तरं शीघ्रं प्लवमानैर्प्लवङ्गमैः ॥२६॥
मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा ॥ झिल्लीशब्दैश्च झङ्कारैः कीचकानां रवैस्तथा ॥२७॥
... व्याधेनैव प्रदर्शितम् ॥२८॥
...ायां सरस्यस्मिन्मनोरमे ॥२९॥
...वा भुक्त्वा फलमतन्द्रितः ॥३०॥
...ल व्याधं धर्मरतं पुनः ॥३१॥



...ल मुनिवर ने देखा, इस मनोहर सरोवर में मध्ये. ... क्रिया को करके तथा देवपूजा करके ॥३०॥ व्याध से लाये हुए श्रम को हरनेवाले स्वादिष्ट कैथे के फल आनन्द से खाकर, सुख पूर्वक बैठकर धर्म में तत्पर व्याध से

फिर पूछा ॥ ३१ ॥ हे धर्मतत्पर। तुमने पहिले मुझसे क्या पूछा था। धर्म बहुत हैं, इनके मार्ग भिन्न भिन्न हैं और इनकी विधि भी अलग अलग है ॥ ३२ ॥ तुम्हारे वैशाख महीने के कहे हुए धर्म सूक्ष्म होने पर भी बड़े बड़े फलों को देने वाले हैं, ये सब प्राणियों को इस संसार के तथा परलोक के सुख देते हैं ॥ ३३ ॥ जो कुछ तुम्हारे मन में पूछने की और इच्छा हो

किं वक्तव्यं मया पृच्छ तवादौ धर्मतत्परः ॥ धर्माश्च बहवः सन्ति नानामार्गाः पृथग्विधाः ॥३२॥
तव वैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपि महार्थदाः ॥ सर्वेषामेव जन्तूनामिहामुत्र फलप्रदाः ॥३३॥
यत्प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौ तच्च पृच्छ माम् ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥३४॥
व्याध उवाच ॥ केन वा कर्मणा चासीद्व्याधजन्म तमोमयम् ॥ केन वा चेदृशी बुद्धिः सङ्गतिर्वा महात्मनः ॥३५॥ एतदादौ ममाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो ॥ इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खो नाम महामुनिः ॥३६॥
मेघगम्भीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ शङ्ख उवाच ॥ शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः ॥३७॥

सो पूछो, मुनि के ऐसा पूछने पर व्याध ने हाथ जोड़ कर कहा ॥ ३४ ॥ व्याध ने कहा—किस कर्म से मुझे तमोमय व्याध जन्म हुआ। किससे ऐसी बुद्धि हुई तथा महात्मा की संगति हुई ॥ ३५ ॥ हे प्रभु! यदि आप मुझे मानते हैं तो यह सब मुझको आदि से कहिये। ऐसा कहने पर शंखनाम के महामुनि ने ॥ ३६ ॥ मुखकमल को मुस्कुराकर मेघ के समान

गम्भीर वाणी से कहा। शंखजी ने कहा–तू पूर्वजन्म में शाकल नगर में वेदपारङ्गत, ब्राह्मण था ॥ ३७ ॥ तू बड़ा तेजस्वी था, तेरा नाम स्तम्भ था और तू श्रीवत्स गोत्र में उत्पन्न हुआ था, तेरी प्रेमिका एक वेश्या थी उसके संग के दोष से ॥ ३८ ॥ नित्य की क्रिया को छोड़कर तू शूद्रवत् मूर्ख हो गया, क्रियाओं को छोड़ने से तू दुष्ट और शून्य आचार का हो गया ॥ ३९ ॥ तेरी स्त्री अति सुन्दरी ब्राह्मणी थी, वह सुन्दरी वेश्या सहित तुझ अधम ब्राह्मण की सेवा करती थी ॥ ४० ॥

स्तम्भो नाम महातेजास्तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥ तवेष्टा गणिका काचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः ॥३८॥
त्यक्त्वा नित्यक्रियां नित्यं शूद्रवन्मूर्खमागतः ॥ शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च ॥३९॥
ब्राह्मणी च तदा चासीद्भार्या कान्तिमती तव ॥ सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् ॥४०॥
उभयोः क्षालयन्ती च पादांस्त्वत्प्रियकारिणी ॥ उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता ॥४१॥
वेश्यया वार्यमाणापि हितकार्ये तयोः स्थिता ॥ एवं शुश्रूषयन्त्या हि भर्त्तारं वेश्यया सह ॥४२॥
जगाम सुमहान् कालो दुःखिताया महीतले ॥ अपरस्मिन् दिने भर्त्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् ॥४३॥

तुम्हारा प्रिय करनेवाली वह तुम दोनों का पैर धोती थी, तुम दोनों से नीचे स्थान पर सोती थी, दोनों के वचन का पालन करती थी ॥ ४१ ॥ वेश्या से रोकने पर भी वह तुम दोनों का कार्य करती थी, इस प्रकार से वेश्या सहित पति की शुश्रूषा करती हुई ॥ ४२ ॥ उसने संसार में दुख से बहुत समय बिताये, एक दिन उसके पति ने भैंस की दही और

मूली खाई ॥ ४३ ॥ शूद्रों के खाने का निष्पाव तिल मिलाकर उसने खाया और अपथ्य भोजन करने से उसको विरेचन और वमन होने लगा ॥ ४४ ॥ अपथ्य भोजन से उसको भयङ्कर भगन्दर रोग हो गया, वह इस रोग से दिन रात बड़ी पीड़ा पाने लगा ॥ ४५ ॥ जब से घर में धन रहा तब तक उसकी वेश्या ठहरी थी, उसका धन लेकर फिर उसके घर में न

अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥ तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन् ॥४४॥
अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगन्दरः ॥ स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः ॥४५॥
यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥ गृहीत्वा तस्य सा वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे ॥४६॥
अन्यस्य पार्श्वमासाद्य गता घोरा सुनिर्घृणा ॥ ततः स दीनवचनो व्याधिबाधाप्रपीडितः ॥४७॥
उक्तवान् स रुदन् भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥ परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् ॥४८॥
न मयोपकृतं किञ्चित्त्वयि सुन्दरि पापिना ॥ यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत गर्हितः ॥४९॥

रहती थी ॥ ४६ ॥ वह दूसरे के पास चली गई और अति घृणित हो गई, तब व्याधि और बाधा से पीड़ित होकर दीन वचन से ॥ ४७ ॥ रोग से व्याकुल चित्त होकर रोकर उसने अपनी स्त्री से कहा—हे देवि! मैं बड़ा निर्दयी हूँ और वेश्या में लीन हूँ, तू मेरी रक्षा कर ॥ ४८ ॥ हे सुन्दरि! मुझ पापी ने तेरा कोई उपकार नहीं किया. जो निन्दनीय पापी अपनी

विनीत भार्या का आदर नहीं करता ॥ ४९ ॥ हे भद्रे ! वह पन्द्रह जन्म तक नपुंसक रहता है, हे महाभागे ! वह मनुष्य दिन रात साधुजनों से निन्दित होता है ॥ ५० ॥ तुझ सती का अपमान करके मैं पाप योनि प्राप्त करूँगा, तेरे पुण्य से बोधित होकर भी मैं तेरे क्रोध से धधकता था ॥ ५१ ॥ पति के ऐसा कहने पर हाथ जोड़ कर वह बोली—हे कान्त ! तुम

स षण्ढो भविता भद्रे दशजन्मानि पञ्च च ॥ दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः ॥५०॥
पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥ अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तव पुण्येन बोधितः ॥५१॥
एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥ न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कान्त मां प्रति ॥५२॥
न चापि त्वयि मे क्रोधो येन दग्धेति वक्ष्यसि ॥ पुराकृतानि पापानि दुःखानीह भवन्ति हि ॥५३॥
तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥ यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि ॥५४॥
तद्भुञ्जन्त्या स मे दुःखं न विषादः कथञ्चन ॥ इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुभ्रूरन्वपालयत् ॥५५॥

मेरे प्रति दीनता और लज्जा मत करो ॥ ५२ ॥ मैंने आपके ऊपर कभी क्रोध नहीं किया जिससे आप अपने को धधकते हुए कहते हो, पहिले किये हुए पाप संसार में दुख दाई होते हैं ॥ ५३ ॥ इनको जो क्षमा करता है वही सती है और वह उत्तम पुरुष होता है, जो कुछ मैंने पूर्वजन्म में पाप किये ॥ ५४ ॥ उनसे उत्पन्न हुए विषादों को भोगने में मुझे कोई दुःख

नहीं है, ऐसा कहकर वह सुनयनी पति की सेवा करने लगी ॥ ५५ ॥ वह साध्वी बन्धुजनों और पिता से धन लाकर क्षीरसागर निवासी अपने पति भगवान् का चिन्तन करने लगी ॥ ५६ ॥ उसके मल मूत्र को दिन रात धोती हुई तथा कष्ट पूर्वक धीरे-धीरे पति के कीड़ों को नख से निकालती हुई ॥ ५७ ॥ वह सती न तो दिन में न रात में सोती थी, पति के

आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥ चीरोदवासिनं देवं भर्तारं समचिन्तयत् ॥५६॥
शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥ नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन् कष्टाच्छनैः शनैः ॥५७॥
न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी ॥ भर्तुर्दुःखेन सन्तप्ता दुःखितेदमवोचत ॥५८॥
देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥ कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम् ॥५६॥
चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम् ॥ सुष्टन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे ॥६०॥
मोदकान् कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥ मन्दवारे करिष्यामि चोपवासं सदैव हि ॥६१॥

दुःख से दुखी होकर उसने कहा ॥ ५८ ॥ हे देवता लोग ! हे पितर लोग ! मेरे पति की रक्षा करो, मेरे पति के रोग को हटाओ और उनको पापरहित करो ॥ ५६ ॥ अपने पति के आरोग्य के लिये रक्त, मांस, सुन्दर अन्न तथा भैंस का दूध चण्डिका देवी को अर्पण करूँगी ॥ ६० ॥ तथा महात्मा गणेश जी को मोदक अर्पण करूँगी, सर्वदा शनिवार के दिन

उपवास करूँगी, ॥ ६१ ॥ न मीठा खाऊँगी, न घी खाऊँगी, मैं निःसन्देह शरीर में तेल न लगाऊँगी ॥ ६२ ॥ मेरा पति रोगहीन होकर सौ बरस जिये, ऐसी प्रार्थना वह प्रतिदिन देवी से करती थी ॥ ६३ ॥ तब वैशाख महीने में सन्ध्या के समय गरमी से व्याकुल देवल नाम के महात्मा मुनि उसके घर पर आये ॥ ६४ ॥ तब उस स्त्री ने कहा कि घर पर वैद्य

नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामि वै घृतम् ॥ तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं स्थास्ये नैवात्र संशयः ॥६२॥
जीवतां रोगहीनोऽयं भर्ता मे शरदां शतम् ॥ एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते ॥६३॥
तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥ वैशाखे मासि घर्मार्तः सायाह्ने तस्य वै गृहम् ॥६४॥
तदा तु भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः ॥ तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् ॥६५॥
ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वञ्चितः ॥ पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि साऽक्षिपत् ॥६६॥
पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥ त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम् ॥६७॥
स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथागतम् ॥ अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥६८॥

आया है, उसीसे रोग हटाया जावेगा अतएव मैं उसका आतिथ्य सत्कार करूँगी ॥ ६५ ॥ तुमको धर्मविमुख जान कर वैद्य के छल से ठग लिया, उनका पैर धोकर उसने उस जल को अपने सिर पर छिड़का ॥ ६६ ॥ गरमी की शान्ति के लिये उस महात्मा को शर्बत पिलाया, उसकी आज्ञा से उसने धूप और गरमी की शान्ति किया ॥ ६७ ॥ प्रातःकाल सूर्य

उदय होने पर वह मुनि यथास्थान चले गये, कुछ दिन बाद तुझे सन्निपात हो गया ॥ ६८ ॥ तुमने त्रिकूट पिलाती हुई अपनी स्त्री की अंगुली दाँत से काट लिया, तब तेरे दाँतों में एकाएक श्लेष हो गया ॥ ६० ॥ वह कोमल अँगुली का टुकड़ा मुख में रह गया, अंगुली काट कर तू उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ अपनी सुन्दर शय्या पर अपनी

त्रिकूटं नीयमानाया भर्ताङ्गुलिमखण्डयत् ॥ उभयोर्दन्तयोः श्लेषः सहसा समपद्यत ॥६९॥
तत् खण्डमङ्गुलेर्वक्त्रे स्थितं भर्तुः सुकोमलम् ॥ खण्डयित्वाऽङ्गुलिं भर्ता पञ्चत्वमगमत्क्षणात् ॥७०॥
शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं शुभाम् ॥ मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कान्तिमती तदा ॥७१॥
विक्रीय सा स्ववलयं गृहीत्वा चेन्धनं बहु ॥ चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥७२॥
अवगुह्य भुजाभ्यां च पादौ चाश्लिष्य पादयोः ॥ मुखे मुखं विनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा ॥७३॥
जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च ॥ दाहयामास कल्याणी भर्तृदेहं रुजान्वितम् ॥ आत्मना

सुन्दरी वेश्या को याद करता हुआ तुझ पति को मरा जान कर तेरी सुन्दर स्त्री ने ॥ ७१ ॥ अपना कंगन बेंच कर बहुत सा इन्धन लाकर उस सती ने चिता बनाई और पति को उसके बीच में रख कर ॥ ७२ ॥ भुजा से भुजा, पैर से पैर, मुख से मुख, हृदय से हृदय, मिलाकर ॥ ७३ ॥ तथा उस देवी ने जाँघ से जाँघ मिला कर अपने को रख कर उस कल्याणी ने रोग

पीड़ित पति के देह में आग लगाई और अपने सहित उस तन्वङ्गी ने जलती अग्नि में ॥ ७४ ॥ शरीर त्याग करके पति का आलिङ्गन करके विष्णुलोक को चली गई, पानी के दान से तथा वैशाख मास में पैर धोने से योगियों से भी अगम्य गति उसने प्राप्त किया ॥ ७५ ॥ तू ने अन्तकाल में वेश्या की चिन्ता किया अतएव देह त्यागने पर सत्कर्मों से उत्पन्न मुक्ति

सह तत्वङ्गी ज्वलिते जातवेदसि ॥७४॥ विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिङ्ग्य मुरारिलोकम् ॥ पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम् ॥७५॥ त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसत्कर्मजातः ॥ जन्मव्याधं प्राप्यते घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥७६॥ दत्ते त्वया पानकस्यापि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे मासि सत्यम् ॥ व्याजाद्दत्ता तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मान् प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून् ॥७७॥ धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापौघहारि ॥ तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयात्सम्पदः सन्ततिश्च ॥७८॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृ-

को नहीं पाया तथा तू घोर रूप, हिंसात्मक, सबको दुःख देने वाला व्याध जनमा ॥ ७६ ॥ तूने सचमुच वैशाख महीने में शर्बत पिलाने की आज्ञा दिया, तूने बहाने से यह आज्ञा दिया था अतएव तुझको ऐसी अच्छी बुद्धि हुई कि तूने सब कल्याण का कारण पूछा ॥ ७७ ॥ तैने सब पापों का नाश करनेवाला मुनि का पैर धुला हुआ जल शिर पर रक्खा इससे

तुझे इस वन में मेरी संगति प्राप्त हुई, तुझे अब संतति और सम्पत्ति मिलेगी ॥ ७८ ॥ इस प्रकार तूने जो कर्म पूर्वजन्म में किया था सो सब मैंने कहा, मैंने दिव्य चक्षु से तेरे पाप और पुण्य कर्मों को देखा ॥ ७९ ॥ हे महामति ! तेरा कल्याण

तम् ॥ कर्म पुण्यं पापकं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥७९॥ गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्वाञ्छ्रोतु-
मिच्छति ॥ जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते ॥८०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीपसंवादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हो, तेरा चित्त अब शुद्ध हो गया है, अब जो कुछ गुप्त बात तू पूछना चाहता है सो पूछ मैं कहूँगा ॥ ८० ॥

श्री स्कन्द पुराण वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप के संवाद में व्याध का उपाख्यान,
व्याध के पूर्व जन्म कथन नाम का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥



व्याध ने कहा—आपने शुभ भागवत् धर्म विष्णु के उद्देश्य से करने को कहा, तथा पहिले इनमें वैशाख महीने के धर्म कहे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! वह विष्णु कैसा है और उसके क्या लक्षण हैं, उसका परिमाण कितना है और वह विष्णु भगवान् किन सद्भावों से जाना जा सकता है ॥ २ ॥ वैष्णव धर्म कैसे हैं, किस से विष्णु प्रसन्न होते हैं, हे ब्रह्मन्! हे महामते! मुझ

व्याध उवाच ॥ विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्मा भागवताः शुभाः ॥ तत्रापि माधवीयाश्च इत्युक्तं तु त्वया पुरा ॥ १ ॥ स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन् किं वा तस्ये हि लक्षणम् ॥ किं मानं तस्य सद्भावे कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः ॥ २ ॥ कीदृशा वैष्णवा धर्माः केन वा प्रीयते हरिः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् किङ्कराय महामते ॥ ३ ॥ इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः ॥ प्रणम्य जगतामीशं नारायणमनामयम् ॥ ४ ॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि विष्णु-रूपमकल्मषम् ॥ यदचिन्त्यं विरिञ्च्याद्यैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५ ॥ पूर्णशक्तिः पूर्णगुणो निर्दिष्टः

दास को यह बतलाइये ॥ ३ ॥ व्याध के ऐसा पूछने पर उस ब्राह्मण ने जगत् के स्वामी अनामय नारायण को नमस्कार करके कहा ॥ ४ ॥ शङ्खजी बोले—हे व्याध! सुनो, मैं विष्णु भगवान् के पाप रहित रूप का वर्णन करता हूँ—यह रूप देवता, मुनि इत्यादि के आत्मा से अचिन्त्य है ॥ ५ ॥ विष्णु भगवान्, पूर्ण शक्ति, पूर्ण गुणवाले हैं, सबके ईश्वर हैं, निर्गुण हैं.

चेष्टा रहित हैं, अनन्त हैं, सत्, चित्, तथा आनन्द स्वरूप हैं ॥ ६ ॥ वे सब चराचर विश्व के निर्माण करनेवाले हैं, वही
आश्रय हैं, इन्हीं के वश में सारा संसार है ॥ ७ ॥ अब तुझको मैं परमात्मा ब्रह्म के लक्षण कहता हूँ, उत्पत्ति, स्थिति,
संहार, आवृत्ति, तथा नियम ॥ ८ ॥ प्रकाश, बन्ध, मोक्ष और वृत्ति उन्हीं से होती है, उन्हीं विष्णु को कविलोग शाश्वत

सकलेश्वरः ॥ निर्गुणो निष्कलोऽनन्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥ यदेतदखिलं विश्वं चरा-
चरमतन्द्रितः ॥ साधीशं साश्रयं यच्च यद्वशे नियतं स्थितम् ॥ ७ ॥ अथ ते लक्षणं वच्मि
ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारा ह्यावृत्तिर्नियमस्तथा ॥ ८ ॥ प्रकाशो बन्धमोक्षौ
च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी ॥ स विष्णुर्ब्रह्मसंज्ञोऽसौ कवीनां शाश्वतो विभुः ॥ ९ ॥ साक्षाद्ब्रह्मेति तं
प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि ॥ ब्रह्मशब्दं सोपपदं ब्रह्मादिषु विदो विदुः ॥१०॥ नान्येषां ब्रह्मता
क्वापि तच्छक्त्येकांशभागिनाम् ॥ तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः ॥११॥ शास्त्रं
च वेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम् ॥ इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं च महामते ॥१२॥

ब्रह्म कहते हैं ॥ ९ ॥ बाद में इन्हीं को ब्रह्मा इत्यादि ने साक्षात् ब्रह्म कहा है, पण्डित लोग ब्रह्मादि के नामों में ब्रह्म शब्द
को उपपद सहित मानते हैं ॥ १० ॥ उनके एक एक अंशवाले दूसरों में ब्रह्मता कहाँ हो सकती है, इस परमात्मा का जन्म
इत्यादि शास्त्रों से ही जानने योग्य है ॥ ११ ॥ चारो वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र तथा महाभारत—ये परमेश्वर

के आत्मरूपी शास्त्र हैं ॥ १२ ॥ इन्हीं से महाविष्णु जाने जाते हैं अन्य शास्त्रों से कदापि नहीं, इस श्रेष्ठ विष्णु भगवान् को वेद न जाननेवाला कभी नहीं जान सकता ॥ १३ ॥ वेदों से जानने योग्य, सनातन, नारायण भगवान्, इन्द्रिय, अनुमान तथा तर्क से नहीं जाने जा सकते ॥ १४ ॥ इन्हीं के जन्म, कर्म तथा गुणों को सच्ची तरह जान कर प्राणी मोक्ष को प्राप्त होते हैं और सर्वदा उनके वश में रहते है ॥ १५ ॥ जैसे जैसे विष्णु भगवान् का माहात्म्य फैलता है वैसे वैसे देव, ऋषि

एतैरेव महाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथञ्चन ॥ नावेदविदमुं विष्णुं मनुते च वरं क्वचित् ॥१३॥
नेन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम् ॥ ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम् ॥१४॥
अस्यैव जन्मकर्माणि गुणान् ज्ञात्वा यथामति ॥ मुच्यन्ते जीवसङ्घाश्च सदा तद्वशवर्तिनः॥१५॥
क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत् ॥ एकैकस्मिन् स्थितां शक्तिं देवर्षिपितृपादिताम् ॥१६॥
प्रत्यक्षेणागमेनापि तथैवानुमयापि च ॥ आदौ नरोत्तमं विद्याद्बले ज्ञाने सुखं तथा ॥१७॥
तस्माद्भूपं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम् ॥ भूपान्मनुष्यगन्धर्वांस्तेभ्य आजावजान्सुरान् ॥१८॥

तथा पितर इत्यादि में एक एक में शक्ति स्थित होकर ॥ १६ ॥ बल में, ज्ञान में तथा सुख में पहिले प्रत्यक्ष से, आगम तथा अनुमय से नरोत्तम भगवान् को जानै ॥ १७ ॥ विद्या, ज्ञान आदि से आवृत उनके गुणों को सौगुना मानै, राजा, मनुष्य, गन्धर्व तथा अजावज असुरों से ॥ १८ ॥ तत्त्वाभिमानी देव लोग विद्या के कारण सौगुने बढ़ कर हैं, तत्त्वाभि-

मानी देवों से सातो ऋषि श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ सप्त ऋषियों से श्रेष्ठ अग्नि हैं, अग्नि से सूर्यादि, सूर्य से गुरु बृहस्पति, बृहस्पति से वायु, वायु से महाबली इन्द्र श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥ इन्द्र से पार्वती देवी, पार्वती से जगत् गुरु महादेव, शम्भु से बुद्धि महादेवी, तथा बुद्धि से प्राण विशिष्ट है ॥ २१ ॥ प्राण श्रेष्ठ और कुछ नहीं है, प्राण में ही सब प्रतिष्ठित है, प्राण से

तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान् ॥ तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः ॥१९॥
सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेः सूर्यादयस्तथा ॥ सूर्याद्गुरुर्गुरोः प्राणः प्राणादिन्द्रो महाबलः ॥२०॥
इन्द्राच्च गिरिजा देवी देव्या शम्भुर्जगद्गुरुः ॥ शम्भोर्बुद्धिर्महादेवी बुद्धेः प्राणो बलात्मकः ॥२१॥
न प्राणात्परमं किञ्चित् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ प्राणाज्जातमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टितम् ॥२२॥
प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥ सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रं नीलाम्बुदप्रभम् ॥२३॥
लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्यास्य स्थितिर्भवेत् ॥ व्याध उवाच ॥ सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपालेशैक-
भागिनी ॥२४॥ न विष्णोः परमं किञ्चिन्न समो वा कथञ्चन ॥ कथं जीवेष्वयं प्राणः

उत्पन्न हुआ सब कुछ प्राण ही की चेष्टा करता है ॥ २२ ॥ प्राण ही में सब अन्तर्गत है, प्राण ही से सब चेष्टित हैं, नील मेघ के समान सब के आधार भूत इस प्राण को सूत्र कहते हैं ॥ २३ ॥ लक्ष्मी के कटाक्ष मात्र से इस प्राण की स्थिति होती है ! व्याध ने कहा—देवों के देव विष्णु भगवान् की वह लक्ष्मी कृपा की पात्र है ॥ २४ ॥ विष्णु भगवान् से श्रेष्ठ

तथा बराबर भी दूसरा कोई नहीं है, जीवों में प्राण का नाम सूत्र कैसे हुआ ॥ २५ ॥ इसका निर्णय कैसे होता है, हे विभु ! हे ब्रह्मन् ! मुझे यह बतलाइये कि विष्णु भगवान् किस प्रकार से प्राण से श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ शङ्ख जी ने कहा—हे व्याध ! जो तू निर्णय पूछता है सो सुन, सब जीवों से प्राण अधिक है, इसके उद्देश्य से मैं कहता हूँ ॥ २७ ॥ प्राचीन काल में सनातन

सूत्रनामाधिकोऽभवत् ॥२५॥ निर्णयो वा कथं ह्यस्य प्राणाधिक्यं कथं विभो ॥ एत-
दाचक्ष्व मे ब्रह्मन् कथं प्राणाद्विभुः परः ॥२६॥ शङ्ख उवाच ॥ शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि
यत्पृष्टं निर्णयं त्वया ॥ प्राणाधिक्यं समुद्दिश्य जीवैश्च सकलैरपि ॥२७॥ पुरा नारायणो
देवः पद्मसृष्टौ सनातनः ॥ सृष्ट्वा ब्रह्मादिकान् देवानिदं प्राह जनार्दनः ॥२८॥ साम्राज्येऽहं
स्थापयेयं ब्रह्माणं वः प्रतिप्रभुम् ॥ यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वरः ॥२९॥
तं स्थापयत शीलाढ्यं शौर्यौदार्यगुणान्वितम् ॥ इत्युक्ता विभुना देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥३०॥
एवं विवादिनोऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति ॥ सर्वे विवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं जगुः ॥३१॥

नारायण भगवान् ने अपनी पद्म सृष्टि में ब्रह्मादि देवताओंको रचकर जनार्दन ने कहा ॥ २८ ॥ मैं देवताओं में ब्रह्मा का साम्राज्य स्थापित करता हूँ, तुम में से जो देवता श्रेष्ठ हो उसको युवराज के पद पर ॥ २९ ॥ शील, शूरता, उदारता आदि गुणों से युक्त को स्थापित करो, प्रभु के ऐसा कहने पर सब देवता लोगों ने इन्द्र के पास जाकर ॥ ३० ॥ आपस में "मैं हूँगा

मैं दूंगा" ऐसा कहने लगे, सब आपस में विवाद करते हुए, कोई तो सूर्य के पास गये ॥ ३१ ॥ कोई इन्द्र के पास और
कोई कामदेव के पास गये, कोई चुप बैठ गये, जब उन्होंने देखा कि निर्णय नहीं होता, तब वे नारायण भगवान् से पूछने
गये ॥ ३२ ॥ सब देवताओं ने फिर हाथ जोड़ कर नमस्कार करके कहा–हे महाविष्णु ! हम लोगों ने भली भाँति विचार
किया है ॥ ३३ ॥ हे देव ! हम लोगों में कोई श्रेष्ठ नहीं देख पड़ता. आपही निर्णय करिये, देव लोग संशय में आ गये है

शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णीं वितष्ठिरे ॥ ते निर्णयमपश्यन्तः प्रष्टुं नारायणं ययुः ॥३२॥
नमस्कृत्य पुनः प्राहुः सर्वे प्राञ्जलयोऽमराः ॥ विचारितं महाविष्णो सर्वैरस्माभिरञ्जसा ॥३३॥
नास्मासु देवमधिकं द्रक्ष्यामो हि कथञ्चन ॥ त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनोऽभवन् ॥३४॥
इति पृष्टाऽमरैः सर्वैः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ देहादस्माच्च वैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामति ह्ययम् ॥३५॥
पतिष्यति प्रविष्टे तु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत् ॥ स देवो ह्यधिको नूनं नापरस्तु कथञ्चन ॥३६॥
इत्युक्तास्ते ततः सर्वे तथास्त्विति वचोऽब्रुवन् ॥ निश्चक्राम जयन्ताह्वः पादात्पूर्वं सुरेश्वरः ॥३७॥

॥ ३४ ॥ सब देवताओं के पूछने पर हँसकर वह बोले–हमारी विराट रूपी शरीर से जिसके निकलने पर ॥ ३५ ॥ शरीर
गिर जाता है उसमें जिसके प्रवेश करने पर यह खड़ी हो जाती है, वही देवता अवश्य सबसे अधिक है, इससे श्रेष्ठ दूसरा
कोई नहीं ॥ ३६ ॥ ऐसा कहने पर सब देवताओं ने कहा 'ऐसा ही होवे' तब पहिले पैर से जयन्त नाम का देवता निकला

॥ ३७ ॥ तब इस शरीर को पंगु कहा. शरीर तब भी नहीं गिरा, वह सुनता, पीता. बोलता, सूँघता तथा देखता था ॥ ३८ ॥ तब गुह्य भाग से दक्षनाम का प्रजापति निकला. तब इस शरीर को नपुंसक कहा पर देह न गिरी ॥ ३९ ॥ यह सुनती. पीती, सूँघती तथा देखती थी, बाद में हाथ से सब देवों का देव इन्द्र निकला ॥ ४० ॥ इस शरीर को बिना हाथ

तदा पंगुममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥३८॥
पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ तदा पण्ढममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥३९॥
शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्त इन्द्रः सर्वामरेश्वरः ॥४०॥
हस्तहीनममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥४१॥
लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः ॥ तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४२॥
शृण्वन्पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ ॥
अजिघ्राणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४३॥ शृण्वन् पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥

का कहा और शरीर तब भी नहीं गिरा, यद्यपि यह सुनता, पीता, सूँघता, तथा देखता भी था ॥ ४१ ॥ नेत्रों से तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य निकला तब इस शरीर को काणा कहा, देह तब भी नही गिरी ॥ ४२ ॥ यह सुनती, पीती, सूँघती तथा देखती थी, तब नासिकाओं से सत्य अश्विनो कुमार निकले. शरीर में से धारण शक्ति निकल गई, पर यह देह नहीं

गिरी ॥ ४३ । यह सुनती, पीती, सूँघती, तथा देखती थी, कानों से दिशा निकली परन्तु देह न गिरी तब इनको बहिरी कहा, मरी हुई नहीं ॥ ४४ ॥ यह सुनती पीती, सूँघती तथा देखती थी, तब जीभ में से वरुण निकले ॥ ४५ ॥ तब इनको बिना जीभ की कहा, तब भी देह न गिरी, जीती हुई, चलती हुई और खाती हुई थी तथा ज्ञान रखती हुई और साँस लेती हुई थी ॥ ४६ ॥ तब वाणी से वागीश्वर अग्नि निकली, तब इस शरीर को गूँगी कहा, परन्तु शरीर नहीं

श्रोत्राद्दिशो विनिष्क्रान्ता न देहः पतितस्तदा ॥ तदामुं बधिरं प्राहुर्न मृतेति कथञ्चन ॥४४॥
शृण्वन् पिबन् वदञ्जिघ्रन् पश्यन्नास्ते चलन्नपि ॥ वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततः परम्॥४५॥
तदाऽरसज्ञमेवाहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥४६॥
ततो वाचो विनिष्क्रान्ता वह्निर्वागीश्वरो विभुः ॥ तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥४७॥
जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥ पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसो बोधनात्मकः ॥४८॥
तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥ जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानन् श्वसन्नपि ॥४९॥

गिरा ॥ ४७ ॥ और वह जीती हुई चलती हुई, खाती हुई, ज्ञान रखती और साँस लेती हुई थी, तब मन से आत्मा को बोध करने वाले रुद्र निकले ॥ ४८ ॥ तब इस शरीर को जड़ कहा, देह तब भी नहीं गिरी, यह जीती, चलती, खाती, ज्ञान रखती और साँस लेती थी ॥ ४९ ॥ बाद में प्राण निकला तब इसको मृतक कहा, तब विस्मित चित्त होकर देवताओं ने

फिर कहा ॥ ५० ॥ बाद में यह स्थिर हुआ कि हम लोगों में से जो कोई इस देह को उठावेगा वह युवराज होगा ॥ ५१ ॥ ऐसा सुनकर क्रमानुसार सबने बारी २ प्रवेश किया, जयन्त ने पैर में प्रवेश किया परन्तु देह खड़ी न हुई ॥ ५२ ॥ दक्ष ने गुह्य मार्ग में प्रवेश किया, परन्तु शरीर न उठा, इन्द्र ने हाथ में प्रवेश किया, परन्तु शरीर न उठा ॥ ५३ ॥ सूर्य ने चक्षु

पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः ॥ पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा विस्मितमानसाः ॥५०॥

देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः ॥ स एव ह्यधिकोऽस्मासु युवराजो भविष्यति ॥५१॥

इत्येवं तु प्रतिश्रुत्य विविशुश्च यथाक्रमम् ॥ जयन्तः प्राविशत्पादौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५२॥

गुह्यं च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ इन्द्रो हस्तौ विवेशाथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५३॥

चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ दिशः श्रोत्रं प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५४॥

वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५५॥

वह्निश्च प्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥ मनसि प्राविशद्रुद्रो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम् ॥५६॥

में प्रवेश किया परन्तु शरीर न उठा, दिशा ने कानों में प्रवेश किया, परन्तु शरीर न उठा ॥ ५४ ॥ वरुण ने जिह्वा में प्रवेश किया परन्तु शरीर न उठा, अश्विनीकुमारों ने नाक में प्रवेश किया तो भी शरीर खड़ा न हुआ ॥ ५५ ॥ अग्नि ने वाणी में प्रवेश किया तब भी शरीर न उठा, रुद्र ने मन में प्रवेश किया तो भी शरीर न उठा ॥ ५६ ॥ तब प्राण ने

प्रवेश किया तब शरीर उठ खड़ा हुआ, तब देवताओं ने निश्चय करके प्राण को देवताओं से अधिक तथा सर्वव्यापी माना ॥ ५७ ॥ बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य और जीवन में भी यह श्रेष्ठ है, इसलिये इस महाप्रभु को अभिषेक करके युवराजपद पर बैठाया ॥ ५८ ॥ इसका स्थान सर्वोत्तम समझ कर सामवेद का एक मन्त्र गाया, इस कारण से सम्पूर्ण स्थावर और जंगम

पश्चात्प्राणो विवेशासीत्तदोत्तस्थौ कलेवरम् ॥ तदा देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम् ॥५७॥
बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च ॥ ततोऽभिषेचयाञ्चक्रुर्यौवराज्ये महाप्रभुम् ॥५८॥
उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकं तदा जगुः ॥ तस्मात्प्राणात्मकं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५९॥
अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगतां पतिः ॥ न प्राणहीनं जगदस्ति किञ्चित्प्राणेन हीनं न च
वै समेधते ॥६०॥ प्राणेन हीनं स्थितिमन्न किञ्चित्प्राणेन हीनं न च किञ्चिदस्ति ॥ तस्मात् प्राणः
सर्वजीवाधिकोऽभूद्बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा ॥६१॥ प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा

विश्व प्राणात्मक है ॥ पूर्ण अंशों से बल के आधिक्य से यह जगत् का स्वामी पूर्ण है ॥ ५९ ॥ प्राण हीन जगत् कुछ भी नहीं है, प्राण से रहित की वृद्धि नहीं होती ॥ ६० ॥ प्राण के विना कोई स्थिति नहीं है, प्राण के विना कुछ भी नहीं है । अतएव बल में सब से अधिक तथा सब जीवों की अन्तरात्मा प्राण सब जीवों से अधिक है ॥ ६१ ॥ कोई भी पदार्थ

प्राण से अधिक या प्राण के बराबर नहीं है, न शास्त्र में देखा गया, न पहिले कभी सुना गया। एक प्राण देवता अनेक कार्यों के करने से अनेक हो गये ॥ ६२ ॥ इसी से प्राण सबसे श्रेष्ठ कहा गया है, प्राण की उपासना में तत्पर भगवान् ने लीला मे संसार को रचने, नाश करने और पालन करने मे लग गये ॥ ६३ ॥ बचे हुए शिव, इन्द्र इत्यादि सब चेतन और जड वासुदेव भगवान् के सिवाय कोई भी प्राण को जीत नहीं सकते ॥ ६४ ॥ यह प्राण सब देवताओं की आत्मा है, सब

शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चास्ते ॥ तत्तत्कार्यानुगः प्राण एको देवो ह्यनेकधा ॥६२॥ तस्मात्प्राणं वरं प्राहुः प्राणोपासनतत्पराः ॥ लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः ॥६३॥ शेषा हि शिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जड़ा अपि ॥ वासुदेवादृते कोऽपि नैनं परिभविष्यति ॥६४॥ सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयो विभुः ॥ वासुदेवानुगो नित्यं तथा विष्णुवशे स्थितः ॥६५॥ वासुदेवप्रतीपन्तु न शृणोति न पश्यति ॥ देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ॥६६॥ प्रतीपं क्वापि कुरुते न प्राणः सर्वगोचरः ॥ तस्मात्प्राणो महाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः ॥६७॥ एवं ज्ञात्वा महाविष्णो-

देवताओं का स्वामी है. वासुदेव भगवान् का सेवक है, नित्य तथा सर्वदा विष्णु भगवान् के वश में है ॥ ६५ ॥ यह वासुदेव भगवान् के विपरीत न सुनता है और न देखता है, शिव इन्द्र इत्यादि देवता लोग तो विपरीत करते हैं ॥ ६६ ॥ सबका अन्तर्यामी प्राण कभी प्रतिकूल नहीं करता, इसीसे पण्डित लोग प्राण को महाविष्णु का बल कहते

हैं। ६७ ॥ इस प्रकार से महाविष्णु के माहात्म्य तथा लक्षण को जानकर पहिले से बँधी हुई शरीर को की सर्प जीर्ण केचुली की तरह ॥ ६८ ॥ छोड़कर नारायण के धाम को जाते हैं. शङ्खजी के इस वाक्य को सुनकर प्रसन्न चित्त व्याध ॥ ६९ ॥ विनीत होकर मुनि से फिर पूछने लगा. हे ब्रह्मन्! जगत् गुरु महानुभाव इस प्राणी को ॥ ७० ॥ इस सर्वेश्वर

माहात्म्यं लक्षणं तथा ॥ पूर्वबन्धानुगं लिङ्गं जीर्णं त्वचमिवोरगः ॥६८॥ विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम ॥ श्रुत्वा शङ्खोदितं वाक्यं पुनर्व्याधः प्रसन्नधीः ॥६९॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ ब्रह्मन्महानुभावस्य प्राणस्यास्य जगद्गुरोः ॥७० ॥ न ख्यातो महिमा लोके कथं सर्वेश्वरस्य वै ॥ देवानां च मुनीनां च भूपानां च महात्मनाम् ॥७१॥ महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः ॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥७२॥ शङ्ख उवाच ॥ पुरा प्राणो हरिं देवं नारायणमनामयप् ॥ अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा ॥७३॥

की महिमा लोक में प्रसिद्ध क्यों नहीं है, देवों की, मुनियों की, राजाओं की तथा महात्माओं की ॥ ७१ ॥ महिमा लोक में तथा पुराणों में सैकड़ों सुन पड़ती है, हे ब्रह्मन्! यह मुझे बतलाइये, मुझको इसके जानने की बड़ी लालसा है ॥ ७२ ॥ शंखजी ने कहा–प्राचीन समय में प्राण देव अनामय नारायण को अश्वमेधों से यज्ञ करने के लिए गङ्गा तीर पर

गये ॥ ७३ ॥ हलों से पृथ्वी की शुद्धि करने लगा. वहाँ वाल्मीक के नीचे कण्व नाम के ऋषि अनेक मुनियों के साथ समाधि लगाये थे ॥ ७४ ॥ हल से खींच कर वह बाहर आये, उस महामुनि ने प्राण को सामने देखकर उसको शाप दिया और क्रोध से कहा ॥ ७५ ॥ आज से हे देवेश । तू तीनों लोक में तथा विशेष कर पृथ्वी पर महिमा और प्रसिद्धि न पावेगा

हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः ॥ अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नाम समाधिगः॥७४॥
हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तः क्रोधादिदमुवाच ह ॥ दृष्ट्वा पुरः स्थितं प्राणं शशाप ह महाविभुम्॥७५॥
अद्य प्रभृति विख्यातिं महिमा भुवनत्रये ॥ तव नाप्नोति देवेश भूलोके तु विशेषतः ॥७६॥
प्रख्यातास्ते भविष्यन्ति ह्यवतारा जगत्त्रये ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन वायुः क्रोधात्तथाऽब्रवीत् ॥७७॥
विनाऽपराधं शप्तोऽस्मि तितिक्षुश्च निरागसः ॥ तस्मात्कण्व महाबाहो गुरुद्रोही भवाशु च ॥७८॥
लोके निन्दितवृत्तिश्च भवेत्याह सदागतिः ॥ ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्राणस्यास्य महाप्रभो ॥७९॥

॥ ७६ ॥ तीनों लोक में तेरे अवतार प्रसिद्ध होंगे, मुनि के उससे ऐसा कहने पर वायु ने क्रोध करके कहा ॥ ७७ ॥ तुमने मुझ निरपराधी को शाप दिया है अतएव हे महाबली कण्व ! तू शीघ्रही गुरुद्रोही होगा ॥ ७८ ॥ उन्होने कहा संसार में तेरी गति और तेरा आचारण निन्दित होगा, तब से इस लोक में यह महाप्रभु प्राण ॥ ७९ ॥ की महिमा प्रसिद्ध नहीं

हुई तथा विशेष कर पृथ्वी में, शाप के कारण वह गुरु का द्रोही तथा सूर्य का शिष्य हुआ ॥ ८० ॥ यह सब जैसा तुमने पूछा वैसा मैंने कहा, अब जो कुछ तुमको पूछना हो, सो पूछो, विचार मत करो ॥ ८१ ॥

न ख्यातो महिमा लोके भूर्लोके तु विशेषतः ॥ शापात्कण्वो गुरुद्रोही सूर्यशिष्योऽभवत्तदा ॥८०॥
इत्येतत्कथितं सर्वं यत्पृष्टं तु त्वयाऽधुना ॥ यच्छ्रोतव्यमितो व्याध पृच्छ मां मा विचारय ॥८१॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे वायुशापकथनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में
वायुशाप कथन नाम का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



व्याध ने कहा—भगवान् ने जो हजारों करोड़ों जीव उत्पन्न किये हैं, क्या उन्होंने इनको देह से उत्पन्न किया है अथवा दूसरे प्रकार से? ॥ १ ॥ ये भिन्न-भिन्न कर्मों को करनेवाले तथा सनातन और भिन्न मार्ग के देख पड़ते हैं, हे महामुनि! ये क्यों एक स्वभाव के नहीं हैं? इस प्रश्न का उत्तर मुझको विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २ ॥ शंखजी ने कहा—जीव समुदाय तीन प्रकार के होते हैं—सत्त्व, रज और तमोगुणवाले, राजस कर्मवाले राजस कर्म को, तामस गुणवाले तामस

व्याध उवाच ॥ किं जीवा विभुना सृष्टा कोटशोऽथ सहस्रशः ॥ देहद्वारेण वा सृष्टाः सृष्टाश्चेति विनिश्चितम् ॥१॥ दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गाः सनातनाः ॥ नैकस्वभावा एते हि कुत एव महामते ॥ तदेतत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद ॥२॥ शङ्ख उवाच ॥ त्रिविधा जीवसंघा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः ॥ राजसा राजसं कर्म तामसास्तामसं तथा ॥३॥ सात्त्विकाः सात्त्विकं कर्म कुर्वन्त्येते यथाक्रमम् ॥ क्वचिच्च गुणवैषम्यमेतेषां संसृतौ भवेत् ॥४॥ तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वतः फलभागिन ॥ क्वचित्सुखं क्वचिद्दुःखं क्वचिच्चोभयमेव च ॥ ५ ॥ गुणानामेव वैषम्यात्

कर्म को तथा ॥ ३ ॥ सात्त्विक गुणवाले सात्त्विक कर्म करते है, कभी कभी गुणों की विषमता से उलट फेर हो जाता है ॥ ४ ॥ इसी से ऊँचे नीचे कर्म करते फल के भागी होते हैं, कोई सुख और दुख और कोई दोनों को ॥ ५ ॥ ये मनुष्य गुण की विषमता से प्राप्त करते हैं, ये प्रकृति से स्थिर जीव इन्हीं तीनों गुणों से बँधे हैं ॥ ६ ॥ गुण और कर्म के

अनुसार कर्म का विपरीत फल होता है, फिर गुण के अनुसार ये मनुष्य प्रकृति को प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ प्रकृतिस्थ मनुष्य
प्राकृतिक गुण तथा कर्मों से पूर्ण रहते हैं तथा प्राकृतिक गति को प्राप्त करते हैं परन्तु प्रकृति नाश नहीं होती ॥ ८ ॥
तामस से अनेक दुःख होते हैं, ये सर्वदा तामस वृत्तिवाले होते हैं। ये निर्दयी, निष्ठुर तथा क्रूर होते हैं और लोक का
द्वेष इनकी जीविका होती है ॥ ९ ॥ राक्षस से पिशाच तक तामसी गति को प्राप्त करते हैं, राजस वालों को मिश्रित बुद्धि

प्राप्नुवन्ति नरा इमे ॥ प्रकृतिस्था इमे जीवा बद्धा एतैर्गुणैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥ गुणकर्मानुरूपेण कर्मणां
व्यत्ययः फलम् ॥ गुणानुगुणभूयस्ते प्रकृतिं यान्त्यमी जनाः ॥७॥ प्रकृतिस्थाः प्राकृतिजा गुणा
कर्माभिसंवृताः ॥ गतिं प्राकृतिकीं यान्ति व्यत्ययः प्रकृतेर्न हि ॥८॥ तामसा दुःखबहुलाः सदा
तामसवृत्तयः ॥ निर्दया निष्ठुराः क्रूरा लोकद्वेषैकजीविनः ॥९॥ राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं
यान्ति वै गतिम् ॥ राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः ॥१०॥ पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति
कचित्पापाच्च यातनाम् ॥ अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनः पुनः ॥११॥ धर्मशीला

होती है, वे पाप और पुण्य दोनों ही करते हैं ॥ १० ॥ पुण्य से स्वर्ग को प्राप्त करते हैं तथा पाप से नरक की यातना
भोगते हैं, अतएव वे अभागे बारंबार जन्म लेते हैं ॥ ११ ॥ सात्त्विक लोग धर्मात्मा, दयावान्, श्रद्धावान् तथा दूसरों की
निन्दा न करनेवाले होते हैं, उनकी सात्त्विकी वृत्ति होती है ॥ १२ ॥ पाप से रहित महातेजस्वी वे लोग वैकुण्ठ को जाते

हैं, इसी से भिन्न कर्मवाले, नाना रूप तथा भिन्न बुद्धि वाले लोग होते हैं ॥ १३ ॥ इन्हीं गुण तथा कर्मों के अनुसार महाप्रभु विष्णु भगवान् अपने २ स्वरूप की प्राप्ति के लिये इनसे काम करवाते हैं ॥ १४ ॥ पूर्ण मनोरथ वाले विष्णु भगवान् में विषमता और घृणा नहीं है, वह समभाव से संसार की सृष्टि, स्थिति तथा नाश करते हैं ॥ १५ ॥ अपने गुण

दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते ॥१२॥ ते चोर्ध्वं यान्ति विमला गुणापाये महौजसः ॥ अतो विभिन्नकर्माणो नानारूपाः पृथग्धियः ॥१३॥ गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः ॥ कर्माणि कारयत्यद्धा स्वस्वरूपाप्तये विभुः ॥१४॥ विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै न हि ॥ सृष्टिं स्थितिं हृतिं चैव समामेव करोत्ययम् ॥१५॥ स्वगुणानुगुणा एते कर्मणः फलभागिनः ॥ आरामोप्ता यथा सर्वान् समं वर्षयति द्रुमान् ॥१६॥ एककुल्याजला ह्यङ्गाद्रुमाश्च प्रकृतिं गताः ॥ नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कदाचन ॥१७॥ व्याध उवाच ॥ जनानां पूर्णभोगानां कदा मुक्तिर्भवेन्मुने ॥ सृष्टिकालेऽथवा ह्यन्तकाले वा

दोष से लोग अपने कर्मों का फल प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार बगीचे में वर्षा सभी पेडों पर समान होती है ॥ १६ ॥ परन्तु एक नाली से सींचे हुए वृक्षों की भिन्न २ प्रकृति होती है, बागीचा लगानेवाले को किसी प्रकार की विषमता और घृणा नहीं होती ॥ १७ ॥ व्याध ने कहा—हे मुनि ! पूर्ण भोग के मनुष्यों की मुक्ति कब होती है, सृष्टि काल में,

अन्तकाल में अथवा स्थापन के काल में ॥ १८ ॥ सृष्टि, संहार तथा स्थिति का कितना समय होता है? हे ब्रह्मन्
भगवान्! इस चेष्टा को विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १९ ॥ शंखजी ने कहा–ब्रह्मा का दिन चार हजार युग होता है, इनकी
रात भी इतनी ही बड़ी होती है, ऐसा दिन रात मिल कर ब्रह्मा का अहोरात्र होता है ॥ २० ॥ पन्द्रह दिन का पक्ष, दो

स्थापनस्य च ॥१८॥ क्वचिच्च सृष्टिकालस्य संहारस्यापि वै स्थितेः ॥ एतद्विस्तार्य मे ब्रह्मन्
भगवच्चेष्टितं वद ॥१९॥ शङ्ख उवाच ॥ चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ रात्रिश्च
तावती तस्य ह्यहोरात्रं दिनं भवेत् ॥ २० ॥ दशपञ्च दिनान्याहुः पक्षं मासो द्व्यात्मकः ॥
मासद्वयमृतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम् ॥२१॥ अयने द्वे वत्सरः स्यात्तादृक् शतसमा यदि ॥
गच्छन्तिब्रह्मणो ह्यस्य ब्रह्मकल्पं तदा विदुः ॥२२॥ तावान् हि प्रथमः कल्प इति वेदविदां
मतम् ॥ प्रलयस्त्रिविधः प्रोक्तो मानवो मानवात्यये ॥२३॥ दैनंदिनो द्वितीयो हि ब्रह्मणो
दिवसात्यये ॥ ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मं च प्रलयं विदुः ॥२४॥ ब्रह्मणस्तु मुहूर्तं तु

पक्ष का महीना, दो महीने का ऋतु, तीन ऋतु का अयन ॥ २१ ॥ तथा दो अयन का एक वर्ष होता है ऐसे सौ वर्ष
जब ब्रह्मा के बीत जाते हैं तब ब्रह्मकल्प कहलाता है ॥ २२ ॥ वेदों के जाननेवालों ने उनका यह प्रथम कल्प माना है,
प्रलय तीन प्रकार का होता है, एक मानव जिसमें मनुष्यों का अन्त होता है ॥ २३ ॥ दूसरा ब्रह्माजी के दिन

के अन्त में होता है उसको दैनंदिन कहते हैं, तब बाद में ब्रह्मा के लय होने पर ब्रह्मा का प्रलय कहलाता है, ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी के एक मुहूर्त में मनु का एक प्रलय होता है, इसी प्रकार क्रम से चौदह प्रलय बीतने पर॥ २५ ॥ एक दैनंदिन लय कहलाता है, प्रलयों की स्थिति में लोकों के तीन प्रलय होने पर एक मन्वन्तर होता है॥ २६ ॥ इसमें केवल चेतन प्राणियों का नाश होता है. लोकों का क्षय नही होता, फिर से पूर्ववत् जब से पूति हो जाती है

मनोस्तु प्रलयं भवेत्॥ प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात्॥२५॥ दैनंदिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थित पुनः॥ त्रयाणामेव लोकानां लयो मन्वन्तरे भवेत्॥२६॥ चेतनानां तदा नाशो न लोकानां चयो भवेत्॥ उदकैरेव पूर्तिश्च यथापूर्वं तथा पुनः॥२७॥ मन्वन्तरान्ते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः॥ दनंदिनलये व्याध सर्वस्यापि चयो भवेत्॥२८॥ सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिगाः॥ सचेतनाः साधिभूता प्रसुप्ते चतुरानने॥२९॥ तत्त्वाभिमानिनो देवा ब्रह्मलोके व्यविस्थता:॥शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिता:॥३०॥

॥ २७ ॥ मन्वन्तर के अन्त में फिर से चेतन प्रणियों की उत्पत्ति होती है। हे व्याध! दैनंदिन प्रलय में सभी का क्षय हो जाता है॥ २८ ॥ सत्य लोक के अतिरिक्त सभी लोक नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्माजी के सोजाने पर चेतना युक्त तथा अधिभूत सभी प्राणी नष्ट हो जाते हैं॥ २९ ॥ तत्त्वाभिमानी देवता लोग ब्रह्मलोक में रह जाते हैं तथा सत्यलोक में

सोये हुए सभी बच जाते हैं ॥ ३० ॥ देवता लोग तब तक सोये पड़े रहते हैं, फिर रात्रि के अन्त में ब्रह्माजी पहिले
की तरह सृष्टि करते हैं ॥ ३१ ॥ ऋषि. देवता लोग, पितरलोक, धर्म. अलग अलग वर्ण, चक्रपाणि विष्णु भगवान् के दश
अवतार ॥ ३२ ॥ नियम से होते हैं, तथा दूसरे बहुत से देवता, ऋषि कल्पपर्यन्त ब्रह्माजी से ॥ ३३ ॥ फिर उत्पन्न होते हैं,

तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतन्द्रिताः ॥ पुनर्निशात्यये ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥३१॥
ऋषीन् देवान् पितॄँल्लोकान् धर्मान् वर्णान् पृथक् पृथक् ॥ पूनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्य
चक्रिणः ॥३२॥ नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः ॥देवता ऋषयश्चैव आकल्पं च
गिरांपतेः ॥३३॥ पुनरेवाभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः ॥ भूपाश्च साधवो ये च सिद्धिं
प्राप्ताः परं गताः ॥३४॥ तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः ॥ तद्राशिगाः पुनर्यान्ति
तन्नाम्ना श्रुतिसंस्थिताः ॥३५॥ तद्गात्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा ॥ दैत्यानामपि सर्वेषां
यदा कलियुगात्ययः ॥३६॥ कलिना सह गच्छन्ति यां गतिं निरयालयाः ॥ तेषां च

ब्रह्मा के साथ मुक्ति पानेवाले राजा और साधु लोग जो सिद्धि प्राप्त किये हुए और ब्रह्मलोक को जानेवाले होते हैं ॥ ३४ ॥
वे सत्यलोक में ही रह जाते हैं जो उस राशि में जानेवाले उसी नाम से श्रुति में स्थित रहते हैं वे फिर भी जाते हैं ॥ ३५ ॥
उन उन गोत्रों से उत्पन्न होते हैं और सदा उन उन कर्मों में तत्पर रहते हैं, जब कलियुग से सब दैत्य नाश हो जाते हैं

॥ ३६ ॥ तब कलियुग के साथ वे भी उसी गति को प्राप्त करते हैं, उनका निरय स्थान राशि स्थिति होता है, जो उनके नाम के दूसरे भी ॥ ३७ ॥ उत्पन्न होते हैं वे अपने अपने कर्म से उन उन कर्मों को करनेवाले होते हैं। मैं अब सृष्टिकाल तथा मुक्तिकाल बतलाता हूँ ॥ ३८ ॥ तुम सावधान चित्त हो जाओ, ब्रह्मा इत्यादि तथा देवताओं के निमेष में ब्रह्मकल्प के

राशिसंस्था ये तन्नामानोऽपरेऽपि च ॥३७॥ जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः ॥
सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामि मुक्तिकालं तथैव च ॥३८॥ ब्रह्मादीनां च देवानां समाहितमना भव ॥
निमेषे देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः ॥ ३६ ॥ तस्यावसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः ॥
निमेषान्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान् ॥४०॥ सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वान् जीवसंघान-
नेकशः ॥ सृज्यान्मुक्तानमुक्तांश्च लिङ्गभङ्गमुपागतान् ॥४१॥ सुप्ताः सृतिवस्थाः सर्वेऽपि तमोगा
अपि सर्वशः ॥ पूर्वकल्पे लिङ्गभङ्गमापन्ना विधिपूर्वकाः ॥२४॥ मानवान्ता जीवकोशा जीवन्मु-

समान होता है ॥ ३६ ॥ उसके बाद देवताओं के मुकुटमणि भगवान् का निमेष होता है, निमेष के अन्त में अपने कुक्षिगत लोकों की सृष्टि करने की इच्छा होती है ॥ ४० ॥ सब जीव समुदाय को उन्होंने अपने उदर में देखा, उनमें से उत्पन्न होने के योग्य कितने तो मुक्त थे तथा कितनों की लिङ्ग शरीर से छूट गई थी ॥ ४१ ॥ वे सब सुप्त संसार में स्थित तथा तमोगुण

और साधुओं का उपकार करता है ॥ ५३ ॥ जो श्रुति, स्मृति इत्यादि से निन्दा नहीं किया जाता जो विना प्रयोजन के
किया जाता है, उसको सात्त्विक धर्म जानो ॥ ५४ ॥ जो लोक से विरुद्ध न हो उसको सात्त्वि धर्म समझो, ये धर्म
वर्णाश्रम के विभाग से चार प्रकार के होते हैं ॥ ५५ ॥ तथा नित्य नैमित्तिक और काम्य के भेद से तीन प्रकार का माना

यस्तु यदि निष्कामिको भवेत् ॥५४॥ यस्तु लोकविरुद्धोऽपि तं सात्त्विकं विदुः ॥ चतुर्विधा
हि ते धर्मा वर्णाश्रमविभागतः ॥५५॥ नित्यनैमित्तिका काम्या इति ते च त्रिधा मता ॥ ते सर्वे
स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णौ समर्पिताः ॥५६॥ तदा वै सात्त्विका ज्ञेया धर्मा भागवताः शुभाः ॥
ये देवान्तरदैवत्याः सकामा राजसा मताः ॥५७॥ यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुरा ॥
हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः ॥५८॥ सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान् विष्णु-
प्रीतिकराञ्छुभान् ॥ कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः ॥५९॥ येषां चित्ते सदा

जाता है, अपने अपने ये सब धर्म जब विष्णु भगवान् को अर्पण किये जाते हैं ॥ ५६ ॥ तब ये सात्त्विक धर्म शुभ भागवत
धर्म कहलाते हैं, जब ये किसी कामना से देवता या अन्तर देवता को अर्पण किये जाते हैं तब ये राजस कहलाते हैं
॥ ५७ ॥ यक्ष, राक्षस, पिसाच इत्यादि तथा लोक में निष्ठुर देवताओं का धर्म सिंहात्मक तथा निन्दित धर्म तामस

कहलाता है ॥ ५८ ॥ विष्णु को प्रीति करने वाले शुभ सात्त्विक लोग विना किसी कामना के नित्य करते हैं वे भागवत कहलाते हैं ॥ ५९ ॥ जिसके चित्त में सदा विष्णु रहते हैं, जिसकी जिह्वा पर हरि भगवान् का नाम रहता है, जिसके हृदय में भगवान् का चरण रहता है, वे ही भागवत कहलाते हैं ॥ ६० ॥ जो सदाचार में लगे रहते हैं, जो सबका उपकार करते जो है, सर्वदा ममता हीन रहते हैं वे भागवत् कहलाते हैं, ॥ ६१ ॥ जिनका शास्त्रों में, गुरु, साधु तथा कर्मों में

विष्णुर्जिह्वायां नाम वै हरेः ॥ पादौ च हृदये येषां ते वै भागवताः स्मृताः ॥६०॥ सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः ॥ सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः ॥६१॥ येषां च शास्त्रे विश्वासो गुरौ साधुषु कर्मसु ॥ ये विष्णुभक्ताः सततं ते वै भागवताः स्मृताः ॥६२॥ येषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः ॥ श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः ॥६३॥ अटनं सर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम् ॥ श्रवणं सर्वधर्माणां विषयासक्तचेतसाम् ॥६४॥ अकिञ्चित्करमेतेषां षण्ढस्येव वरस्त्रियः ॥ साधूनां दर्शनेनैव मनो द्रवति वै सताम् ॥६५॥

विश्वास रहता है, जो निरन्तर विष्णु के भक्त हैं, वे भागवत् कहलाते हैं ॥ ६२ ॥ विष्णु भगवान् के प्रिय धर्म जिनको संमत हैं वे शाश्वत कहलाते हैं, ये धर्म श्रुति स्मृति इत्यादि से माने जाते हैं, ये शाश्वत कहलाते हैं ॥ ६३ ॥ सब देशों में घूमना, सब कर्मों को देखना, सब धर्मों को सुनना, विषयों में लीन चित्तवालों का ॥ ६४ ॥ ये कुछ भी नहीं कर

सकते, जैसे श्रेष्ठ स्त्री नपुंसक पुरुष का, साधुओं के दर्शन से ही सज्जन पुरुष का चित्त पिघल जाता है ॥ ६५ ॥ जैसे
चन्द्रमा की किरणों से पिघल जाता है, विषयों में चञ्चल मन सत् शास्त्र के श्रवण मात्र से ॥ ६६ ॥ साधुओं में लगा हुआ
पुरुषों का मन तेजरूप तथा पाप रहित हो जाता है, जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य की किरणों के संसर्ग से ॥ ६७ ॥ विना
कामना के, श्रद्धा पूर्वक, जिस नित्य विष्णु प्रिय धर्म को मनुष्य करते हैं वह भागवत धर्म कहलाता है ॥ ६८ ॥ इस संसार

चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिला यथा ॥ क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयेभ्यश्चलं मनः ॥६६॥
तिष्ठत्येव सतां पुंसां तेजोरूपमकल्मषम् ॥ पद्मबन्धोः प्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिला यथा ॥६७॥
निष्कामैर्हि जनैर्यस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः ॥ यो विष्णुवल्लभो नित्यं धर्मो भागवतो मतः ॥६८॥
तैर्दृष्टा बहवो धर्मा इहामुत्र फलप्रदाः ॥ विष्णुप्रीतिकराः सूक्ष्माः सर्वदुःखविमोचकाः ॥६९॥
उद्धृत्य सर्वशास्त्राणि धर्मं वैशाखसम्भवम् ॥ रमायै भगवानाह क्षीराब्धौ हितकाम्यया ॥७०॥
मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपादानं च वै तथा ॥ व्यजनैर्वीजनं चैव प्रश्रयाणां समर्पणम् ॥७१॥

तथा परलोक का फल देनेवाले बहुत से धर्म देख पड़ते हैं, परन्तु भगवान् को प्रसन्न करनेवाले तथा सब दुःखों के
हटाने वाले धर्म सूक्ष्म हैं ॥ ६९ ॥ क्षीरसागर में सबके हित के कामना से भगवान् ने लक्ष्मी से सब शास्त्रों से निकाल
कर वैशाख मास का धर्म कहा ॥ ७० ॥ मार्ग में छाया बनाना, पौसरा चलाना, पङ्खे से हवा करना और पात्रों

का दान करना है ॥ ७१ ॥ छाता तथा जूते का दान करना, कपूर और गन्ध का दान करना, कुंवा, बाउली, तालाब बनवाना तथा तटपर पानी पिलाना ॥ ७२ ॥ सन्ध्या समय शर्बत तथा ऊख के रस का दान तथा ताम्बूल का दान पाप को नाश करता है और विशेश कर रोगों को हटाता है ॥ ७३ ॥ मार्ग के थके को नमक मिलाकर मठा पिलाना, उपटन, लगाना,

छत्रस्योपानहोर्दानं दानं कर्पूरगन्धयोः ॥ वापीकूपतड़ागानां तटे पानविमोचनम् ॥७२॥
सायाह्ने पानकस्यापि दानमिक्षुरसस्य च ॥ ताम्बूलदानं पापघ्नं रोगघ्नन्तु विशेषतः ॥७३॥
लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि ॥ अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम् ॥७४॥
कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च ॥ मधुयुक्तं तिलानां च दानं पापविनाशनम् ॥७५॥
सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च ॥ रसायनप्रदानं च पितृनिर्वापणं तथा ॥७६॥
एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये॥प्रातःसूर्योदये स्नात्वा शृण्वन् द्विजकुलेरितम् ॥७७॥

तथा ब्राह्मण का पैर धोना ॥ ७४ ॥ चटाई, कम्बल तथा पलङ्ग का दान करना, और गोदान करना, मधु सहित तिल दान देना पापों को नाश करता है ॥ ७५ ॥ सन्ध्या के समय ऊख तथा ककड़ी का दान करना, पितरों के निमित्त रसायन को दान करना ॥ ७६ ॥ इस माधव भगवान् के प्रिय महीने में ये धर्म विशेष कहे गये हैं, प्रातःकाल सूर्योदय में स्नान करके

ब्राह्मणों से कही कथा सुनना ॥ ७७ ॥ नित्यकर्म करके मधुसूदन भगवान् का पूजन करे और एकाग्रचित्त होकर वैशाख महीने की कथा सुनै ॥ ७८ ॥ तेल लगाना तथा काँसे के पात्र में भोजन करना त्याग दे, निषिद्ध भोजन तथा वृथा बक-वाद करना छोड़ दे ॥ ७९ ॥ अलाम्बु, गाजर, लहसुन, तिलपिष्ठा. कांजी, फूट, घियातरोई ॥ ८० ॥ तथा पोई, कलिङ्ग,

नित्यकर्माणि कृत्वैव मधुसूदनमर्चयेत् ॥ कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः ॥७८॥
तैलाभ्यङ्गं वर्जयेच्च काँस्यपात्रे तु भोजनम् ॥ निषिद्धभक्षणं चैव वृथालापं च वर्जयेत् ॥७९॥
अलाबुं गृञ्जनं चैव लशुनं तिलपिष्टकम् ॥ आरनालाम्भस्फुटं च घृतकोशातकीं तथा ॥८०॥
उपोदकीं कलिङ्गं च शिग्रुशाकं च वर्जयेत्॥निष्पावांश्च कुलित्थानि मसूराणि च वर्जयेत् ॥८१॥
वृन्ताकानि कलिङ्गानि कोद्रवाणि च वर्जयेत् ॥ तन्दुलीयकशाकं च कौसुम्भं मूलकं तथा ॥८२॥
औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम् ॥ सर्वथा वर्जयेद्विद्वान् मासेऽस्मिन् माधवप्रिये॥८३॥
एतेष्वन्यतमं भुक्त्वा स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम्॥ तिर्यग्योनिशतं याति नात्र कार्या विचारणा ॥८४॥

सहजना और चौराई का साग त्याग दे, तथा कुरथी और मसूर त्याग दे ॥ ८१ ॥ बैंगन, कलिन्द, कोदो को त्याग दे तथा तन्दुली का साग, कुसुम और मूली ॥ ८२ ॥ गूलर, बेल तथा लिसोड़े का त्याग माधव प्रिय वैशाख महीने में विद्वान् को करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इनमें से एक को भी खाने से अवश्य चाण्डाल होता है, और उसको सौ बार कृमि

की योनि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।। ८४ ।। माधव भगवान् की प्रीति के लिये इस वैशाख महीने में व्रत करे, इस प्रकार से व्रत समाप्त होने पर भगवान् की प्रतिमा बनवावे ।। ८५ ।। मधुसूदन भगवान् की प्रतिमा को सब विभव और वस्त्र से विभूषित करके स्वयं पूजन करके ब्राह्मण को दान दे ।। ८६ ।। वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन अन्न और दही का प्रचुर दान करे, जल से भरा घड़ा, ताम्बूल. फल तथा दक्षिणा दे ।। ८७ ।। छाता और जूता, ठंढे जल से भरा घड़ा ताम्बूल

एवं मासव्रतं कुर्यात् प्रीतये मधुघातिनः ।। एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमा कारयेद्विभोः ।।८५।।
मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्रां च सदक्षिणाम् ।। स्वर्चितां विभवैः सर्वैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।८६।।
वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा ।। सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलं च सदक्षिणन् ।।८७।।
दद्यादुपानहौ छत्रं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।। शीतलोदकदध्यन्नं सताम्बूलं सदक्षिणम् ।।८८।।
ददामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः ।। अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितॄंस्ततः ।।८९।।
दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ।। गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे ।।९०।।

और दक्षिणा सहित ब्राह्मणों को भोजन कराके दान दे ।। ८८ ।। और यह कहे कि मैं धर्मराज के निमित्त दान देता हूँ, वह हम पर प्रसन्न होवें. तब अपसव्य होकर नाम गोत्र उच्चारण करके पितरों के निमित्त ।। ८९ ।। उनकी तृप्ति के लिये क्षय न होनेवाले अन्न और दही का दान दे, तब गुरु के लिये और इसके बाद विष्णु भगवान् के निमित्त ।। ९० ।। ठंढा जल,

दही, अन्न, काँसे के पात्र पर रख कर, भोजन सामग्री, फल, ताम्बूल तथा दक्षिणा सहित दान दे ॥ ९१ ॥ और कहे
हे विष्णु ! मैं विष्णुलोक को प्राप्त करने की इच्छा से आप को अर्पण करता हूँ, यह सब देकर कुटुम्बी ब्राह्मणों को
यथाशक्ति गाय दान कर दे ॥ ९२ ॥ इस प्रकार गर्व छोड़कर मास व्रत करै तो वह सब पापों से मुक्त होकर सौ कुलों का

शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम् ॥ सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यं च फलान्वितम् ॥९१॥
ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगीषया ॥ इति दत्त्वा यथाशक्त्या गां च दद्यात् कुटुम्बिने
॥९२॥ एवं मासव्रतं कुर्यात्सदा दम्भविवर्जितः ॥ स सर्वैः पातकैर्हीनः कुलानुद्धृत्य वै
शतम् ॥९३॥ पश्यतामेव भूतानां भित्वा वै सूर्यमण्डलम् ॥ याति विष्णोः परं धाम योगिना-
मपि दुर्लभम् ॥९४॥ व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मान्विष्णोरिष्टान्सकलफलदान्
व्याधपृष्टान् समस्तान् ॥ वृक्षः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम् ॥९५॥

उद्धार करके ॥ ९३ ॥ सब प्राणियों के देखते हुए सूर्य मण्डल का भेद करके विष्णु भगवान् के उस परम धाम को जाता
है, जो योगियों को भी दुर्लभ है ॥ ९४ ॥ जब श्रेष्ठ ब्राह्मण व्याध से पूछने पर विष्णु के प्रिय, सब फलों को देनेवाले
वैशाख मास के धर्मों को इस प्रकार व्याख्यान कर रहे थे, उसी क्षण, देखते देखते पाँच शाखावाला यह बर का पेड़

पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ९५ ॥ और इस वृक्ष के खोलरे में बैठा हुआ एक भयङ्कर दीर्घ देहवाला सर्प पापयोनि का शरीर तुरन्त त्याग कर वहाँ बैठ गया और नीचा शिर करके हाथ जोड़कर कहने लगा ॥ ९६ ॥

वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः ॥ हित्वा देवं पापयोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा ॥९६॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

इति श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में
भागवत धर्म कथन नाम का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



श्रुतदेवजी ने कहा—तब व्याध तथा शङ्खजी को बड़ा आश्चर्य हुआ, शंखजी ने पूछा तुम कौन हो और तुम्हारी यह दशा किस कारण से है ॥ १ ॥ किस कर्म से यह अशुभ दुर्योनि तुमको प्राप्त हुई और अकस्मात् तुम्हारी मुक्ति कैसे हुई, यह विस्तारपूर्वक कहो ॥ २ ॥ शंखजी से ऐसा पूछने पर उसने पृथ्वी पर गिर कर दण्डवत् किया और उसने शिर

श्रुतदेव उवाच ॥ ततस्तु विस्मितो भूत्वा शङ्खो व्याधसमन्वितः ॥ को भवानिति तं प्राह दशैषा च कुतस्तव ॥ १ ॥ केन वा कर्मणा चासीद्दुर्योनिरशुभावहा ॥ अकस्मात्ते कथं मुक्तिरेतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥ शङ्खेनैवं तदा पृष्टो दण्डवत्पतितो भुवि ॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अहं पुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषणः ॥ रूपयौवनसम्पन्नो विद्यामदसुगर्वितः ॥ ४ ॥ धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाहङ्कारदूषितः ॥ कुसीदस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना रोचन इत्यहम् ॥ ५ ॥ आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः ॥ लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्तु ममाभवन् ॥ ६ ॥ तं तु मात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः ॥ सदम्भश्च सदा

झुकाकर हाथ जोड़कर कहा ॥ ३ ॥ मैं पूर्व जन्म में प्रयाग में एक बड़ा बकवादी ब्राह्मण था, रूप तथा यौवन से सम्पन्न था, विद्या और मद से पूर्ण था ॥ ४ ॥ धनाढ्य था, मेरे अनेक पुत्र थे और मैं सर्वदा अहङ्कार से दूषित रहता था, कुसीद मुनि का पुत्र मेरा रोचन नाम था ॥ ५ ॥ आसन, शयन, निद्रा, बुरा व्यवहार, जुवा, लोकवार्ता और सूद लेना यही मेरा

व्यापार था ॥ ६ ॥ लोकनिन्दा का भय न करते हुए मैं सब कार्य गर्व से करता था, मुझे किसी की श्रद्धामात्र न थी ॥ ७ ॥ मेरे दुष्ट दुर्बुद्धि के बहुत काल इसी तरह व्यतीत हुए, तब वैशाख महीने में जयन्त नाम ब्राह्मण ॥ ८ ॥ भागवत के प्रिय उस महीने के धर्मों को सुनाया, उस क्षेत्र के निवासी, पुण्य कर्म करनेवाले ब्राह्मण ॥ ९ ॥ हजारों नर, नारी, क्षत्रिय,

कुर्वे न श्रद्धा मे कदाचन ॥ ७ ॥ दुर्बुद्धेर्मम दुष्टस्य कियान्कालो गतोऽभवत् ॥ तदा वैशाख-मासेऽस्मिञ्जयन्तो नाम वै द्विजः ॥८॥ श्रावयामास तान्मासधर्मान् भागवतप्रियान् ॥ तत्क्षेत्रवासिनां पुण्यकर्मणां च द्विजन्मनाम् ॥ ९ ॥ नारीनराः क्षत्रियाश्च वैश्याः शूद्राः सहस्रशः ॥ प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य मधुसूदनमव्ययम् ॥१०॥ कथां शृण्वन्ति सततं जयन्तेन समीरिताम् ॥ शुचिभूता मौनधरा वासुदेवकथारताः ॥११॥ वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः ॥ तां सभां च प्रविष्टोऽहं कौतुकाच्च दिदृक्षया ॥१२॥ सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि नो कृतः ॥

वैश्य, शूद्रों ने प्रातःकाल स्नान करके अविनाशी मधुसूदन भगवान् की पूजा करके ॥ १० ॥ जयन्त की सुनाई कथा को निरन्तर सुनते थे, ये लोग शुद्ध होकर मौन धारण करके वासुदेव भगवान् की कथा में लीन रहते थे ॥ ११ ॥ वैशाख मास के धर्म में निरत ये लोग गर्व तथा आलस्य का त्याग कर कथा सुनते थे, कौतुक देखने की इच्छा से मैं उस सभा में गया

॥ १२ ॥ मेरे सिर पर पगड़ी थी, मैंने नमस्कार भी नहीं किया, ताम्बूल खाता रहा, कचुक धारण किये था तथा देह में चन्दन लगाये था ॥ १३ ॥ वेग से लोकवार्ता करने लगा और कथा में विघ्न डाला, मेरी लोकवार्ता से सब चित्त चञ्चल हो गया ॥ १४ ॥ कभी मैं कपड़ा फैलाता, कभी निन्दा करता, कभी हँसता, कथा की समाप्ति तक मैंने इसी प्रकार काल

ताम्बूलं चन्दनं देहे कञ्चुकं च मया धृतम् ॥१३॥ कथाविक्षेपश्च चक्रे लोकवार्ताभिरञ्जसा ॥
सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यमभूद्वै लोकवार्तया ॥ १४ ॥ क्वचिद्वासः प्रसार्याहं क्वचिन्निन्दक्वचिद्धसन् ॥
एवं कालो मया नीतः कथा यावत्समाप्यते ॥१५॥ पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनष्टधीः ॥
सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहं च परे दिने ॥१६॥ तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयं च हलाहलम् ॥
प्राप्य भुक्त्वा यातनां च मन्वन्तानि चतुर्दश ॥१७॥ युक्तोऽप्यथ च लक्षेषु तथा चतुरशीतिभिः ॥
क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीं च वटद्रुमे ॥१८॥ दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते ॥ व्यालोऽहं

बिताया ॥ १५ ॥ फिर उस दोष से शीघ्र ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और आयुष्य भी कम हो गई और दूसरे ही दिन सन्निपात रोग से मैं मर गया ॥ १६ ॥ मैं नरक में गया जहाँ हलाहल और खोलते जल की यातना भोगता हुआ चोदह मन्वन्तर तक मुझे कष्ट भोगना पड़ा ॥ १७ ॥ क्रम से चौरासी लाख योनि में उत्पन्न होता हुआ मैं अब इस वट वृक्ष में रहता हूँ

॥ १८ ॥ दश योजन लम्बे सौ योजन ऊँचे सात योजन के खोलरे में क्रूर तापसी सर्प होकर रहता हूँ ॥ १९ ॥ हे विप्रर्षि! मैं अपने पहिले कर्मों से बँधा हूँ, मैं इस खोलरे में विना आहार के दश हजार वर्ष बिताये ॥ २० ॥ हे मुनि! दैववश आपके मुख कमल से कही हुई अमृत रूपी कथा को नेत्रों द्वारा सुनकर मेरे सब पाप अभी नाश हो गये ॥ २१ ॥

तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे ॥१९॥ भूत्वा वसामि विप्रर्षे कर्मणा बाधितः पुरा ॥ अयुतं च समायाता निराहारस्य कोटरे ॥२०॥ दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम् ॥ श्रुत्वा च चक्षुश्चुलकैः सद्यो ध्वस्ताशुभो मुने ॥२१॥ व्यालयोनिं विसृज्याहं दिव्यरूपधरः पुमान् ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः ॥२२॥ कस्मिञ्जन्मनि त्वं बन्धुर्न जाने मुनिसत्तम ॥ न मयोपकृतं क्वापि सानुबन्धः कुतः सताम् ॥२३॥ साधूनां समचित्तानां सदा भूतदयावताम् ॥ परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथा मतिः ॥२४॥ मामद्यानुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत् ॥ यथा च

तथा सर्प की योनि त्याग कर पुरुष का दिव्य रूप धारण करके, विनीत होकर हाथ जोड़कर आपके पैरों की शरण में आया हूँ ॥ २२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! न जाने किस जन्म के आप मेरे बन्धु थे, मैंने तो कभी उपकार नहीं किया, सज्जनों की कृपा मुझ पर कैसे हुई ॥ २३ ॥ सम चित्त वाले साधू लोग सदा प्राणियों पर दया करते हैं, इनकी प्रकृति दूसरे के उपकार

करने की होती है, तथा इनकी बुद्धि दूसरे तरह की नहीं होती ॥ २४ ॥ आज मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये, जिसमें
मेरी बुद्धि धर्म में लगे, जिसमें विष्णु भगवान् में प्रेम हो और सुन्दर गति को प्राप्त करूँ ॥ २५ ॥ चक्रपाणि विष्णु
भगवान् कभी न भूलैं और साधु वृत्तिवाले बड़े बड़े लोगों से सर्वदा मेरी संगति हो ॥ २६ ॥ मुझे कभी पाप न हो,
अहङ्कार और मद भी न हो, मुझे दरिद्रता हो जो मद से अंधे लोगों की आँखों का अञ्जन होता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार

सुगतिर्भूयाद्यथा विष्णौ रतिर्भवेत् ॥२५॥ न भूयाद्विस्मृतिः क्वापि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः ॥
महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत् ॥२६॥ नामर्षः क्वापि मे भूयान्नाहङ्कारो मदोऽपि वा ॥
दारिद्र्यमेव मे भूयान्मदान्धानां यदञ्जनम् ॥२७॥ इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥
प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ तूष्णीमेव तदग्रतः ॥२८॥ ततो दोर्भ्यां समुत्थाप्य शङ्खः प्रेमपरिप्लुतः ॥ पस्पर्श
पाणिना चाङ्गं शतमेनहतांहसः ॥२९॥ चक्रे सोऽनुग्रहं तस्मिन् दिव्यरूपधरे द्विजे ॥ प्राह तं कृपया-
विष्टो भाविवृत्तान्तमञ्जसा ॥३०॥ द्विजत्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि ॥ माहात्म्यश्रवणात्सद्यो

से, अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करके तथा बारम्बार नमस्कार करके वह उनके सामने विनीत भाव से हाथ जोड़कर
खड़ा रहा ॥ २८ ॥ तब प्रेम से पूर्ण होकर शंखजी उसको अपने हाथों से उठाया, इसके अंग को हाथ से छुआ जिससे
इसके सब पाप हट गये ॥ २९ ॥ उस दिव्य रूप वाले ब्राह्मण पर अनुग्रह करके कृपापूर्वक जल्दी से उसका भावी वृत्तान्त

कहा ॥ ३० ॥ हे द्विज। वैशाख मास का माहात्म्य सुनने से तथा हरि भगवान् का माहात्म्य सुनने से तेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ तू क्रम से अति वाहिक लोक में जाकर फिर से संसार में दशार्ण देश में उत्तम ब्राह्मण होगा ॥ ३२ ॥ तू सब विद्याओं में पण्डित होगा और वेदशर्मा नाम से प्रसिद्ध होगा, वहाँ तेरी अत्यन्त शुभ जाति की स्मृति होगी ॥ ३३ ॥

ध्वस्तनष्टाखिलाशुभः ॥३१॥ आतिवाहिकलोकांश्च क्रमाद् गत्वा पुनर्भुवि ॥ दशार्णविषये पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः ॥३२॥ वेदशर्मेति विख्यातः सर्वविद्याविशारदः ॥ तत्र ते भविता जातिस्मृतिरात्यन्तिकी शुभा ॥३३॥ तथा स्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वैषणः शुभः ॥ करोषि सकलान् धर्मान् वैशाखोक्तान् हरिप्रियान् ॥३४॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहोऽसङ्गो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ सदा विष्णुकथालापो भविता तत्र जन्मनि ॥३५॥ तेन सिद्धिमवाप्याथ विध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ प्राप्नोषि परमं धाम योगैरपि दुरासदम् ॥३६॥ मा भैषीः पुत्र भद्रं ते भविता मत्प्रसादतः ॥ हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात्कामादथापि वा ॥३७॥ स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि

इस स्मरण के अनुसार तू सब शुभ इच्छाओं को छोड़कर विष्णु भगवान् के प्रिय वैशाख मास के सब धर्मों को करेगा ॥ ३४ ॥ निर्धन, निस्पृह, असंग, गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय होकर, उस जन्म में तू सर्वदा विष्णु भगवान् की कथा में लीन रहेगा ॥ ३५ ॥ उससे सिद्धि प्राप्त कर सब बन्धनों से छूट कर योगियों से भी दुर्लभ परम धाम को पावेगा ॥ ३६ ॥ हे

पुत्र ! मत डर, मेरे प्रसाद से तेरा कल्याण होगा, हँसी से, भय से, क्रोध से, तथा द्वेष और काम से ॥ ३७ ॥ अथवा स्नेह से यदि एक बार भी पाप हरनेवाला विष्णु भगवान् का नाम उच्चारण करनेवाले पापी भी विष्णु के धाम को चले जाते हैं ॥ ३८ ॥ क्रोध जीते हुए, जीतेन्द्रिय, दयावन्त श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक कथा सुनकर स्वर्ग में जाते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ कोई तो केवल भक्ति से कथा सुनने में तत्पर रहते हैं, वे सब धर्मों को त्याग कर भी विष्णु भगवान्

च ॥ पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम् ॥३८॥ किमुत श्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रिया ॥ दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम ॥३९॥ केचित्केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः ॥ सर्वधर्मोज्झिता वाऽपि यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥४०॥ द्वेषादिपूर्णभक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते ॥ तेऽपि यान्ति परं धाम पूतनेवासुहारिणी ॥४१॥ महद्भिः सङ्गतो नित्यं वाग्विसर्गस्तदाश्रयः ॥ मुमुक्षूणां च कर्तव्यः स विधिः श्रुतिचोदितः ॥४२॥ स वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति

के परम पद को जाते हैं ॥ ४० ॥ द्वेष इत्यादि से पूर्ण भी जो कोई भक्ति से विष्णु भगवान् की उपासना करते हैं, वे भी प्राण हरनेवाली पूतना के सदृश परम धाम को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ महात्माओं का संग, नित्य भगवान् का नाम लेना, सदा इनका आश्रय–मोक्ष इच्छा करनेवालों का कर्तव्य है, यही विधि श्रुतियों में भी कही गई है ॥ ४२ ॥

पापों को नाश करनेवाला वाग्विसर्ग वह कहलाता है, जिसमें प्रतिश्लोक में निरन्तररूप से अनन्त भगवान् के यश तथा नाम वर्णन होते हैं, जिमको साधु लोग सुनते हैं, गाते हैं .और मनन करते हैं, ॥ ४३ ॥ जो भगवान् कष्टकारक सेवा नहीं चाहते. न अधिक धन, न तो रूप और यौवन चाहते हैं, जिसके एक वार स्मरण करने से ही मनुष्य दिव्य धाम को जाता है, उसी दयालु की शरण हम जाते हैं ॥ ४४ ॥ उसी भक्तवत्सल. अव्यय, मन से जानने योग्य. दयासागर, अपार नारायण

गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥४३॥ यः कष्टसेवां न च कांक्षते विभुर्न वा धनं भूरि न रूपयौवने ॥ स्मृतः सकृद्यच्छति धाम भास्वरं तं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥४४॥ तमेव शरणं याहि नाराय-णमनामयम् ॥ भक्तवत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम् ॥४५॥ कुरु सर्वानिमान् धर्मान् वैशाखोक्तान्महामते ॥ तेन तुष्टो जगन्नाथः शर्म ते च विधास्यति ॥४६॥ इत्युक्त्वा विररामाथ व्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः ॥ स दिव्यः पुरुषः प्राह पुनस्तं मुनिपुङ्गवम् ॥४७॥ दिव्यपुरुष उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया शङ्ख दयालुना ॥ दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव परां गतिम्

भगवान् की शरण जा ॥ ४५ ॥ हे महामति। वैशाखमास के कहे हुए इन धर्मों को कर, इससे सन्तुष्ट होकर जगन्नाथ तुझे कल्याण देंगे ॥ ४६ ॥ ऐसा कह कर वह रुक गये. व्याध को अति विस्मित देख कर, उस दिव्य पुरुष ने फिर से मुनीश्वर से कहा ॥ ४७ ॥ दिव्य पुरुष ने कहा—हे शंखजी! मैं धन्य हूँ, आप दयालु से मैं अनुगृहीत हूँ। अरे! मेरी बुरी

योनि छूट गई और मैं परम गति को जाता हूँ ॥ ४८ ॥ ऐसा कह कर परिक्रमा करके तथा आज्ञा पाकर वह स्वर्ग में गया, तब हे राजन्। सन्ध्या हो गई, शंखजी व्याध से सन्तुष्ट किये गये ॥ ४९ ॥ सायं सन्ध्या करके राजाओं की, देवताओं की तथा महात्माओं की अनेक कथा कहते हुए बची हुई रात बिताया ॥ ५० ॥ तथा अवतारों की देखी हुई

॥४८॥ इति तं च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ ॥ ततः सायमभूद्राजञ्छङ्खो व्याधेन तोषितः
॥४९॥ सन्ध्यां सायंतनीं कृत्वा रात्रिशेषं निनाय च ॥ नानाख्यानैश्च भूपानां देवानां च
महात्मनाम् ॥५०॥ लीलाभिरवतारा णां दृष्टगोष्ठीभिरेव च ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौ प्रक्षाल्य
वाग्यतः ॥५१॥ ध्यायञ्च तारकं ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम् ॥ वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा
प्राक् च भगोदयात् ॥५२॥ कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाखिलान् ॥ व्याधमाहूय
हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च ॥५३॥ रामेति द्व्यक्षरं नाम ददौ वेदाधिकं शुभम् ॥
विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम् ॥५४॥ तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम् ॥

बात चीत में रात कटी, ब्राह्म मुहूर्त में उठकर, पैर धोकर तथा मौन होकर ॥ ५१ ॥ तारक ब्रह्म का ध्यान करके शौचादि सत्क्रिया करके, मेष संक्रान्ति में वैशाख मास में सूर्योदय से पहिले स्नान करके ॥ ५२ ॥ सन्ध्यादिक कर्म तथा सब तर्पणों को करके प्रसन्न चित्त होकर व्याध को बुलाकर उसके मस्तक पर जल छिड़क कर तथा उसको देख कर ॥ ५३ ॥

वेदों से भी अधिक शुभकारक "राम" इन दो अक्षरों का उपदेश किया, विष्णु भगवान् के एक एक नाम सब वेदों से अधिक माने गये हैं ॥ ५४ ॥ इन अनन्त नामों में भी विष्णु भगवान् के सहस्र नाम अधिक हैं और इनमें भी "राम" नाम अधिक है ॥ ५५ ॥ अतएव हे व्याध ! तू निरन्तर "राम, राम" यह नाम जप, और हे व्याध ! मरण तक इन धर्मों को कर ॥ ५६ ॥ तब तेरा जन्म वाल्मीक ऋषि के कुल में होगा, और तू संसार में "वाल्मीकि" इस नाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ५७ ॥

ताद‍ृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम् ॥५५॥ तस्माद्रामेति तन्नाम जप व्याध निरन्तरम् ॥ धर्मानेतान्कुरु व्याध यावदामरणान्तिकम् ॥५६॥ ततस्ते भविता जन्म वाल्मीकस्य ऋषेः कुले ॥ वाल्मीकिरिति नाम्ना वै भूमौ ख्यातिमवाप्स्यति ॥५७॥ इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥ व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥५८॥ किञ्चिद्दूरानुगो भूत्वा स रुद-न्विरहातुरः ॥ यावद्दृष्टिपथं तावत्पश्यंस्तस्य गतिं पुनः ॥५९॥ पुनर्निवृत्तस्तच्चित्तस्तमेव हृदि चिन्तयन् ॥ वनं निर्माय तन्मार्गे प्रपां कृत्वा सुनिर्मलाम् ॥६०॥ अतियोग्यानिमान्धर्मान्वैशा-

ऐसा व्याध को समझाकर वह दक्षिण दिशा में चले गये, व्याध भी उनकी परिक्रमा कर, तथा बारम्बार नमस्कार कर ॥ ५८ ॥ कुछ दूर जाकर, विरह में आतुर होकर रोने लगा, जब तक वह देख पड़ते थे तब तक उनकी गति को बारम्बार और बाद में उस मार्ग को देखता रहा ॥ ५९ ॥ फिर स्वस्थचित्त होकर और उन्हीं का हृदय में मनन करता हुआ, वन को

साफ करके वहाँ पर अति निर्मल पौसरा बनाकर ॥ ६० ॥ अति योग्य इन वैशाख मास के कहे हुए धर्मों को करने लगा, जङ्गल में उपजे हुए कैथ, पनस, जामुन, आम इत्यादि फलों से ॥ ६१ ॥ थके हुए पथिकों को आहार देता हुआ जूता, चन्दन, छाता, पंखा ॥ ६२ ॥ बालू का बिछौना, तथा छाया से कहीं कहीं पर पथिकों का परिश्रम से उत्पन्न हुआ पसीना सुखाता था ॥ ६३ ॥ प्रातःकाल स्नान करके तथा दिन रात "राम, राम" इन दोनों अक्षरों को जपता था, व्याध के

खोक्तांश्चकार ह ॥ वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बुचूतादिभिः फलैः ॥६१॥ मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं पर्यकल्पयत् ॥ उपानद्भिश्चन्दनैश्च च्छत्रैश्च व्यजनैरपि ॥६२॥ वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित् ॥ आजहार च पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा ॥६३॥ प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्रामेति द्व्यक्षरम् ॥ व्याधजन्म निनायासौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत् ॥६४॥ कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे ॥ ततो वै दुश्चरं तेपे अन्नाहारविवर्जितः ॥६५॥ वल्मीकमभवद्दे हे तस्य कालेन भूयसा ॥ वाल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम् ॥६६॥ पश्चात्तपोविरामान्ते कृणौ स्मृतिपथंगते ॥ वयो विस्तरतो राजन् स्खलितंचेन्द्रियं मुनेः ॥६७॥ जग्राह चोरगी काचित् तस्यां

जन्म को त्याग कर यह वाल्मीक का पुत्र हुआ ॥ ६४ ॥ उसी सरोवर में कृणु नाम मुनि अन्न तथा आहार त्याग कर दुस्तर पर तप कर रहे थे ॥ ६५ ॥ उनकी शरीर पर अधिक काल में कीड़ों की पहाड़ी बन गई, श्रेष्ठ मुनि ने इसको "वाल्मीक" कहा ॥ ६६ ॥ बाद में तप के समाप्त होने पर कृणु ऋषि के कान में सर्प के रेंगने का शब्द पड़ा, उसकी

इन्द्रियाँ विचलित हो गईं ॥ ६७ ॥ एक सर्पिणी को पकड़ कर उन्होंने एक भिल्लजाति का पुत्र उत्पन्न किया, यह बड़ा यशस्वी वाल्मीकि नाम का संसार में बड़ा प्रसिद्ध हुआ ॥ ६८ ॥ जिसने अपनी मनोहर कविता में दिव्य रामकथा लिखा और कर्म बन्धनों को काटनेवाली इस कथा को संसार में प्रसिद्ध किया ॥ ६९ ॥ श्रुतदेवजी ने कहा—हे राजन् ! वैशाख के

जज्ञे वनेचरः ॥ वाल्मीकिरिति विख्यातो भुवनेषु महायशाः ॥६८॥ यो वै रामकथां दिव्यां स्वैः प्रबन्धैर्मनोहरैः ॥ लोके प्रख्यापयामास कर्मबन्धनिकृन्तनीम् ॥६९॥ श्रुतदेव उवाच ॥ पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूप लघ्वपि भूरिदम् ॥ व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम् ॥७०॥ य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि न भूयः स्तनपो भवेत् ॥७१॥

माहात्म्य को देखो, यह छोटा होकर बड़े फलों को देता है, व्याध ने भी जूता दान देकर दुर्लभ ऋषिपद को पाया ॥ ७० ॥ जो इस रोमाञ्चकारी, पाप हटानेवाले, अपूर्व इतिहास को सुने अथवा सुनावै उसका संसार में जन्म नहीं होता ॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्री स्कन्दपुराण के नारद और अम्बरीष के संवाद में वाल्मीकि व्याध के उपाख्यान में वाल्मीकि का जन्म कथन नाम का एकीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



मैथिल ने कहा-इस वैशाख नाम के मास में कौनसी तिथियाँ पुण्य हैं, और इन में कौन से दान विशिष्ट हैं ॥ १ ॥ संसार में किन लोगों से इनकी प्रसिद्धी हुई है, यह विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ श्रुतदेवजी ने कहा-वैशाख महीने में सूर्य के मेष राशि में जाने पर तिथियाँ पुण्य हैं ॥ २ ॥ एक एक में किया हुआ पुण्य करोड़ों गुना फल देता है, सब दानों से जो पुण्य और सब तीर्थों से जो फल होता है ॥ ३ ॥ वह फल एक ही तिथि में जल में गोता लगाने से प्राप्त होता है, स्नान,

मैथिल उवाच ॥ का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसंज्ञके ॥ कानि दानानि शस्तानि तासु
तासु विशेषतः ॥१॥ कैः प्रख्याताश्च वै लोके एतदाचक्ष्व विस्तरात् ॥ श्रुतदेव उवाच ॥ त्रिंशच्च
तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ ॥२॥ एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ सर्वदानेषु
यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥३॥ तत्फलं समवाप्नोति ह्येकैकस्यां जलाप्लुतः ॥ स्नानं दानं
तपोहोमौ देवतार्चनसत्क्रियाः ॥४॥ कथायाः श्रवणं नैव सद्यो मुक्तिविधायकम् ॥ रोगाद्युपहतो
यस्तु दारिद्र्येणापि पीडितः ॥ ५ ॥ श्रत्वा कथामिमां पुण्यां कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ अस्नात्वा

दान, तप, होम, देवताओं की पूजा, सत्क्रिया ॥ ४ ॥ कथाओं का सुनना तुरत मुक्ति देता है, जो रोग से ग्रस्त होता है अथवा दरिद्रता से पीड़ित होता है ॥ ५ ॥ वह मनुष्य इस पुण्य कथा को सुनकर कृतार्थ हो जाता है, जो इन तिथियों को विना स्नान किये अथवा विना दान किये बिताता है ॥ ६ ॥ वह महा गोहत्यक, कृतघ्नी और पितरों की हत्या करनेवाला

कहलाता है, जलाशय स्वाधीन हैं तथा शरीर भी स्वाधीन है ॥ ७ ॥ माधव भगवान् मन से तथा सम्पूर्ण गुणों से सेवन करने योग्य हैं, साधुलोग दयावन्त होते हैं, कौन माधव भगवान् की सेवा न करे ॥ ८ ॥ दरिद्रों से, धनिकों से, पंगुओं से, अन्धों से, नपुंसकों से, विधवाओं से तथा नर और नारियों से ॥ ९ ॥ बालक, युवा तथा वृद्धों से, हे राजन्! रोग

चाप्यदत्त्वा च येन नीता इमाः शुभाः ॥ ६ ॥ स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्चात्महा स्मृतः ॥ जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनं च कलेवरम् ॥७॥ माधवो मनसा सेव्यः सकलैश्च गुणैस्तथा ॥ साधवश्च दयावन्तः को न सेवेत माधवम् ॥८॥ दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्च पङ्गुभिश्चान्धकैस्तथा ॥ षण्ढैश्च विधवाभिश्च नारीभिश्च नरैस्तथा ॥९॥ कुमारयुववृद्धैश्च रोगार्तैरपि भूमिप ॥ अतीव सुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः ॥१०॥ मासमेननुप्राप्य धर्मान् कुरु शुभानिमान् ॥ को न यत्नं च कुरुते तस्मात्कोऽन्वपरः पशुः ॥११॥ योऽतीवसुलभान् धर्मान्न करोति नराधमः ॥ तस्यैव शाश्वता लोका नरका नात्र संशयः ॥१२॥ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे नृपोत्तम ॥ तां

पीड़ितों से भी वैशाख महीने का धर्म अति सुख साध्य है ॥ १० ॥ इस महीने के आनेपर इन शुभ धर्मों को करे, अतएव जो कोई इनको यत्न से नहीं करता वह पशु है ॥ ११ ॥ जो नीच पुरुष इन अति सुलभ धर्मों को नही करता उसको निरन्तर नरक लोक प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र! जिस प्रकार से दही में से मक्खन

निकाला जाता है। उसी तरह इस महीने में से सब पापों का नाश करनेवाली तिथि का अब मैं वर्णन करता हूँ ॥१३॥ महापुण्य चैत्रमास में सूर्य के मेष राशि में स्थित होने पर पापों का नाश करनेवाली अमावास्या करोड़ यज्ञों के फल को देती है ॥ १४ ॥ इस सम्बन्ध में एक प्राचीन पितरों की कहानी सुनी जाती है, जो संसार में सावर्णि का शासन रहते हुए

तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम् ॥१३॥ चैत्रे मासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे ॥
पापघ्नी पितृदैवत्या यज्ञकोटिफलप्रदा ॥१४॥ अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी ॥ नरके
पितॄनुद्दिश्य सावर्णौ शासति क्षितिम् ॥१५॥ त्रिंशत्कलियुगस्यान्ते सर्वधर्मविवर्जिते ॥ आनर्ते
तु द्विजः कश्चिद्धर्मवर्ण इति श्रुतः ॥१६॥ दृष्ट्वा कलियुगे घोरे जनान्पापरतान्मुनिः ॥ तस्यैव
प्रथमे पादे वर्णधर्मविवजिते ॥१७॥ स कदाचिंत्सत्रयागं मुनीनां तु महात्मनाम् ॥ अगमत्पुष्करे
क्षेत्रे कुर्वतां मौनधारिणाम् ॥१८॥ तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः ॥ तत्र केचित्क-

तथा नरक में पितरों को उद्देश्य करके प्रचलित थी ॥ १५ ॥ तीसवें कलियुग के अन्त में सब धर्मों के छोड़े जाने पर आनर्त देश में धर्मवर्ण नाम का ब्राह्मण प्रसिद्ध था ॥ १६ ॥ उस मुनि ने घोर कलियुग में मनुष्यों को पाप में लीन तथा उसके पहिले ही चरण में वर्ण और धर्म से हीन देखा ॥ १७ ॥ वह एक बार यज्ञ करते हुए मौन धारण किये हुए मुनियों और

महात्माओं के पास पुष्कर क्षेत्र में आया ॥ १८ ॥ वहाँ पर शास्त्र जाननेवाले ऋषियों की पुण्य कथा कह रहे थे, वहाँ पर व्रत धारण किये हुए कुछ लोग कलियुग की प्रशंसा करने लगे ॥ १९ ॥ हे नृप! विष्णु भगवान् को प्रसन्न करनेवाला जो पुण्य सत्ययुग में एक वर्ष में साध्य था, वह त्रेतायुग में एक महीने में तथा द्वापर में एक पक्ष में ही साध्य था ॥ २० ॥ कलियुग में उसका दशगुना पुण्य विष्णु भगवान् का स्मरण करने ही से होता है, कलियुग में किया हुआ छोटा पुण्य

लियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः ॥१९॥ कृते यद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ॥ त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥२०॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ॥ अत्यल्पमपि वै पुण्यं कलौ कोटिगुणं भवेत् ॥२१॥ दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते ॥ दयादानं न कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम् ॥२२॥ स एक चोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षे चान्नदो यथा ॥ एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्य वै मुनिः ॥२३॥ करेणैकेन शिश्नं च जिह्वां चैकेन वै हसन् ॥ प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिपुङ्गवः ॥२४॥ सभ्यास्तदा तमित्यूचुः किमेतदिति नारद ॥ प्रत्युवाच स तान् सर्वान्नृ-

करोड़गुना फल देता है ॥ २१ ॥ दया, पुण्य से हीन तथा दान और धर्म न करनेवाला दया दान न करके केवल हरि भगवान् का नाम उच्चारण करके ॥ २२ ॥ वह विष्णुलोक में जाता है, जिस प्रकार दुर्भिक्ष में अन्नदान देने से, ऐसी वार्तालाप के अन्त में नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे ॥ २३ ॥ एक हाथ से शिश्न तथा दूसरे से जिह्वा पकड़ कर हँसते हुए वह मुनि श्रेष्ठ

उन्मत्त की तरह नाचने लगे ॥ २४ ॥ तब सभ्य लोगों ने पूछा, हे नारद । यह क्या तब उस बुद्धिमान् ने हँसकर और नाच
कर सब से कहा ॥ २५ ॥ आप महानुभावों ने नाच कर सन्तोष के लिये जो कहा है उससे हम सिद्ध हो गये, यह पुण्य
कलियुग आ गया ॥ २६ ॥ यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह बहुत थोड़े में साध्य है क्योंकि क्लेशनाशक

त्यन्वै प्रहसन्सुधीः ॥२५॥ सन्तोषाद्यदिह प्रोक्तं नृत्यद्भिर्भावितात्मभिः ॥ सिद्धा वयं न सन्देहः
पुण्योऽयं कलिरागतः ॥२६॥ तत्सत्यं न च सन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते ॥ स्मरणात्तोषमायाति
केशवः क्लेशनाशनः ॥२७॥ तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटं च द्वयं ध्रुवम् ॥ शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा
जिह्वाया अपि नित्यशः ॥२८॥ द्वयं वशे भवेद्यस्य स एव स्याज्जनार्दनः ॥ भवद्भिर्नात्र स्थातव्यं
तस्मात् कलियुगागमे ॥२९॥ पाखण्डं भारतं हित्वा संचरध्वं यथासुखम् ॥ यत्र कुत्रापि देशेषु मनो
यत्र प्रसीदति ॥३०॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥ सत्रं समाप्य सहसा ययुस्ते च यथा-

केशव भगवान् स्मरणमात्र से इस युग में सन्तुष्ट होते हैं ॥ २७ ॥ तथापि तुम लोगों से कहता हूँ कि दोनों दुर्घट ही हैं, हे
पुत्र लोग ! शिश्न तथा जिह्वा दोनों का निग्रह अवश्य कठिन है ॥ २८ ॥ जिसके वश में ये दोनों हो जायँ वही जनार्दन
भगवान् के तुल्य हो जाय, अतएव कलियुग के आने पर आप लोगों को यहाँ न ठहरना चाहिये ॥ २९ ॥ इस पाखण्डी
भारत को छोड़ कर जिस किसी प्रदेश में चित्त प्रसन्न हो वहाँ सुखपूर्वक रहो ॥ ३० ॥ ऐसा उनका वचन सुनकर व्रतधारी

मुनि लोग यज्ञ को समाप्त करके एकाएक अन्यत्र चले गये ॥ ३१ ॥ धर्मवर्ण ने भी यह सुनकर पृथ्वी त्याग करना मन में निश्चय किया, इस तेजस्वी ने अच्छे व्रत धारण करके, दण्ड और कमण्डल धारण करके ॥ ३२ ॥ तथा जटा और वल्कल धारण करके, मन से आश्चर्य करता हुआ, कलियुग के दुराचार देखने के लिये चला ॥ ३३ ॥ वहाँ पर मनुष्यों को दुष्ट

गतम् ॥३१॥ धर्मवर्णोऽपि तच्छ्रुत्वा त्यक्तुं भूमिं मनो दधे ॥ सव्रतं चोर्ध्वतेजस्कं धृत्वा दण्डकमण्डलू ॥३२॥ जटावल्कलधारी च भूत्वा चैवं ययौ पुनः ॥ कलौ युगे त्वनाचारा द्रष्टुं विस्मितमानसः ॥३३॥ तत्रापश्यज्जनान् घोरान् पापाचाररतान् खलान् ॥ पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्रजिनस्तथा ॥३४॥ भर्तारं द्वेष्टि भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा ॥ भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधोद्यतः ॥३५॥ शूद्रप्राया द्विजा सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः॥ गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रियाः ॥३६॥ भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलदास्तत्र देवताः ॥ ता एव श्रद्धयार्चन्ति जनाः पाप-

घोर पाप करनेवाले, ब्राह्मणों को तथा शूद्र और संन्यासियों को पाखण्डी देखा ॥ ३४ । वहाँ स्त्री अपने पति से द्वेष करती थी, शिष्य गुरु से द्वेष करता था और नोकर मालिक की हत्या करनेवाला तथा पुत्र पिता के वध करने मे उद्यत था ॥ ३५ ॥ सब ब्राह्मण शूद्र तुल्य तथा गाय बकरी के तुल्य हो गई थी, वेद कहानियों के समान तथा शुभ क्रिया सामान्य क्रिया के समान हो गई थी ॥ ३६ ॥ वहाँ पर भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि फल देनेवाले देवता थे, दुष्ट पापी मनुष्य लोग

इन्हीं की पूजा करते थे ॥ ३७ ॥ सब लोग कुकर्मों में लगे रहते थे और इन्हीं में प्राण त्याजते थे, चित्त में कपट रखनेवाले मनुष्य सर्वदा झूठी गवाही देते थे ॥ ३८ ॥ कलियुग में सर्वदा मनुष्यों के मन में कुछ और, वाणी में कुछ और ही रहता था । सबकी नैमित्तिक विद्या राजभवन मे पूजी जाती है ॥ २९ ॥ राजाओं को गीत इत्यादि कला प्रिय था, कलियुग में नीच

रताः शठाः ॥३७॥ सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ कूटसाक्ष्यप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः ॥३८॥ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ ॥ सर्वेषां हैतुकी विद्या सा पूज्या नृपमन्दिरे ॥३९॥ गीताद्याश्च कलाविद्या नृपाणां च प्रियावहाः ॥ हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे ॥४०॥ श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राः स्युः कलौ युगे ॥ विष्णुभक्तिर्नराणां तु प्रायशो नैव वर्तते ॥४१॥ प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥ शूद्रा धर्मप्रवक्तारो जटिलास्तामसाः कलौ ॥४२॥ सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः ॥ सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वे च ग्रहणेच्छवः ॥४३॥ सुजनांश्चोपगच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः ॥ असूयानिरताः सर्वे

लोग पूजे जाते थे उत्तम नहीं ॥ ४० ॥ कलियुग में वेदपाठी सब ब्राह्मण दरिद्र हो गये, मनुष्यों में विष्णु भगवान् की शक्ति न रही ॥ ४१ ॥ पुण्य क्षेत्र प्रायः पाखण्डमय हो गये, शूद्र लोग धर्मों के उपदेशक हुए तथा कलियुग में तपस्वी लोग जटिल हो गये ॥ ४२ ॥ सब मनुष्य कम आयुष्य के हो गये. दयाहीन तथा दुष्ट हो गये, सभी धर्मों के उपदेशक तथा सभी प्रतिग्रह लेने की इच्छा करनेवाले हो गए ॥ ४३ ॥ लोग साधुओं के पास नहीं जाते, वृथा परनिन्दा में निरत रहते हैं, प्रभु के घर

चले जाने पर सब निन्दा में लगे रहते हैं ॥ ४४ ॥ इस कलियुग में भाई बहिन के साथ और पिता पुत्री के साथ संगम करते हैं, सब शूद्रिणी और वेश्याओं में निरत हैं ॥ ४५ ॥ साधुजनों को लोग नहीं मानते, बड़े पापियों का आदर करते, नीच लोग साधुओं के एक दोष को भी खोलते हैं ॥ ४६ ॥ पापियों के दोषों को गुण कह कर प्रशंसा करते हैं, कलियुग

गृहं याते परे प्रभौ ॥४४॥ भ्राता च भगिनीं गन्ता पिता पुत्रीं च वै कलौ ॥ सर्वेऽपि शूद्रीनि-रताः सर्वे वाराङ्गनारताः ॥४५॥ साधूंश्चैवावजानन्ति बहुपापांश्च मन्वते ॥ व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनां दोषमेकं दुराग्रहाः ॥४६॥ पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि ॥ दोषमेव प्रगृ-ह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः ॥४७॥ जलूकः स्तनसंयुक्तो रक्तं पिबति नो पयः ॥ रसाः स्वादुगुणान्हित्वा ऋतूनां व्यत्ययस्तथा ॥४८॥ दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या कालेन सूयते ॥ नट-नर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ ॥४९॥ वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः ॥ भृत्यान्प-

में मनुष्य लोभ के वश दोष का ही ग्रहण करते हैं ॥ ४७ ॥ जिस प्रकार स्वादिष्ट गुणवाले रसों को तथा दूध को छोड़कर स्तन में लगी जोंक केवल लोहू चूसती है ॥ ४८ ॥ सब राज्यों में दुर्भिक्ष है, बिना व्याही लड़की पुत्र उत्पन्न करती है, कलियुग में मनुष्य लोग नट और नाचने वालों की विद्या में प्रीति रखते हैं ॥ ४९ ॥ जो अधिक गुणी लोग वेद, वेदान्त

विद्या में निरत हैं उनको भ्रष्टाचारी मूढ़ लोग नौकर समझते हैं ॥ ५० ॥ सबने वेद और वेदविहित क्रियाओं को तथा श्राद्ध की क्रियाओं को छोड़ दिया है, कभी भी विष्णु भगवान् का नाम उनके जीभ पर नहीं आता ॥ ५१ ॥ शृङ्गार रस में लीन होकर वे इसी के गीत गाते हैं ॥ इनको देखकर धर्मवर्ण बड़ा भयभीत और विस्मित हुआ ॥ ५२ ॥ कलियुग में न

श्यन्ति तान्मूढ़ास्ते भ्रष्टाश्चाखिलाशिषः ॥ ५० ॥ त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः ॥ जिह्वायां विष्णुनामानि न वर्तन्ते कदाचन ॥ ५१ ॥ शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः ॥ ५२ ॥ न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न योगदीक्षा न विचारलेशः ॥ न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वापि बभूव चित्रम् ॥५३॥ तान्दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्तविस्मितः ॥ वंशं पापात्क्षयं यातं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ ॥ सञ्चरन् सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेव तु सर्वशः ॥५४॥ पितृलोकं ययौ धीमान् कदाचित्कौतुकान्वितः ॥ तत्रापश्यन्महाघोरान् भ्राम्यमाणांश्च कर्मभिः

तो विष्णु भगवान् की सेवा, न शास्त्रों की वार्ता, न यज्ञों की दीक्षा, न विचार का लेश, न तीर्थयात्रा, और न धर्म और न दान कहीं पर थे–यह देख वह चकित हुआ ॥ ५३ ॥ पाप से वंश का क्षय हुआ देख वह दूसरे द्वीप में गया, वहाँ पर सब द्वीपों में सब कुछ करके ॥ ५४ ॥ वह बुद्धिमान् आश्चर्ययुक्त होकर पितृलोक में गया, वहाँ पर महाघोर कर्मों को

करते हुए, तथा उनको घूमते हुए देखा ॥ ५५ ॥ दौड़ते हुए, रोते हुए, पापियों को गिरते हुए, अपने पितरों को अन्ध कूप में गिरे हुए देखा ॥ ५६ ॥ कुछ बिचारे दूब के अग्रभाग के सहारे पर थे, कुछ दूब के कटने पर दुखी थे, उनके आश्रय दूब की जड़ को चूहे खा रहे थे ॥ ५७ ॥ इनके तीन भाग वे खा गये हैं, एक भाग बच गया है, इस क्षय को प्राप्त होते

॥५५॥ धावतो रोदमानांश्च पततः पातितानपि ॥ तत्रापश्यच्चान्धकूपे पतितान् स्वान् पितॄनथ

॥५६॥ दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान् दूर्वाच्छेदे हि कर्शितान् ॥ तत्राखुः खादयत्यद्धा दूर्वामूलं तदाश्रयम्

॥५७॥ तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः ॥ तं दृष्ट्वा ते क्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्शिताः

॥५८॥ अधो दृष्ट्वा चान्धकूपं तटपातादिभीषणम् ॥ दुरुत्तरं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः

॥५९॥ अग्रे चापि दुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम् ॥ तान् दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा दयालुर्वाक्यमब्रवीत्

॥६०॥ के यूयं पतिता ह्यस्मिन् केन दुस्तरकर्मणा ॥ कस्य गोत्रे समुत्पन्नाः कथं वै मुक्तिमाप्स्यथ

हुए जड़ को देखकर वे दुःख से पीड़ित थे ॥ ५८ ॥ नीचे अन्ध कूप में किनारों के गिरने के भय से त्रस्त इनको देखा, यह महा भयङ्कर और दुस्तर था, वे अपने कर्मों से पीड़ित होकर बड़े दुःख में थे । ५९ ॥ आगे दुस्तर आधार रहित स्थान था, इनको देख कर आश्चर्ययुक्त इस दयालु ने कहा ॥ ६० ॥ आप लोग कौन हैं और किस दुस्तर कर्म से इसमें गिरे हैं,

किसे गोत्र में आप उत्पन्न हुए हैं और आप लोगों की मुक्ति किस प्रकार से होगी ॥ ६१ ॥ मुझसे यह सब कहिये, आजही
आप लोगों का कल्याण होगा, उसके ऐसा कहने पर पितर लोग अति दुखी होकर ॥ ६२ ॥ करुणामय वाणी से धर्म
और श्रुति को आगे करके कहने लगे। पितरों ने कहा—हम लोग श्रीवत्स के गोत्र के हैं, संसार में हम लोग सन्तान हीन

॥६१॥ एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽद्य भविष्यति ॥ इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथ सुदुःखिताः
॥६२॥ तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि
सन्तानवर्जिताः ॥६३॥ पिण्डे श्राद्धविहीनाश्च तेन पच्यामहे वयम् ॥ निःसन्तानोऽपि नो वंशो
जातः पापैः कलौ युगे ॥ ६४ ॥ नास्माकं पिण्डदश्चास्ति वंशे पापात्क्षयं गते ॥ तेनान्धकूपे
पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम् ॥६५॥ एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः ॥ स विरक्तश्चर-
न्लोकान्न गार्हस्थ्यमुपेयिवान् ॥६६॥ तन्तुना तेन बभ्रामो दूर्वानालावलम्बिनः ॥ निस्तम्बत्वाच्च

थे ॥ ६३ ॥ हम लोग पिण्डा तथा श्राद्ध से हीन हैं अतएव ये दुःख भोगते हैं, कलियुग में पापों के कारण हम लोगों का
वंश बिना सन्तान का हुआ ॥ ६४ ॥ पाप से वंश क्षय हो जाने के कारण हम लोगों को कोई पिण्डदान नहीं करता,
इसी कारण से निराधार हम दुरात्मा लोग अन्धे कुँवे में पड़े हैं ॥ ६५ ॥ वंश में केवल एकही महा यशस्वी धर्मवर्ण है,
वह संसार में वैरागी रहता हुआ गार्हस्थ्य धर्म का पालन नहीं करता ॥ ६६ ॥ दूब की डंडी का आश्रय किये हुए हम

लोग उसी तन्तु के सहारे हैं, आधार हीन होने के कारण उसकी जड़ को चूहा प्रतिदिन खाता है ॥ ६७ ॥ एक ही के बच जाने पर, थोड़ी सी जड़ बच गई है, उसको भी हे सोम्य! देखो चूहा खा रहा है ॥ ६८ । हे तात! उसकी आयुष्य बीत जाने पर बचे हुए मूल को भी चूहा खा जायगा, तब हम लोग दुस्तर अन्धकारमय कूप में गिर जावेंगे ॥ ६९ ॥

तन्मूलमाखुः खादति प्रत्यहम् ॥६७॥ एकस्यैवावशिष्टत्वात् किञ्चिन्मूलावशेषितः ॥ आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य पश्यताम् ॥६८॥ तस्य चायुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति ॥ पश्चात्कूपे पतिष्यामो दुरुत्तारेऽन्धतामसे ॥६९॥ तस्मात्त्वं च भुवं गत्वा धर्मवर्णं प्रबोधय ॥ अस्मद्वाक्यैर्दया-पात्रैर्गार्हस्थ्ये विमुखं मुनिम् ॥७०॥ पितरस्ते भृशार्ता हि नरके पतिता मया ॥ अन्धकूपे दुरुत्तारे दृष्टा दूर्वावलम्बिनः ॥७१॥ सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सन्ततिर्मुने ॥ कालाख्यो मूषकस्तस्य मूलं खादति प्रत्यहम् ॥७२॥ वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं चावशेषितः ॥ तेन मूलस्थ दूर्वाया नष्टं

इसलिये तुम पृथ्वी पर जाकर धर्मवर्ण को समझाओ और गृहस्थाश्रम से विमुख इसी मुनि को हम लोगों के दीन वाक्य कहो ॥ ७० ॥ कि तुम्हारे दुःख से पीड़ित पितर लोग नरक में पड़े हैं और मैंने इनको दूब के सहारे दुस्तर अन्ध कूप में लटकते हुए देखा है ॥ ७१ ॥ हे मुनि। वह दूब वंशरूप है और उसकी जड़ सन्तति है, काल नाम का चूहा प्रतिदिन उसकी जड़ को काटता है ॥ ७२ ॥ क्रम से सब वंश का नाश हो गया है, एक तूही बच गया है, इसलिये हे मुनि! दूब

के जड़ का तीन भाग नष्ट हो गया है ॥ ७३ ॥ संसार में तू है इसलिये एक भाग बच गया है, इसको भी चूहा थोड़ा थोड़ा खा रहा है, तेरी आयुष्य क्रम से क्षय हो रही है ॥ ७४ ॥ इसके बाद सन्तान के क्षय हो जाने पर हम लोग और तुम भी अन्ध कूप में गिरोगे ॥ ७५ ॥ इसलिये गार्हस्थ्य आश्रम धारण करके सन्तति को बढ़ती करो, इससे हम लोगो की

भागत्रयं मुने ॥७३॥ एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि ॥ किञ्चित्खादति वै त्वाखुस्तव चायुःक्षयः क्रमात् ॥७४॥ परेते त्वयि चास्माकं तवापि पतनं भवेत् ॥ कूप एवान्धतामिस्रे सन्तानेऽपि क्षयं गते ॥७५॥ तस्माद्गार्हस्थ्यमास्थाय कुरु सन्ततिवर्द्धनम् ॥ तेनास्माकं तवापि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः ॥ ७६ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ७७ ॥ यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्तिकेऽपि वा ॥ अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति ॥७८॥ तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः ॥

और तुम्हारी भी निस्सन्देह उर्ध्वगति होगी ॥ ७६ ॥ अनेक पुत्रों की इच्छा करना चाहिये, यदि एक भी गया जावेगा अश्वमेध करेगा अथवा नीला बैल छोड़ेगा ॥ ७७ ॥ यदि एक भी वैशाख मास में अथवा कार्तिक मास में हम लोगों के उद्देश्य से स्नान, दान अथवा श्राद्ध करेगा ॥ ७८ ॥ तो उससे हम लोगों का नरक से उद्धार होगा और हम लोगों को

उर्ध्वगति होगी, एक भी विष्णु भगवान् का भक्त होगा अथवा एक भी एकादशी का व्रत करेगा ॥ ७६ ॥ अथवा एक भी पाप नाश करने वाली विष्णु भगवान् की कथा सुनेगा तो उसके पीछे के सौ कुल तथा होने वाले सौ कुल ॥ ८० ॥ पापों से मुक्त होकर नरक को न देखेंगे, दया तथा धर्म त्याग किये हुए अनेक पुत्रों से क्या लाभ ॥ ८१ ॥

एको वा विष्णुभक्तः स्यादेको वा हरिवासरा ॥७६॥ एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम् ॥ तस्यातीतं कुलशतं भावि चापि कुलं शतम् ॥८०॥ अपि पापसमावृत्तं नरकं नैव पश्यति ॥ किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः ॥८१॥ ये जाता नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले ॥ नापुत्रस्य हि लोकोऽस्ति सर्वमेतज्जना विदुः ॥८२॥ तत्रापि च दयायुक्तं तत्सन्तानं च दुर्लभम् ॥ इति तं बोधयित्वा तु वाक्यैरेतैश्च सूनृतैः ॥८३॥ विरक्तश्चोर्ध्वरेताश्च गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु ॥ पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मितः ॥८४॥ प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राह रुदन्वै

जो कुल में उत्पन्न होकर श्रद्धापूर्वक विष्णु नारायण का पूजन नहीं करते, पुत्र के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं है— इसको सब लोग जानते हैं ॥ ८२ ॥ इनमें भी दयावान् सन्तान होना बड़ा दुर्लभ होता है, इस प्रकार सच्चे वाक्यों से उसको समझाकर ॥ ८३ ॥ उदासीन, उर्ध्वरेता उसकी बुद्धि गार्हस्थ्य आश्रम में लगाओ, पितरों का वचन सुन धर्मवर्णा

बड़ा चकित हुआ ॥ ८४ ॥ उसने रोते हुए और काँपते हुए उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और कहा मैं बड़ा दुष्ट हूँ, मेरा ही नाम धर्मवर्ण है, मैं आप लोगों के कुल का हूँ ॥ ८५ ॥ यज्ञ में महात्मा नारदजी का वचन सुनकर कलियुग में किसी को भी जीभ और गुह्यस्थान पर अधिकार न रहेगा ॥ ८६ ॥ संसार में इन पापीजनों को देखकर शङ्का से तथा दुष्टों की संगति से भयभीत होकर मैं दूसरे द्वीप में रहता था ॥ ८७ ॥ हे मेरे जनक लोग ! इस कलियुग के तीन पाद

जातवेपथुः ॥ नाम्नाऽहं धर्मवर्णेश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही ॥८५॥ सत्रे श्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ॥ जिह्वादाढ्यं गुह्यदाढ्यं न कस्यापि कलाविति ॥८६॥ दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठां-स्तान् जनानभिशङ्कितः ॥ भीतो दुर्जनसंगत्या चरन् द्वीपान्तरे वसन् ॥८७॥ पादास्त्रयो गता ह्यस्य कलेः पादेऽन्तिमेऽपि च ॥ गताः सार्द्धत्रयो भागा इदानीं जनका इमे ॥८८॥ नाहं वेद्मि भवद्दुःखं वृथा जन्मगतं मम ॥ यस्मिन् कुले त्वहं जात ऋणं पित्रोर्न वै हृतम् ॥८९॥ किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा ॥ यो जातो नार्चयेद्विष्णुं पितॄन् देवानृषींस्तथा ॥९०॥

व्यतीत हो गये और अन्तिम पाद में भी साढ़े तीन भाग बीत गये ॥ ८८ ॥ मैंने आप लोगों के दुःख नहीं जाना, मेरा जन्म वृथा हुआ, जिस कुल में मैं उत्पन्न हुआ उस कुल के पितरों का ऋण मैंने नहीं चुकाया ॥ ८९ ॥ पृथ्वी के भारमात्र. अन्न के शत्रु मेरे जन्म लेने से क्या हुआ जो मैंने—उत्पन्न होकर विष्णु भगवान् का तथा पितरों का, देवताओं और ऋषियों

का पूजन नहीं किया ॥ ९० ॥ आप लोगों की आज्ञा मैं करूँगा, परन्तु ऐसी आज्ञा दीजिये कि संसार में रहने पर भी मुझे कलियुग के विघ्न न हों ॥ ९१ ॥ और मैं आप लोगो का पुत्र अपने कर्तव्यों को करूँ; उनके वंश के बुद्धिमान् धर्मवर्ण के ऐसा कहने पर ॥ ९२ ॥ हे राजेन्द्र ! मन में कुछ सन्तोष करके उन्होंने कहा—हे पुत्र ! अपने महात्मा पितरों की यह दशा देख ॥ ९३ ॥ सन्तति के अभाव से हम लोग केवल दूब के सहारे पड़े हैं, तुम गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश होकर

युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामज्ञापयत क्षितौ ॥ यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा ॥९१॥

कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले ॥ इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता ॥९२॥

किञ्चिदाश्वस्तमनसं इदमूचुर्महीपते ॥ पुत्र पश्य दशामेतां पितॄणां ते महात्मनाम् ॥९३॥

संतत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम् ॥ त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य संतत्यास्मान् समुद्धर ॥९४॥

ये च विष्णुकथासक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम् ॥ ये सदाचारनिरता न तान्वै बाधते कलिः ॥९५॥

शालिग्रामशिला यस्य गृहे तिष्ठति मानद ॥ अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः ॥९६॥

हम लोगों का उद्धार करो ॥ ९४ ॥ जो लोग विष्णु भगवान् की कथा में तत्पर रहते हैं, जो रात दिन हरि भगवान् को याद करते हैं, जो लोग सदाचार में लगे रहते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं करता ॥ ९५ ॥ हे सम्मान देनेवाले ! जिसके घर में शालिग्राम शिला रहती है अथवा जिसके घर मे महाभारत ग्रन्थ रहता है उसको कलियुग बाधा नहीं करता ॥९६॥

जिसके पेट में विष्णु भगवान् का नैवेद्य किया हुआ अन्न रहता है, अथवा कान पर तुलसी पत्र रहता है उसको कलियुग बाधा नहीं करता ॥ ९७ ॥ जिसके हाथ में तुलसी की माला रहती है, जिसके हाथ में पवित्री रहती है, तथा जिसकी जीभपर हरिभगवान् का नाम रहता है, उसको कलियुग बाधा नहीं करता ॥ ९८ ॥ जो वैशाख मास के धर्म मे लीन रहता है तथा माघ मास में स्नान करता है, कार्तिक मास में जो दीप दान करता है, उसको कलियुग बाधा नहीं

विष्णोर्निवेदितान्नं च वर्तते यस्य चोदरे ॥ कर्णे वा तुलसीपत्रं न तं वै बाधते कलिः ॥९७॥
यत्करे तुलसीमाला यद्धस्ते च पवित्रकम् ॥ यज्जिह्वायां हरेर्नाम न तं वै बाधते कलिः ॥९८॥
यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः ॥ कार्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः ॥९९॥
प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः ॥ पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः ॥१००॥
यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा ॥ यस्याङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः ॥ १ ॥
तस्माच्चैव च पुत्र त्वं युगे पापात्मकेऽपि च ॥ शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र मासोऽयं माधवाह्वयः ॥ २ ॥

करता ॥ ९९ ॥ जो प्रतिदिन पाप हरनेवाली, मोक्ष देनेवाली महात्मा विष्णु भगवान् की दिव्य कथा सुनता है उसको कलियुग बाधा नहीं करता ॥ १०० ॥ जिसके घर में वैश्वदेव होता है, जिसके घर में शुभ तुलसी रहती है, जिसके आँगन में शुभ गाय रहती है, उसको कलियुग बाधा नहीं करता ॥ १ ॥ इसलिये हे पुत्र ! तू पापात्मक युग में भी शीघ्र पृथ्वी

पर जो, यह माधव नाम का महीना है ॥ २ ॥ सूर्य के मेष राशि में रहते हुए सब लोगों के उपकार के लिये इस मास में तीसों तिथियाँ पुण्यदायक हैं ॥ ३ ॥ एक एक तिथि में किये हुए पुण्य का करोड़ों गुना फल होता है, इनमें भी चैत्र मास की अमावस्या मनुष्यों को मुक्ति देती है ॥ ४ ॥ यह देवताओं को प्रिय है और तुरत मुक्ति देनेवाली है जो लोग पितरों को उद्देश्य करके उस दिन श्राद्ध करते हैं ॥ ५ ॥ जल भरा घड़ा तथा पिण्डदान करते हैं उनको क्षय होने वाला फल

सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे ॥ त्रिंशच्च तिथयः पुण्या महापुण्यप्रदायकाः ॥ ३ ॥
एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ तत्रापि चैत्रबहुलो दर्शो नृणां च मुक्तिदः ॥ ४ ॥
प्रियश्च सोऽपि देवानां सद्यो मुक्तिविधायकः ॥ ये वै पितृन् समुद्दिश्य श्राद्धं कुर्वन्ति तद्दिने ॥ ५ ॥
सोदकुम्भं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत ॥ ६ ॥
तैः कृता तु गयाक्षेत्रे श्राद्धकोटिर्न संशयः ॥ यदि चाद्धा मधौ दर्शे शाककेनापि च श्राद्धकृत् ॥ ७ ॥
कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः ॥ कुम्भं च पानकैः पूर्णं कर्पूरागुरुवासितम् ॥ ८ ॥

होता है, जो लोग अमावस्या के दिन श्राद्ध करते है ॥ ६ ॥ उनका गयाक्षेत्र मे किया हुआ करोड़ो श्राद्ध होता है, इसमे कोई सन्देह नहीं है। यदि मधुमास को अमावस्या के दिन श्रद्धापूर्वक शाक मे भी श्राद्ध किया जावे ॥ ७ ॥ तो गयाजी मे करोड़ श्राद्ध करने का फल होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, कपूर और अगरू से सुवासित शर्बत से भरा हुआ घड़ा ॥ ८ ॥

जो मधुमास की अमावास्या को दान नहीं देता वह निःसन्देह पितृघाती होता है, जो मधुमास की अमावस्या के दिन जल से भरी ककड़ी दान देता है ॥ ९ ॥ तथा कुल के हित के लिये भक्ति पूर्वक श्राद्ध करता है तो पितर लोक में अमृत बरसाने वाली नदी बहाती है ॥ १० ॥ कुम्भ दान से तथा श्राद्ध दान से यह निश्चय करके अन्न, कढ़ी, घी, मालपुवा, चटनी, खीर इत्यादि बहाती हे ॥ ११ ॥ अतएव तू जल्दी से अमावस्या के पहिले चला जा, हे महापति ! श्राद्ध, पिण्ड दान तथा जल से

यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः ॥ यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम् ॥ ९ ॥
श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम् ॥ पितृणां च तदा लोके नदी चामृतवर्षिणी ॥१०॥
कुम्भदानात्प्रस्रवति श्राद्धदानाद्ध्रुवा इमे ॥ अन्नसूपघृतापूपलेह्यपायसकर्दमान् ॥११॥ तस्मा-
ज्झटिति त्वं गच्छ यदा चामा भविष्यति ॥ कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते ॥१२॥
सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय ॥ धर्मार्थकामैः संतुष्टः प्राप्य सन्तानमुत्तमम् ॥१३॥
पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपेषु सञ्चर ॥ इत्यादिष्टः पितृभिश्च तूर्णं भूमिं ययौ मुनिः ॥१४॥
चैत्रे मासे मेषसंस्थे पुण्ये तस्मिन् दिवाकरे ॥ प्रातः स्नात्वा च संतर्प्य पितॄन् देवानृषींस्तथा

भरा घड़ा दान दे ॥ १२ ॥ सबके उपकार के लिये गृहस्थाश्रम धारण कर, और धर्म, अर्थ काम से सन्तुष्ट होकर उत्तम सन्तान को प्राप्त कर ॥ १३ ॥ फिर मुनि के आचरण से सुख से द्वीपों में भलीभाँति घूम; इस प्रकार पितरों से आज्ञा पाकर वह मुनि शीघ्र ही पृथ्वी पर गया ॥ १४ ॥ पुण्य चैत्र मास में सूर्य के मेषराशि में रहने पर प्रातःकाल स्नान करके पितरों, देवता

और ऋषियों को तर्पण करके ॥ १५ ॥ उसने पाप को नाश करनेवाला श्राद्ध किया तथा जल से भरा घड़ा दान दिया, इस दान से पितर लोगों की मुक्ति हो गई ॥ १६ ॥ स्वयं विवाह करके उसने सुन्दर सन्तति प्राप्त किया और लोक में इस पाप नाश करनेवाली तिथि को प्रसिद्ध किया ॥ १७ ॥ फिर स्वयं मुनि होकर गन्धमादन वन में गया, इसीसे यह मधुमास

॥१५॥ सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम् ॥ तेन दत्त्वा पितॄणां च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम् ॥१६॥ स्वयं विवाहमकरोत्सन्ततिं प्राप्य वै सतीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास तां तिथिं पापनाशिनीम् ॥१७॥ स्वयं पुनर्मुनिर्भूत्वा गन्धमादनमाययौ ॥ तस्मात्पुण्यतमश्चैव मधोर्दर्शः शुभावहः ॥ नानेन सदृशी लोके तिथिर्दृष्टा श्रुताऽपि वा ॥१८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे कलिधर्मनिरूपणे धर्मवर्णपितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

की अमावास्या, अति शुभ करनेवाली और अति पुण्य हुई, इसके समान लोक मे दूसरी कोई तिथि न देखी गई, न सुनी गई ॥ १८ ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में कलिधर्म निरूपण, धर्मवर्ण पितृमुक्ति नाम का बाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥



श्रुतदेवजी ने कहा—अब मैं पाप नाश करनेवाले इस माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, वैशाख महीने के शुक्लपक्ष में
अक्षयतृतीया के दिन ॥ १ ॥ जो लोग प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले स्नान करते हैं वे सब लोग पापों से मुक्त होकर विष्णु
भगवान् के परम पद को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जो देवता, पितर तथा मुनि के उद्देश्य से तर्पण करता है उसने सब शास्त्र पढ़

श्रुतदेव उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि महात्म्यं पापनाशनम् ॥ अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे
च माधवे ॥ १ ॥ ये कुर्वन्ति च तस्यां वै प्रातःस्नानं भगोदये ॥ ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः यान्ति
विष्णोः परं पदम् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन् मुनीन्यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तेनाधीतं च तेनेष्टं
तेन श्राद्धशतं कृतम् ॥३ ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्ति ये नराः ॥ अक्षय्यायां तृतीयायां
ते नरा मुक्तिभागिनः ॥ ४ ॥ ये दानं तत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम् ॥ तदक्षय्यं फलत्येव
मधुसूदनशासनात् ॥५॥ देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा शुभावहा ॥ त्रयाणां तृप्तिदात्री च कृते धर्मे

लिया, सब यज्ञ कर लिया तथा सौ श्राद्ध कर लिया ॥ ३ ॥ जो मनुष्य अक्षय तृतीया के दिन मधुसूदन भगवान् की पूजा
करते तथा कथा सुनते हैं वे मुक्ति के भागी होते हैं ॥ ४ ॥ जो लोग उस तिथि को मधुसूदन भगवान् की प्रीति के लिये
शुभ दान करते हैं उनको मधुसूदन भगवान् की आज्ञा से अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ यह तिथि देवता, ऋषि तथा

पितरों को शुभ देनेवाली है, सनातन धर्म करने पर यह तीनों को तृप्ति देनेवाली होती है ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र! किसने इस तिथि की प्रसिद्धि किया सो मैं कहता हूँ, सावधान चित्त होकर सुनो ॥ ७ ॥ प्राचीन काल में इन्द्र का बलि के साथ युद्ध हुआ था सब देवता और दैत्यों का परस्पर द्वन्द्व युद्ध हुआ ॥ ८ ॥ इन्द्र पाताल के तल में रहनेवाले उस दैत्य बलि को जीत कर फिर पृथ्वी पर आकर उतथ्य मुनि के आश्रम में गये ॥ ९ ॥ वहाँ पर उन्होंने मन्दगामिनी गुर्विणी नाम की

सनातने ॥६॥ प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन चासीत्तदप्यहम् ॥ वक्ष्यामि नृपशार्दूल सावधानमनाः शृणु ॥७॥ पुरा पुरन्दरस्यासीद्युद्धं च बलिना सह ॥ देवानां चैव दैत्यानां द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा ॥ ८ ॥ स निर्जित्य बलिं दैत्यं पातालतलवासिनम् ॥ पुनर्भुवं समासाद्य चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥९॥ तत्रापश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणीं मन्दगामिनीम् ॥ चलच्छ्रोणितटाबद्धरत्नकाञ्चीं सुमध्यमाम् ॥ १० ॥ क्वणत्कङ्कणनिक्वाणजितमत्तालिकोकिलाम् ॥ वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचं शुचिस्मिताम् ॥११॥ लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम् ॥ लसत्पद्ममुखां दिव्यां

उसकी भार्या को देखा, उस सुन्दरी के कमर पर रत्नों से जड़ी हुई सोने की करधनी शोभायमान थी ॥ १० ॥ उसके घुँघुरू के शब्द ने मद से उन्मत्त भौंरे तथा कोयलों के शब्द को जीत लिया था, वह अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण किये हुए मीठी बोली से तथा मन्द मुसुकान से शोभायमान थी ॥ ११ ॥ उसके ऊँचे स्तन तथा कुम्भस्थल अपूर्व शोभा दे रहे

थे, उसका मुख फूले हुए कमल के समान था तथा उसके नेत्र नील कमल के समान थे ॥ १२ ॥ उसके सुन्दर गाल
केतकी के उदर के समान पीले थे, वह आँखों को नीचे किये हुए परिश्रम से साँस लेती हुई पर्णशाला की ओर मुख किये
हुए बैठी थी ॥ १३ ॥ उसको चारपाई पर सोई हुई देख कर इन्द्र मोहित हो गया और उसने बलात्कार से गुर्विणी से

नीलोत्पलसुलोचनाम् ॥१२॥ केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्यां च मनोरमाम् ॥ श्रमोच्छ्वसन्तीं
दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम् ॥१३॥ स्वपतीं शयने क्वापि दृष्ट्वा तां मोहमागतः ॥
बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः ॥१४॥ गर्भस्थस्तु तदा पिण्डः स्वस्य पातविशङ्कया ॥
छादयामास वै योनेर्द्वारं पादेन दुःखितः ॥१५॥ ततश्चस्कन्द वीर्यं तद्भूमावेव बलद्विपः ॥
गर्भस्थाम चुकोपासौ भगवान् पाकशासनः ॥१६॥ तं शशाप च गर्भस्थं रुषा ताम्रान्तलोचनः ॥
जात्यन्धो भव दुर्बुद्धे माऽवमंस्था यतः पदा ॥१७॥ प्रच्छाद्य योनिद्वारं च ततो दीर्घतमाह्वयः ॥

उपभोग किया ॥ १४ ॥ तब गर्भस्थित पिण्ड ने अपने गिरने की शङ्का से दुखी होकर पैर से योनि के द्वार को ढाँप लिया
॥ १५ ॥ इन्द्र का वीर्य पृथ्वी पर ही गिर गया, इन्द्र भगवान् ने इस गर्भस्थ पर क्रोध किया ॥ १६ ॥ आँख लाल
कर क्रोध से उस गर्भस्थ को शाप दिया, हे दुर्बुद्धि ! तूने पैर से रोका है इसलिये तू जन्म से अन्धा होगा ॥ १७ ॥ तब

योनि द्वार को पोंछकर पैर पर से बह कर आये हुए वीर्य से दीर्घतम नाम का जयन्त उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ तब ऋषि के शाप के भय से इन्द्र भागा, हरि को भागते हुए देख कर उसके शिष्य हँसने लगे ॥ १९ ॥ तब लज्जित होकर वह मेरु पर्वत की गुफा में घुस गया, और वहाँ पर लीन होकर दुस्तर बड़ा तप करने लगा ॥ २० ॥ जब इन्द्र लज्जा के मारे मेरु

पदात्प्रस्कन्दिताद्वीर्याज्जयन्तः समजायत ॥१८॥ पश्चादिन्द्रो ययौ शीघ्रमृषेः शापविशङ्कितः ॥
पलायन्तं हरिं दृष्ट्वा जहसुर्वटवोऽखिलाः ॥१९॥ ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्महागुहाम् ॥
तत्र लीनश्चचारासौ दुस्तरं वै तपो महत् ॥२०॥ मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयान्विते ॥
गूढैर्विज्ञाय तां वार्तां दैतेया बलिपूर्वकाः ॥२१॥ स्वर्गमाक्रम्य बुभुजर्देवेन्द्रस्यामरावतीम् ॥
दिक्पालानां विभूतीश्च शम्बराद्या बलीयसः ॥२२॥ बलाद् बुभुजिरे हीननाथं राष्ट्रे दिवौकसाम् ॥
रक्षितारमजानन्तो देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥२३॥ पप्रच्छुर्धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम् ॥

पर्वत पर छिपा था, तब दैत्यों सहित बलि ने यह बात भेदियों से पता लगा कर ॥ २१ ॥ स्वर्ग को आक्रमण कर देवेन्द्र की अमरावती का भोग करने लगा, उस बलि ने शम्बर आदि दिक्पालों का ऐश्वर्य ॥ २२ ॥ बल से भोगा, स्वर्ग का राज्य विना स्वामी का होने से अग्नि इत्यादि देवताओं ने इन्द्र का पता न पाकर ॥ २३ ॥ पापरहित देवाचार्य बृहस्पति

से यह वृत्तान्त पूछा कि प्रभु इन्द्र कहाँ हैं ॥ २४ ॥ दैत्यों से आक्रमण किया हुआ स्वर्ग का राज्य बिना स्वामी का हो गया है, उसको गये हुए बहुत काल हुआ वह देव क्यों नहीं आता ॥ २५ ॥ हे बृहस्पति ! हम लोग प्रार्थना करें और उसके पास जाँय, इस प्रकार पूछने पर बृहस्पति ने देवताओं से कहा ॥ २६ ॥ रसातल मे बलि को जीत कर वह उतथ्य जी

पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं क्व च तिष्ठति नः प्रभुः ॥२४॥ दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम् ॥ कुतो नायाति देवोऽसौ भूयान्कालो गतो विभो ॥२५॥ तं यामो यत्र धिषणः प्रार्थयामश्च तं विभुम् ॥ इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाच ह ॥२६॥ रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याश्रमं ययौ ॥ भुक्त्वा पत्नीं च धाष्टर्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः ॥२७॥ व्रीडितस्तु दिवं यातुं गुहां मेरोर्विवेश ह ॥ तत्रैवास्ते शचीयुक्तः स्वकृतं चिन्तयन्विभुः ॥२८॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः ॥ गुहां मेरोर्ययुः शीघ्रं दृष्ट्वा प्रार्थयितुं विभुम् ॥ २९ ॥ तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं

के आश्रम में गया, धृष्टता से उसने उस ऋषि की पत्नी से उपभोग किया और उसकी शिष्यों से निन्दा किया गया ॥ २७ ॥ लज्जा के मारे स्वर्ग में न जाकर वह मेरु पर्वत में घुस गया, अपनी करनो पर चिन्ता करता हुआ वह इन्द्राणी के साथ वहीं पर हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार से अग्नि इत्यादि देवता लोग उनके इस वाक्य को सुन कर मेरु पर्वत की गुफा में उनकी

प्रार्थना करने के लिये शीघ्र गये ॥ २९ ॥ पाकशासन दवेन्द्र को वहाँ गुफा में छिपा देख कर लोक प्रसिद्ध पराक्रमी अनेक स्तुतियों से उसको सन्तुष्ट किया ॥ ३० ॥ हे इन्द्र ! हे देवों के राजा ! तुमको नमस्कार, हम लोग आपके बिना दैत्यों से बड़ी पीड़ा दिये जाते हैं ॥ ३१ ॥ हे अङ्ग ! स्थानभ्रष्ट होकर हम लोग दुखी होकर भिन्न भिन्न देशों में घूमते हैं, अतएव

देवेन्द्रं पाकशासनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः ॥३०॥ इन्द्र तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाधिपाय ते ॥ वयं दैत्यैरर्दिताश्च त्वया हीना भृशार्दितः ॥ ३१ ॥ स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः ॥ तस्मादागत्य देवेन्द्र जहि शत्रूनरिन्दम ॥३२॥ इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ लज्जयाऽवनतो भूत्वा पश्यन् भूमिं च चक्षुषा ॥३३॥ न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः ॥ तज्ज्ञात्वा धिषणः प्राह तं सुरेन्द्रं भयानतम् ॥३४॥ मा शङ्का ते सुरपते कर्माधीनमिदं जगत् ॥ मानामानौ सुखं दुःखं लाभालाभौ जयाजयौ ॥३५॥

हे देवेन्द्र ! हे शत्रुओं के दमन करनेवाले ! शत्रुओं को जीतो ॥ ३२ ॥ इस प्रकार देवताओं से स्तुति किये जाने पर इन्द्र गुफा के मुख से निकले, लज्जा से मुख नीचा किये हुए नेत्रों से भूमि देखने लगे ॥ ३३ ॥ दुःख के मारे गद्गद होकर कुछ न बोले, यह जान कर बृहस्पति ने भय से नीचे मुख किये हुए सुरेन्द्र से कहा ॥ ३४ ॥ हे सुरपति ! तू शङ्का मत कर, यह

संसार कर्म के आधीन है, मान–अपमान, सुख–दुःख, लाभ–हानि, जीत–हार ॥ ३५ ॥ ये सब निस्सन्देह पूर्व कर्म के
अनुसार होते हैं, जीव कर्म के पीछे पीछे चलता है, दुःख समय के अनुसार भाग्य से होता है ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् लोग दुःख
प्राप्त करने पर शोच नहीं करते तथा सुख पाने पर प्रसन्न भी नहीं होते अतएव हे प्रभु ! प्रारब्ध से ही यह दुःख तुमको

पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येते न संशयः ॥ जीवः कर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः ॥३६॥ प्राज्ञाः
प्राप्य न शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति वै सुखात् ॥ तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो ॥३७॥ तत्प्राप्य
मघवन् दुःखं नैव शोचितुमर्हसि ॥ इत्युक्तो गुरुणा चाह मघवानमराधिपान् ॥३८॥ इन्द्र उवाच ॥
परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यंयशोऽमलम् ॥ मन्त्रशक्तिशस्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्च मे हृता ॥३९॥
अभवं नष्टवीर्योऽद्य तूष्णीं तेन वसाम्यहम् ॥ पाकशासनवाक्यात्तु श्रुत्वा स्वाचार्यसंयुताः ॥४०॥
मन्त्रयामासुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये ॥ तदा गुरुश्च तान् प्राह करुणं च विदुत्तमः ॥४१॥

प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! इसलिये दुःख प्राप्त करके तुमको शोच न करना चाहिये, गुरु बृहस्पति के ऐसा कहने पर
इन्द्र ने देवताओं से कहा ॥ ३८ ॥ इन्द्र ने कहा—परस्त्रीगमन के दोष से बल, तेज, विमल, यश, मन्त्रों की शक्ति, शस्त्रों,
की शक्ति, विद्या की शक्ति सभी मेरी नष्ट हो गई ॥ ३९ ॥ हततेज होकर आज मैं इसीसे चुप बैठा हूँ, सुरपति के इस
वाक्य को सुनकर देवता लोग आचार्य बृहस्पति से ॥ ४० ॥ एकान्त में फिर से उसके बल की प्राप्ति के विषय में विचार

करने लगे, तब अतिपण्डित गुरुजी ने उनसे करुणायुक्त होकर कहा ॥ ४१ ॥ बृहस्पतिजी ने कहा—यह वैशाख महीना है जो माधव भगवान् को प्रिय है, इस महीने की सभी तिथियाँ माधव भगवान् को प्रिय हैं ॥ ४२ ॥ इसमें शुक्ल पक्ष की तृतीया अक्षया कहलाती है, इस दिन जो कोई स्नान, दान, श्राद्ध इत्यादि करता है ॥ ४३ ॥ उसके सैकड़ों पाप नाश

बृहस्पतिरुवाच ॥ मासो वैशाखनामायं प्रियो वै मधुघातिनः ॥ सर्वाश्च तिथयः पुण्या मासेऽस्मिन् माधवप्रिये ॥४२॥ तत्रापि च सिते पक्षे तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ यस्तस्यां स्नानदानादि श्राद्धं चैव करोति वै ॥४३॥ तस्य पापसहस्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ॥ अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च ॥४४॥ तस्मात्तस्यां तृतीयायां हरिणा बलिविद्विषा ॥ स्नानदानादि सद्धर्मान् कारयामो हिताप्तये ॥४५॥ भविष्यति च सा शक्तिर्विद्यायां मन्त्रशास्त्रयोः ॥ बलं धैर्यं यशश्चैव यथापूर्वं भविष्यति ॥४६॥ इत्येवं तु विचार्याथ गुरुर्देवः समाहितः ॥ इन्द्रेण कारयामास

हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है तथा ऐश्वर्य, बल और धैर्य भी बढ़ जाता है ॥ ४४ ॥ अतएव हित प्राप्त करने के लिये उस तृतीया के दिन बलि से द्वेष करनेवाले इन्द्र को स्नान, दान, सत् धर्म इत्यादि करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इससे विद्या में तथा मन्त्र और शास्त्रों में शक्ति होगी, तथा बल, धैर्य, और यश पहिले के समान हो जायगा ॥ ४६ ॥ इस

प्रकार से गुरु बृहस्पति ने देवताओं के साथ विचार करके इन हरि भगवान् के प्रिय धर्मों को इन्द्र से करवाया ॥ ४७ ॥ अक्षय तृतीया के दिन भक्ति और मुक्ति के फल देनेवाले कर्म इन्द्र ने किया, जिससे उनका बल, धैर्य इत्यादि पहिले के समान हो गया ॥ ४८ ॥ तथा परस्त्रीगमन का दोष भी तुरत नष्ट हो गया और राहु से मुक्त चन्द्रमा की तरह इन्द्र पापों से छूट गया ॥ ४९ ॥ बाद में देवताओं के साथ असुरों को जीत कर वह देवताओं के बीच में हरि भगवान् के समान

धर्मानेतान् हरिप्रियान् ॥४७॥ अक्षयायां तृतीयायां भक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ तेन पूर्ववदेवासीद्बलं धैर्यादिकं हरेः ॥४८॥ परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत ॥ पश्चाद्धताशुभः शक्रो रहोर्मुक्त इवोडुपः ॥४९॥ पश्चाद्देवैः समायुक्तो विनिर्जित्य तथाऽसुरान् ॥ देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा ॥ ५० ॥ तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम् ॥ विवेश विभवैः सार्द्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥५१॥ अनुज्ञाताश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः ॥ ततस्ते यज्ञभागांश्च लेभिरे च यथा पुरा ॥५२॥ पिण्डभागांश्च पितरो यथापूर्वं प्रपेदिरे ॥ स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा

शोभायमान हुआ ॥ ५० ॥ तृतीया के माहात्म्य से अमरावती भाग्य युक्त हो गई और शङ्ख तुरही इत्यादि बजते हुए उसने विभव सहित प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ इन्द्र से आज्ञा पाकर देवता लोग अपने अपने धाम को गये और तब वे पहिले की तरह यज्ञ में भाग लेने लगे ॥ ५२ ॥ दैत्यों के पराजय होने पर पितर लोग पहिले की तरह पिण्ड-भाग प्राप्त करने लगे

ओर मुनि लोग अपने अध्ययन में सन्तुष्ट हो गये ॥ ५३ ॥ तब से सब लोकों में देवता और ऋषियों को सन्तोष देनेवाली अक्षय नाम की तृतीया इस लोक में प्रसिद्ध हुई ॥ ५४ ॥ इसीसे अतिपुण्य देनेवाली, सब पापों का नाश करनेवाली, मनुष्यों को भोग और मुक्ति देनेवाली यह तृतीया अक्षया कहलाई ॥ ५५ ॥

दैत्यानां च पराजयात् ॥ ५३ ॥ तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा ॥५४॥ तस्मात्पुण्यतमा चैषा सर्वकर्मनिकृन्तनी ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां तृतीया चाक्षाह्वया ॥५५॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीपसंवादे अक्षय्यतृतीया-
महिमकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीप के संवाद में अक्षय
तृतीया महिमा कथन नाम का तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

श्रुतदेवजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! वैशाख मास की सब पुण्य तिथियों में शुक्ल पक्ष की द्वादशी सब पापों का नाश करनेवाली है ॥ १ ॥ जिन्होंने द्वादशी की सेवा न किया, उनके दान, तप, उपवास, व्रत. इष्ट पूर्तियों से क्या लाभ ॥ २ ॥ वैशाख मास की द्वादशी के दिन गङ्गाजी के तट पर जो एक गौ दान देता है, उसको हजार गोदान का फल होता है ॥ ३ ॥ दुर्भिक्ष के समय प्रतिदिन करोड़ को भोजन कराने का फल द्वादशी के दिन एक को ही भोजन कराने से प्राप्त

श्रुतदेव उवाच ॥ तिथिष्वेतासु पुण्यासु द्वादसी सितपक्षगा ॥ वैशाखमासे राजेन्द्र सर्वाघौघविनाशिनी ॥ १ ॥ किं दानैः किं तपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम् ॥ किमिष्टैश्चैव पूर्तैश्च द्वादशी यैर्न सेविता ॥ २ ॥ गङ्गायामुपरागे तु यो दद्याद्गोसहस्रकम् ॥ द्वादश्यां माधवे मासि प्राप्नोत्येकगवार्पणात् ॥ ३ ॥ गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहं कोटिभोजनात् ॥ तत्फलं समवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात् ॥ ४ ॥ यद्दत्तमर्हते चान्नं द्वादश्यां च सिते शुभे ॥ सिक्थे सिक्थे भवेत्तस्य कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥ ५ ॥ यो दद्यात्तिलपात्रं तु द्वादश्यां मधुसंयुतम् ॥ निर्धूताखिलबन्धस्तु विष्णु-

होता है ॥ ४ ॥ शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन जो मुट्ठी भर अन्न दान करता है उसको करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल होता है ॥ ५ ॥ जो द्वादशी के दिन मधु के सहित तिलपात्र दान देता है वह सब बन्धनों से विमुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन जो हरि भगवान् का जागरण करता है उससे सब देवता

प्रसन्न होते हैं और जीता हुआ भी मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ करोड़ों सूर्यग्रहण में तीर्थ में स्नान करने का जो फल होता है वह फल हरि भगवान् के दिन प्रातःकाल स्नान करने से हो जाता है ॥ ८ ॥ जो द्वादशी के दिन तुलसी की कोमल पत्तियों से विष्णु भगवान् की पूजा करता है, वह सात कुलों का उद्धार करके विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

लोकमवाप्नुयात्॥ ६ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे कुर्य्याज्जागरणं हरेः ॥ स जीवन्नेव मुक्तः स्यात्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ७ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्याप्लव्य यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने ॥ ८ ॥ तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥ स सप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ ९ ॥ द्वादश्यां माधवे मासि यो दद्याद्गां सवत्सकाम् ॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य विष्णुलोकाधिपो भवेत् ॥१०॥ यमं पितॄन् गुरून् देवान विष्णुमुद्दिश्य मानवः ॥ माधवे शुक्ल-द्वादश्यां सोदकुम्भं सदक्षिणम् ॥११॥ दध्यन्नं चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ प्रयागे प्रत्यहं

वैशाख मास द्वादशी के दिन जो बछवा सहित गाय दान देता है, वह करोड़ कुल का उद्धार करके विष्णुलोक का स्वामी होता है ॥ १० ॥ जो वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन विष्णु भगवान् को उद्देश्य करके यम, पितर, गुरु तथा देवताओं को दक्षिणा सहित जल भरा घड़ा ॥ ११ ॥ दही तथा अन्न देता है, उस पुण्य का फल सुनो; प्रयाग

में प्रतिदिन करोड़ को भोजन कराते ॥ १२ ॥ तथा एक वर्ष तक सुन्दर षट्रस अन्नों का भाजन कराने से जो पुण्य
होता है, वह फल मधुसूदन भगवान् की आज्ञा से उसको मिलता है ॥ १३ ॥ जो वैशाख मास की शुक्लपक्ष की
द्वादशी के दिन शालिग्राम शिला का दान करता है वह सब पापों से मुक्त होता है ॥ १४ ॥ सूर्य ग्रहण में गङ्गा के तट पर

चैव कुर्याद्यः कोटिभोजनम् ॥१२॥ यावत्संवत्सरं पुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमैः ॥ तत्फलं समवाप्नोति
मधुसूदनशासनात् ॥१३॥ शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशीदिने ॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु
सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४॥ सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायां च रविग्रहे ॥ यो दद्यात्कोटिवारं तु तेन
तुल्यं फलं विदुः ॥ १५ ॥ द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम् ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्यां
यत्फलं परिजायते ॥१६॥ तत्फलं समवाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः ॥ त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं
पयोदधिविमिश्रितैः ॥१७॥ शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये ॥ पञ्चामृतैश्च यो विष्णुं भक्त्या

जो सात द्वीप वाली पृथ्वी दान देता है उसको भी करोड़ गुना फल इसके बराबर होता है ॥ १५ ॥ द्वादशी के दिन जो
मधुसूदन भगवान् को दूध से स्नान कराता है, उसको राजसूय तथा अश्वमेध का फल होता है ॥ १६ ॥ वही फल गङ्गा
जी में मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, त्रयोदशी के दिन जो विष्णु भगवान् को दूध, दही मिश्रित ॥ १७ ॥ तथा

शक्कर और मधु से मधुसूदन भगवान् की प्रीति के लिये जो विष्णु भगवान् को भक्तिपूर्वक पञ्चामृत से स्नान कराता है ॥ १८ ॥ वह सब कुलों का उद्धार करके विष्णुलोक को जाता है, हरि भगवान् की प्रीति के लिये इस तिथि को सायंकाल के समय शर्बत पिलाता है ॥ १९ ॥ उसके पुराने पाप सर्प के पुरानी केचुली की तरह अलग हो जाते हैं, जो सन्ध्या के समय रस भरी ककड़ी दान देता है ॥ २० ॥ वह ककड़ी के रसायन से मुक्त हो जाता है, जो ऊख, आम तथा मुनक्का दान

संस्नापयेद्विभुम् ॥१८॥ स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥ यो दद्यात् पानकं ह्यस्यां सायाह्ने प्रीतये हरेः ॥१९॥ जीर्णपापं जहात्याशु जीर्णं त्वचमिवोरगः ॥ सायाह्ने चैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम् ॥२०॥ भवेन्मुक्तः कर्मबन्धादुर्वारुकरसायनात् ॥ इक्षुदण्डं चूतफलं दद्या-द्द्राक्षाफलानि च ॥२१॥ न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम् ॥ यो दद्याद्गन्धलेपन्तु सायाह्ने द्वादशीदिने ॥२२॥ बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं द्वादश्यां राजसत्तम ॥२३॥ माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलं भवेत् ॥ प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामि

देता है ॥ २१ ॥ उसके सौ पीढ़ी तक सन्तति का नाश नहीं होता, जो द्वादशी के दिन सन्ध्या को गन्ध और लेप दान करता है ॥ २२ ॥ वह निस्सन्देह सब बाहरी घावों से मुक्त हो जाता है. हे राजेन्द्र ! द्वादशी के दिन जो कुछ थोड़ा भी पुण्य करता है ॥ २३ ॥ वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में उसका अक्षय फल होता है । हे राजन् ! इसकी प्रसिद्धि किससे हुई

सो मैं कहता हूँ ॥ २४ ॥ इसके सुनने से सब पापों का नाश होता है तथा यह सब कल्याणों को देनेवाली होती है। प्राचीन समय में काश्मीर देश में देवव्रत नाम का एक ब्राह्मण रहता था ॥ २५ ॥ उसकी मालिनी नाम की पापरूपी कन्या थी, उस कन्या को उसने सत्यशील नाम के बुद्धिमान् श्रेष्ठ ब्राह्मण से ब्याह दिया ॥ २६ ॥ वह बुद्धिमान् उसको लेकर अपने यवन नाम के देश में गया, रूप तथा यौवन से युक्त वह उसकी प्रिय न हुई ॥ २७ ॥ उस स्त्री का पति वह

केन जातेति भूमिप ॥२४॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नी सर्वमङ्गलदायिनी ॥ पुरा काश्मीरदेशे तु द्विजो देवव्रताह्वयः ॥२५॥ तस्यासीन्मालिनी नाम तनया पापरूपिणी ॥ ददौ तां सत्यशीलाय विप्रवर्याय धीमते ॥२६॥ तां गृहीत्वा ययौ धीमान् स्वदेशं यवनाह्वयम् ॥ रूपयौवनसम्पन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत् ॥२७॥ सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः ॥ नान्यस्य कस्यचिद्द्वेषी तां विना नृपते पतिः ॥२८॥ तस्मिन् सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा ॥ आपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा ॥२९॥ ताभिरुक्ता तु सा भूप वश्यो भर्ता भविष्यति ॥ अस्माकं

राजा सर्वदा उससे द्वेष करता था और निष्ठुर रहता था, तथा दूसरे किसी से द्वेष नहीं करता था ॥ २८ ॥ हे राजन्! उस पति पर क्रोध करके वशीकरण की लालसा से उस स्त्री ने उन स्त्रियों से पूछा जिनको उसने त्याग दिया था ॥ २९ ॥ हे भूप! उन स्त्रियों ने कहा कि तेरा पति वश में हो जायगा, पति के त्याग के अपमान से हम लोगों को यह

निश्चय है ॥ ३० ॥ हम लोगों ने अपने पतियों को औषधि देकर वश में किया है, तू आज योगिनी के पास जा वह तुझे औषधि देगी ॥ ३१ ॥ तेरा पति दास के समान हो जायगा तू शङ्का मत कर। हे राजन्! उन स्त्रियों के कहने पर योगिनी के मन्दिर में गई ॥ ३२ ॥ उस दुश्चारिणी सती ने उस योगिनी से अत्यन्त प्रसाद पाया, वह शीघ्र ही उसकी कुटी

प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमाननात् ॥३०॥ प्रयुज्य भेषजं वश्यं नीता हि पतयः पुरा ॥ योगिनी त्वं तु गच्छाद्य दास्यते भेषजं शुभम् ॥३१॥ न विकल्पस्त्वया कार्यो भविता दासवत्पतिः ॥ योगिनीमन्दिरं गत्वा तासां वाक्येन भूपते ॥३२॥ प्रसादममुलं तस्या लेभे दुश्चारिणी सती ॥ शतस्तम्भसमायुक्तां कुटीं भेजे त्वरान्विता ॥३३॥ सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवायातयामिकाम् ॥ प्रावृतां दीर्घवस्त्रेण सुधालेपेन वर्तिताम् ॥ ३४ ॥ दीर्घाभिश्च सटाभिस्तु प्रावृता दीप्तिसंयुता ॥ परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैः शनैः ॥ ३५ ॥ अक्षसूत्रकरा सा तु जपन्ती प्रार्थिता तया ॥

में गई जिसमें सो खम्भे लगे थे ॥ ३३ ॥ वह कुटी बड़ी स्वच्छ, सुन्दर और लम्बी चौड़ी थी, इसके चारों ओर लम्बे वस्त्र का घेरा था और यह अच्छी तरह रङ्गी थी ॥ ३४ ॥ यह कुटी बड़ी शोभायमान थी और इसमें बड़े बड़े परदे लगे थे, योगिनी सेवकों से घिरी हुई धीरे धीरे देख रही थी ॥ ३५ ॥ और रुद्राक्ष की माला से जप कर रही थी, उस स्त्री से प्रार्थना

करने पर उसने क्षोभ उत्पन्न करनेवाला सिद्ध वशीकरण मन्त्र उसको बतलाया ॥ ३६ ॥ तब नमस्कार करके, उसने हीरा, तथा मानिक जड़ी हुई, बड़ी चमकती हुई पैर की अँगूठी उस योगिनी को दिया ॥ ३७ ॥ मोलायम सोने के सहित सूर्य के किरण के समान चमकनेवाली पैर की अँगूठी देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुई ॥ ३८ ॥ उसके पति के अपमान को हृदय से

ददौ वश्यकरं मन्त्रं क्षोभकं प्रत्ययान्वितम् ॥३६॥ ततः सा प्रणता भूत्वा पद्भ्यां दत्त्वाऽङ्गुलीयकम् ॥ वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरिक्तप्रभान्वितम् ॥३७॥ मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति ॥ ततो दृष्ट्वा तु सन्तुष्टा पादस्थं चाङ्गुलीयकम् ॥३८॥ हृदयं च तया ज्ञातं तत्पतेरवमानजम् ॥ तदोक्ता हि तया भूप तापस्या हितयुक्तया ॥३९॥ चूर्णो रक्षान्वितो ह्येष सर्वभूतवशङ्करः ॥ चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु ॥४०॥ भविष्यति पतिर्वश्यो नान्यां यास्यति सुन्दरि ॥ नाप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवापि च ॥४१॥ चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप्ता भर्तृगृहं पुनः ॥

जानकर हे राजन् ! उस तापसी ने उसके हित की बातों को कहा ॥ ३९ ॥ यह रक्षा का चूर्ण सब प्राणियों को वश में करनेवाला है, अपने पति को यह चूर्ण देकर उसके गर्दन की रक्षा करो ॥ ४० ॥ हे सुन्दरि ! तेरा पति वश में हो जायगा, दूसरे स्त्री की कामना न करेगा तथा तेरे दुष्ट चरित्रों पर कुछ भी अप्रिय न कहेगा ॥ ४१ ॥ वह चूर्ण रक्षा को लेकर फिर

अपने पति के घर आई, सन्ध्या के समय इस चूर्ण को दूध में मिलाकर उसने पति को दिया ॥ ४२ ॥ उसने गरदन की रक्षा किया इसका कुछ विचार न किया, हे राजेन्द्र ! पति ने चूर्ण पी लिया ॥ ४३ ॥ उस चूर्ण से राजा क्षयरोग से ग्रस्त हुआ, दिन दिन क्षीण होने लगा इसके गुह्य स्थान में बुरा घाव हो गया और भयङ्कर कृमि पड़ गये ॥ ४४॥ हे राजन् ! जब कुछ दिनों में पति की ऐसी अवस्था हो गई तो वह दुष्ट चरित्र की छिनार इच्छानुसार रमण करने लगी ॥४५।

प्रदोषे पयसा युक्तश्चूर्णो भर्तरि योजितः ॥४२॥ ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया ॥
तदा स पीतचूर्णस्तु भर्ता नृपवरोत्तम ॥४३॥ तच्चूर्णात्क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणो दिने दिनने ॥
गुह्ये तु कृमयो जाता घोरा दुष्टव्रणोद्भवाः ॥४४॥ दिनैः कतिपयैः राजन् पत्यावेवं व्यवस्थिते ॥
उवास स्वेच्छया सापि पुंश्चली दुष्टचारिणी ॥४५॥ हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाकुलेन्द्रियः ॥
क्रन्दमानो दिवारात्रं दासोऽस्मि तव शोभने ॥४६॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं न कांक्षेयं परस्त्रियम् ॥
तत्तस्य क्रन्दितं श्रुत्वा भीता सा मेदिनीपते ॥४७॥ अलङ्कारकृते पत्युर्जीवनेच्छुश्च वै तदा ॥
योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यै सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥ तया च भेषजं दत्तं द्वितीयं दाहशान्तये ॥

इन्द्रियों के व्याकुल हो जाने पर तथा तेजहीन हो जाने पर दिन रात चिल्लाते हुए उसके पति ने कहा हे सुन्दरि ! मैं तेरा दास हूँ ॥ ४६ ॥ शरण प्राप्त मुझको बचाओ. मैं दूसरे स्त्री की कामना न करूँगा, राजा की ऐसी चिल्लाहट सुनकर वह डरी ॥ ४७ ॥ और सोचा कि पति के जीने पर ही मैं आभूषण पहिरूँगी, योगिनी के पास जाकर उससे सब वृत्तान्त कहा

॥ ४८ ॥ दाह की शान्ति के लिये दूसरा औषध दिया, उस औषध के देनेपर उसका पति क्षण भर में आरोग्य हो गया ॥ ४९ ॥ पहिले दिये हुए चूर्ण से उत्पन्न हुआ दाह इससे शान्त हो गया तब से उसका पति उसके वश में हो गया और घर पर रहता था ॥ ५० ॥ गृहस्थी के कार्य के बहाने से उसका जार घर में रहता था, सभी वर्ण के जार उसी के घर में

दत्ते च भेषजे तस्मिन् स्वस्थोऽभूत्तत्क्षणात्पतिः ॥४९॥ पूर्वचूर्णोद्भवो दाहः शान्तस्तरयाभवत्तदा ॥ ततः प्रभृति भर्ता च वश्योऽभूद्वेश्मसंस्थितः ॥५०॥ तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्यापदेशतः ॥ सर्ववर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठन्ति वै गृहे ॥५१॥ न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथञ्चन ॥ ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे ॥५२॥ कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः ॥ तेर्नासाजिह्वयोश्चासीच्छेदः कर्णद्वयस्य च ॥५३॥ स्तनयोश्चाङ्गुलीनां च सा पङ्गुत्वमपि चागतम् ॥ तेन पञ्चत्वमापन्ना गता नरकयातनाम् ॥५४॥ ताम्रभाण्डे च सा दग्धा युगानां शतपञ्चकम् ॥

रहते थे ॥ ५१ ॥ परन्तु पति को कुछ भी कहने की शक्ति न रही, तब इसी दोष से उसके सम्पूर्ण शरीर में ॥ ५२ ॥ कालान्तक यम के समान हड्डियों को भेदनेवाले कीड़े व्याप्त हो गये और उन्होंने उसकी नाक, जीभ तथा दोनों कानों को छेद डाला ॥ ५३ ॥ दोनों स्तन और अँगुलियाँ पंगु हो गईं, उससे मर कर नरक में जाकर यातना भोगने लगी ॥ ५४ ॥

और पाँच सौ युगों तक वह ताँबे के पात्र में जलती रही और बारम्बार वह सो बार कुत्ते की योनि में उत्पन्न हुई ॥ ५५ ॥ छोटे-छोटे तिनकों के अनेक टुकड़े करके इसीको खाती हुई विना आहार के अपने कर्म पर रोती हुई ॥ ५६ । कान कटी, नाक कटी, शिर में निरन्तर कीड़े पड़े, पोंछ कटी, पॉव टूटे तथा घर-घर पीटी जाती थी ॥ ५७ ॥ बाद में सौवीर देश में

श्वानयोनिषु सञ्जाता शतवारं पुनः पुनः ॥५५॥ सूक्ष्माणि तृणमन्नाणि कृत्वा खण्डान्यनेकशः ॥
भक्ष्यमाणा निराहारा रुदती स्वेन कर्मणां ॥५६॥ छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्धा निरन्तम् ॥
छिन्नपुच्छा भग्नपादा ताडिता च गृहे गृहे ॥५७॥ पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च ॥
दास्या गृहे शुनी जाता वहुदुःखसमाकुला ॥५८॥ छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छांघ्रिरातुरा ॥
कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्च तिष्ठति ॥५९॥ एवं त्रिंशद्गता वर्षा तस्मिन् जन्मनि भूमिप ॥
दैवात्कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ ॥६०॥ शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तमूद्भवः ॥ नद्यां

पद्मबन्धुनामक ब्राह्मण की दासी के घर अति दुःख से व्याकुल कुतिया हुई ॥ ५८ ॥ नाक कटी, पोंछ कटी, जाँघ टूटी, सिर में कीड़े पड़े, तथा योनि में भी नित्य कीड़े रहते थे ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार से उस जन्म में उसके तीस वर्ष बीते, दैवयोग से कर्म के फल पूरे होने पर वैशाख मास में सूर्य के मेष राशि में जाने पर ॥ ६० ॥ शुक्ल पक्ष की द्वादशी

को पद्मबन्धु का पुत्र नदी में स्नान करके पवित्र होकर गीले वस्त्र से घर जाता था ॥ ६१ ॥ तुलसी की चौरा पाकर उसने अपने पैर धोये, इस चौरा के नीचे के भाग में वह कुतिया सो रही थी ॥ ६२ ॥ सूर्य उगने से पहिली वेला में वह पैर के जल से नहा गई, तुरन्त उसके पाप नष्ट हो गये और उसी क्षण उसको अपनी जाति याद आई ॥ ६३ ॥ उस कुतिया ने अपने पूर्व कर्मों को याद करके दीनता से चिल्लाने लगी और बारम्बार हे मुनि! मुझे बचाओ ऐसा चिल्लाने लगी

स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रो गृहं ययौ ॥६१॥ तुलसीवेदिकां प्राप्य पादाववनिनेजनम् ॥
वेदिकाया अधो देशे सा शुनी स्वापमागता ॥६२॥ प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता ॥
सद्यो ध्वस्ताऽशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात्॥६३॥स्मृत्वा कर्मकृतं पूर्वं सा शुनी तापसं तदा ॥
चुक्रोश करुणं दीना मुने त्राहीति वै पुनः ॥६४॥ स्वकर्म च मुनीन्द्राय स्मृत्वाऽऽचख्यौ भयाकुला॥
भर्तुर्विषप्रयोगन्तु स्वस्य दुश्चरितं तथा ॥६५॥ याऽन्यापि युवती ब्रह्मन् भर्तुर्वश्यं समाचरेत् ॥
वृथा धर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने ॥६६॥ भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम् ॥

॥ ६४ ॥ और भय से व्याकुल होकर उसने याद करके मुनिवर को अपना कर्म सुनाया तथा अपना दुश्चरित्र और पति को विष देना कहा ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन्! जो कोई धर्मभ्रष्ट दुराचारी युवती पति को वश में करेगी वह ताँबे के पात्र में पकेगी ॥ ६६ ॥ पति नाथ हैं, पति उत्तम देवता हैं, उनकी बुराई करके स्त्री कैसे सुख पा सकती है ॥ ६७ ॥ पति को कष्ट

देनेवाली स्त्री सौ योनि जानवरों की और सौ करोड़ कीड़ों की योनि पाती है, इसलिये हे ब्राह्मण। स्त्रियों को सर्वदा पति की आज्ञानुसार करना चाहिये ॥ ६८ ॥ हे ब्रह्मन्! आज आपके दृष्टि के सामने मैं खड़ी हूँ यदि आप उद्धार न करेंगे तो मैं फिर घृणित यातना पाऊँगी ॥ ६९ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन्! वैशाखमास के शुक्ल पक्ष में पुण्य दान देकर मुझ दुराचारी

विप्रियं तस्य कृत्वा स्त्री कथं सुखमवाप्नुयात् ॥६७॥ तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानि च ॥
तस्माद्भूसुर कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तुर्वचः सदा ॥६८॥ साहं यास्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम् ॥
यदि नोद्धरसे ब्रह्मन्नद्य त्वद्दृष्टिसंमुखाम् ॥६९॥ तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन् दुष्कृतां पापचारिणीम् ॥
सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके ॥७०॥ या कृता तु त्वया ब्रह्मन् द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी ॥
तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः ॥७१॥ दुश्चारिण्या अपि ब्रह्मन् तेन मुक्तिर्भविष्यति॥
यस्यां तु भूसुर स्नातः स्वगृहे मनुजः किल ॥७२॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते नात्र संशयः ॥

पापचारिणी का उद्धार कीजिये ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन्। पुण्य वर्धिनी द्वादशी के दिन स्नान, दान, अन्न, भोजन इत्यादि से जो पुण्य आपने किया है वह मुझे दीजिये ॥ ७१ ॥ हे ब्रह्मन्! मुझ दुश्चारिणी को उसीसे मुक्ति होगी, हे भूसुर! इस तिथि को जो मनुष्य घर में भी स्नान करता है ॥ ७२ ॥ वह सब तीर्थों का फल पाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है, जो

कुछ तप, जप, आहुति, दान, देवपूजन इत्यादि ॥ ७३ ॥ द्वादशी के दिन किया जाता है उसका अक्षय फल जानना चाहिये इस प्रकार के सम्पूर्ण फल को आप मुझे दीजिये ॥ ७४ ॥ द्वादशी के उपवास से तथा त्रयोदशी के पारणा से जो फल होता है उससे भी मुक्त होती है ॥ ७५ ॥ हे महाभाग ! हे दीनवत्सल । मुझ दीन पर दया कीजिये, जनार्दन भगवान्,

तप्तं जप्तं हुतं दत्तं कृतं देवार्चनादि यत् ॥ ७३ ॥ तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने ॥
एवंविधं फलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम ॥७४॥ द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात् ॥
यत्फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिर्भविष्यति ॥७५॥ दयां कुरु महाभाग दीनायां दीनवत्सल ॥
दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथो जनार्दनः ॥७६॥ तदीयास्तादृशा एव यथा राजा तथा प्रजाः ॥
वैवस्वतपदध्वंसिन्परित्राहि सुदुःखिताम् ॥७७॥ त्वद्द्वारवासिनीं दीनां शुनीं मां दीनवत्सल ॥
ब्रह्महत्यासहस्रं वा गोहत्यानां सहस्रकम् ॥७८॥ अगम्यानां च कोट्यश्च दहत्येषा शुभा तिथिः ॥

दीनों के स्वामी, जगत् के स्वामी तथा आपके भी नाथ हैं ॥ ७६ ॥ उनके वैसेही होते हैं क्योंकि जैसा राजा वैसी प्रजा भी होती है. हे वैवस्वत के पद को ध्वंस करनेवाले ! मुझ अतिः दुःखी की रक्षा करो ॥ ७७ ॥ हे दीनवत्सल ! मैं आपके द्वार पर बसने वाली दीन कुतिया हूँ, सैकड़ों ब्रह्महत्या और सैकड़ों गोहत्या ॥ ७८ ॥ तथा करोड़ों अगम्य पापों को यह

शुभ तिथि जला देती है, हे महामुनि। इस तिथि में किए महा पुण्यों को मुझे देकर ॥ ७९ ॥ हे नाथ! मुझ अति दुःखिनी का उद्धार करो, दया करो, अन्त में मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ८० ॥ इस प्रकार से उसके वचन को सुनकर मुनि के पुत्र ने कुतिया से कहा–हे मुनि! प्राणी अपने किये हुए कर्म का सुख दुःख भोगता है ॥ ८१ ॥ तू जिसने रक्षाचूर्ण देकर अपने पति को वश में किया तू नीच, पापशीला इससे तू क्या करेगी ॥ ८२ ॥ साधुजन के प्रति जो पाप करते हैं

तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यं दत्त्वा महामुने ॥७९॥ मामुद्धर समुद्विग्नां दीनां नाथ दयां कुरु ॥
अन्ते तुभ्यं द्विजेन्द्राय नम उक्तिं विधेमहि ॥८०॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शुनीमाह मुनेः सुतः ॥
स्वकृतं जन्तवोऽश्नन्ति सुखदुःखात्मकं शुनि ॥८१॥ तस्मात् किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया ॥ यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्वृतः ॥८२॥ साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरं भवेत् ॥ साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरं भवेत् ॥८३॥ उभयभ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतं भवेत्॥ शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम् ॥८४॥ विषवृद्धिकरं दुष्टमेवं पापकृतं भवेत् ॥

वह उन्हीं के लिये दुःख देनेवाला होता है तथा साधु के प्रति जो पुण्य करते हैं वह उनके दुःखों को हरता है ॥ ८३ ॥ पापियों के प्रति जो कार्य किया जाता है, वह दोनों ही को हानिकारक होता है. जिस प्रकार से चीनी मिला हुआ दूध सर्प को पिलाने से ॥ ८४ ॥ विष की वृद्धि होती है, इसी प्रकार से दुष्टों के प्रति पाप कर्म करने से होता है, जब मुनि के

पुत्र ने ऐसा कहा तब कुतिया दुःख से पीड़ित होती ॥ ८५ ॥ मुख ऊपर करके फिर चिल्लाने लगी और उसके पिता से बहुत कहने लगी, हे पद्मबन्धु ! अपने द्वार पर रहनेवाली कुतिया की रक्षा करो ॥ ८६ ॥ उसने बारम्बार "अपनी नित्य जूठा खानेवाली कुतिया की रक्षा करो" ऐसा कहा, गृहस्थ महात्माओं के घर जो अपने पाले हुए प्राणी रहते हैं ॥ ८७ ॥ उनका उद्धार करना धर्म जाननेवालों का मत है, चाण्डाल, कौवे, कुत्ते नित्य ॥ ८८ ॥ गृहस्थों के दयापात्र हैं और

वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखेन दूषिता ॥८५॥ पुनश्चुक्रोशोर्ध्वमुखी तत्पित्रे बहुभाषिणी ॥ पद्मबन्धो परित्राहि शुनीं त्वद्द्वारवासिनीम् ॥८६॥ त्वदुच्छिष्टाशिनी नित्यं त्वं पाहीति पुनः पुनः॥ स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः ॥८७॥ तेषामुद्धरणं कार्यमिति धर्मविदां मतम् ॥ चाण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः ॥८८॥ गृहस्थानां दयापात्रं प्रत्यहं बलिभोजिनः ॥ अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि ॥ सोऽधः पतेन्न सन्देह इति वेदविदां मतम् ॥८९॥ कर्तारमेकं जगतां हि कर्ता कृत्वाऽऽत्मना पाति समस्तजन्तून् ॥दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्त-

प्रतिदिन बलि के भोजन करनेवाले हैं, जो पाले हुए अशक्त, रोगग्रस्त प्राणी का उद्धार नहीं करता उसका अधःपतन होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यही वेद जाननेवालों का मत भी है ॥ ८९ ॥ जगत् का बनानेवाला सब प्राणियों को स्वयं रच कर उनकी रक्षा करता है, हरि भगवान् द्वारा इत्यादि के रूप के बहाने से सबको पालते हैं, इसलिये पाले हुए की

रक्षा करना उनको आज्ञा है ॥ ९० ॥ उस पोष्य रक्षा को छोड़ कर जो प्राणी मूढ़ मति होकर दैव का उल्लंघन करता है तो वही कृतघ्न और सबका मारनेवाला होता है और अन्त में नरक में जाता है ॥ ९१ ॥ दया करके अथवा कर्तव्य समझकर मुझ दुर्मति दीन का उद्धार कीजिये, घर में बैठे हुए दयानिधि पद्मबन्धु दुःख से पीड़ित कुतिया का यह वचन सुन कर तुरत

दाज्ञा खलु पोष्यरक्षा ॥९०॥ तां पोष्यरक्षां परिहृत्य जन्तुर्दैवेन क्लृप्तां यदि वर्ततेऽन्यधीः ॥ स एव दाग्ध्रात् सकलस्य हन्ता कीनाशलोकं नितरां प्रयाति ॥९१॥ कर्त्तव्यत्वाद्दयालुत्वाद्दीना-मुद्धर दुर्मतिम् ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा दुःखार्ताया गृहे स्थितः ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं पद्मबन्धु-र्दयानिधिः ॥९२॥ किमेतदिति तां प्राह पुत्रः सर्वं न्यवेदयत् ॥ स तु पुत्रवचः श्रुत्वा तमेवं प्राह विस्मितः ॥९३॥ पद्मबन्धुरुवाच ॥ ममात्मज कथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया ॥ न साधूनामिदं वाक्यं भवतीह च पावनम् ॥९४॥ आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः ॥ पश्य पुत्र

घर के बाहर आये ॥ ९२ ॥ और पूछा कि यह सब क्या है, पुत्र ने सब निवेदन किया, उन्होंने पुत्र का वचन सुनकर विस्मित होकर कहा ॥ ९३ ॥ पद्मबन्धुजी ने कहा—हे मेरे पुत्र ! तुमने ऐसा वाक्य क्यों कहा, साधुओं का ऐसा वाक्य पवित्र नहीं होता ॥ ९४ ॥ अपने को सुख देनेवाले पापी निन्दनीय होते हैं, हे पुत्र ! देखो सभी लोग दूसरों के उपकार

के लिये ही बने हैं ॥ ९५ ॥ चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पृथ्वी, अग्नि, जल, चन्दन, वृक्ष तथा सज्जन लोग दूसरे के उपकार में
लगे रहते हैं ॥ ९६ ॥ हे पुत्र! दैत्यों को अधिक बलवान् जानकर देवताओं के उपकार के लिये दधीचि ऋषि ने कृपा करके
अपनी हड्डी का दान किया ॥ ९७ ॥ हे महाभाग! पूर्वकाल में राजा शिवि ने कबूतर के बदले अपना मांस भूखे बाज

जनाः सर्वे परोपकरणाय वै ॥९५॥ शशिः सूर्योऽथ पवनो मेदिनी हुतभुग्जलम् ॥ चन्दनं
पादपाः सन्तः परोपकरणे स्थिताः ॥९६॥ अस्थिदानं कृतं पुत्र कृपया हि दधीचिना ॥ देवा-
नामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान् ॥९७॥ कपोतार्थे स्वमांसानि शिबिना भूभुजा पुरा ॥
प्रदत्तानि महाभाग श्येनाय क्षुधिताय वै ॥९८॥ जीमूतवाहनो राजा पुराऽऽसीत्क्षितिमण्डले ॥
तेनापि जीवितं दत्तं गरुडाय महात्मने ॥९९॥ तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता ॥
शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति ॥१००॥ किन्न दीपयते चन्द्रश्चाण्डालानां गृहे सदा ॥

पक्षी को दिया ॥ ९८ ॥ प्राचीन समय में पृथ्वी मण्डल में जीमूत्र वाहन नाम का राजा था, उसने महात्मा गरुड़ के लिये
अपना प्राण दे दिया ॥ ९९ ॥ अतएव दयालु बुद्धिमान ब्राह्मण को ऐसा करना चाहिये, शुद्ध स्थान पर मेघ बरसता है,
क्या अशुद्ध पर नहीं बरसता ? ॥ १०० ॥ क्या चन्द्रमा का चाण्डालों के घर में सर्वदा प्रकाश नहीं होता ? इसलिये

वारम्बार याचना करती हुई इस कुतिये का मैं ॥ १ ॥ दलदल में फँसी गाय की तरह अपने पुण्यों से इसका उद्धार करूँगा, इस प्रकार से पुत्र का निरादर करके उस महापति ने प्रतिज्ञा किया ॥ २ ॥ उसको उन्होंने द्वादशी तिथि से उत्पन्न महापुण्य दिया और कहा हे कुतिया। पापों से निवृत्त होकर तू हरि भगवान् के धाम को जा ॥ ३ ॥ हे राजन्! उस वाक्य से जीर्ण देह को त्याग कर शुभ दिव्य रूप धारण करके दिव्य आभूषणों से एकाएक विभूषित होकर ॥ ४ ॥

तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीं न पुनः पुनः ॥ १ ॥ उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नां च गां यथा ॥
इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः ॥ २ ॥ दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसम्भवम् ॥ शुनि
गच्छ हरेर्धाम निर्धूताखिलकल्मषा ॥ ३ ॥ तद्वाक्यात्सहसा भूप दिव्याभरणभूषिता ॥ विमुच्य
देहं जीर्णं तु दिव्यरूपधरा शुभा ॥ ४ ॥ शतादित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा ॥ जगामाम-
न्त्र्य तं विप्रं द्योतयन्ती दिशो दश ॥ ५ ॥ भुक्त्वा दिवि महाभोगान् पश्चाज्जाता महीतले ॥
नरनारायणाद्देवादुर्वशी नामनामतः ॥ ६ ॥ वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना ॥ देवानां च

सौ सूर्य की प्रभा पाकर सावित्री के समान रूप धारण कर उस ब्राह्मण की आज्ञा पाकर दशों दिशा को देदीप्यमान करती हुई चली गई ॥ ५ ॥ स्वर्ग में बड़े-बड़े भोगों को भोग कर पृथ्वी पर नर और नारायण की कृपा से उर्वशी नाम से उत्पन्न हुई ॥ ६ ॥ यह सुन्दर स्त्री वैशाख शुक्ला द्वादशी के प्रभाव से देवताओं को प्रिय हुई और अप्सरा बन गई

॥ ७ ॥ इस कुतिया ने उस रूप को प्राप्त किया जिसको योगी लोग प्राप्त करते हैं, जो रूप अग्नि के प्रकाश के समान परम श्रेष्ठ है, जिसको पाकर सन्त लोग भी मुक्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ बाद में मधुसूदन भगवान् की प्राणप्यारी पुण्य को बढ़ानेवाली इस तिथि को पद्मबन्धु ने संसार में प्रसिद्ध किया ॥ ९ ॥ करोड़ों चन्द्र और ग्रहण से भी अधिक पुण्य

प्रिया जाता अप्सरस्त्वं च सा ययौ ॥ ७ ॥ यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम् ॥
यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोक्षं तत्प्राप रूपं च शुनीह देवी ॥ ८ ॥ पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां
तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम् ॥ लोके प्रख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम् ॥ ९ ॥ कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका
सा समस्तपुण्याधिकपुण्यरूपा ॥ यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च ॥११०॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

रूप सम्पूर्ण पुण्यों को देनेवाली, सब यज्ञों से अधिक पूजनीय इस तिथि को ब्राह्मण ने तीनों लोकों में प्रसिद्ध किया ॥११० ॥

श्री स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद में शुनीमोक्ष
प्राप्ति नाम का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥



श्रुतदेवजी ने कहा—हे राजेन्द्र । वैशाख महीने के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा तक अन्त की तीन तिथियाँ पुण्य तथा कल्याण देनेवाली हैं ॥ १ ॥ सब पापों का क्षय करनेवाली ये अन्त की तिथियाँ पुष्करिणी कहलाती हैं. वैशाख मास में जो महीना भर स्नान करने के योग्य न हो ॥ २ ॥ वह इन तिथियों में स्नान करके पूर्ण फल प्राप्त करता है, सब देवता लोग त्रयो-

श्रुतदेव उवाच ॥ यास्तिस्रतिथयः पुण्या अन्तिमाः शुक्लपक्षके ॥ वैशाखमासि राजेन्द्र पूर्णिमान्ताः शुभावहाः ॥ १ ॥ अन्त्याः पुष्करिणीसंज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः ॥ माधवे मासि यः पूर्णं स्नानं कर्तुं न च क्षमः ॥ २ ॥ तिथिष्वेतासु यः स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत् ॥ सर्वे देवास्त्रयोदश्यां गर्जन्तस्तं पुनन्ति हि ॥ ३ ॥ चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा एतान्पुनन्ति हि ॥ पूर्णायां पर्वतीर्थैश्च विष्णुना सह संस्थिताः ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि ॥ एकादश्यां पुरा जज्ञे वैशाख्याममृतं शुभम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां पालितं तच्च विष्णुना प्रभविष्णुना ॥

दशी के दिन गरज कर इसको पवित्र करते हैं, ॥ ३ ॥ चतुर्दशी के दिन यज्ञ करके देवता लोग इसको पवित्र करते हैं तथा पूर्णिमा के दिन सब पर्व और तीर्थ विष्णुभगवान् के साथ रहते है ॥ ४ ॥ ये ब्रह्महत्या करनेवाले, शराब पीनेवाले सभी को पवित्र करती हैं, प्राचीन समय में वैशाख की एकादशी के दिन शुभ अमृत उत्पन्न किया ॥ ५ ॥ उसकी विष्णुभगवान् ने

द्वादशी के दिन रक्षा किया, तथा हरि भगवान् ने त्रयोदशी के दिन यह अमृत देवताओं को पिलाया ॥ ६ ॥ तथा चतुर्दशी के दिन देवताओं के वैरी दैत्यों को मारा, और पूर्णिमा के दिन सब देवताओं की साम्राज्य की प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ तब देवताओं ने प्रफुल्ल नेत्र तथा भली भाँति सन्तुष्ट होकर इन तीनों तिथियों को वर दिया ॥ ८ ॥ वैशाख महीने की ये

त्रयोदश्यां सुधां देवान्पाययामास वै हरिः ॥ ६ ॥ जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान् देवविरोधिनः ॥
पूर्णायां सर्वदेवानां साम्राज्याप्तिर्बभूव ह ॥ ७ ॥ ततो देवाः सुसन्तुष्टा एतासां च वरं ददुः ॥
तिसृणां च तिथीनां वै प्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः ॥ ८ ॥ एता वैशाखमासस्य तिस्रश्च तिथयः शुभाः ॥
पुत्रपौत्रादिफलदा नराणां पापहानिदाः ॥ ९ ॥ यो माधवे तु सम्पूर्णे न स्नाति मनुजाधमः ॥
तिथित्रयेऽपि स स्नात्वा पूर्णमेव फलं लभेत् ॥१०॥ तिथित्रयेऽप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः ॥
चाण्डालीं योनिमासाद्य स भवेद्ब्रह्मराक्षसः ॥११॥ उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च

तीनों शुभ तिथियाँ मनुष्यों का पुत्र, पौत्र इत्तादि फल देनेवाली तथा पापों को नाश करनेवाली हैं ॥ ९ ॥ जो नराधम वैशाख मास में सब तिथियों में स्नान करता, उसको इन तिथियों में स्नान करने से पूर्ण फल होता है ॥ १० ॥ इन तीनों तिथियों में जो मनुष्य स्नान दान इत्यादि कर्म नहीं करता वह चाण्डाल की योनि प्राप्त करके ब्रह्मराक्षस होता है ॥११॥

वैशाख मास की इन तीनों तिथियों में जो गरम जल से नाहाता है वह चौदह मन्वन्तर तक रौरव नाम नरक में जाता है ॥ १२ ॥ पितर और देवताओं के निमित्त जो दही और अन्न का दान नहीं करता वह पिशाच की योनि प्राप्त करके प्रलयकाल तक ऐसे ही रहते हैं ॥ १३ ॥ वैशाख मास में नियम करके जो अपनी कामना मे प्रवृत्त रहता है वह

तिथित्रये ॥ रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१२॥ पितॄन् देवान् समुद्दिश्य दध्यन्नं न ददाति यः ॥ पैशाचीं योनिमासाद्य तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम् ॥१३॥ प्रवृत्तानां च कामानां माधवे नियमे कृते ॥ अवश्यं विष्णुसायुज्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥१४॥ आमासं नियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये ॥ तेन पूर्णफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥१५॥ यो वै देवान् पितॄन् विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः ॥ न स्नानादि करोत्यद्धाऽमुष्य शापप्रदा वयम् ॥१६॥ निःसन्तानो निरायुश्च निःश्रेयस्को भवेच्च सः ॥ इति देवा वरं दत्त्वा स्वधामानि ययुः पुरा ॥१७॥ तस्मात्ति-

अवश्य विष्णुभगवान् की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ जो मासपर्यन्त नियम से न रह कर इन तीनों तिथियों में नियम का पालन करता है, वह पूर्णफल को प्राप्त करके विष्णुलोक में आनन्द करता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य देवता, पितर गुरु तथा विष्णुभगवान् के निमित्त श्रद्धा से स्नान इत्यादि नहीं करता उसको हम शाप देते हैं ॥ १६ ॥ कि वह विना सन्तान, विना आयुष्य तथा विना कल्याण का हो । इस प्रकार से देवता लोग वरदान देकर

अपने २ धाम को चले गये ॥ १७ ॥ इसलिये ये तीनों तिथियाँ पुण्य देनेवाली तथा सब पापों का नाश करनेवाली है, अन्त की पुष्करिणी नाम की तिथियाँ पुत्र, पौत्र की वृद्धि करनेवाली हैं ॥ १८ ॥ जो सुवासिनी स्त्री पूर्णिमा के दिन मालपुआ और खीर ब्राह्मण को एक बार देती है वह यशस्वी पुत्र प्राप्त करती है ॥ १९ ॥ जो गृहस्थ इन तीनों दिन कुटुम्ब को भोजन कराता है, वह दिन दिन अश्वमेध का फल प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ इन तीनों दिन जो

थित्रयं पुण्यं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अन्त्यं पुष्करिणीसंज्ञं पुत्रपौत्र विवर्द्धनम् ॥१८॥ या नारी सुभगाऽपूपपायसं पूर्णिमादिने ॥ ब्रह्मणाय सकृद्दद्यात् कीर्तिमन्तं सुतं लभेत् ॥१९॥ कुटुम्बभोजनं यस्तु गृही कुर्यांद्दिनत्रये ॥ दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलमेति न संशयः ॥२०॥ सहस्रनामपठनं यः कुर्याच्च दिनत्रये ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥२१॥ सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम् ॥ पयसा स्नाप्य वै याति विष्णुलोकमकल्मषः ॥२२॥ समस्तविभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ न तस्य लोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये ॥२३॥ अस्नात्वा चाप्यदत्त्वा

विष्णु भगवान् के सौ नामों का पाठ करता है, उस पुण्य का फल स्वर्ग या संसार में कोई नहीं कह सकता ॥ २१ ॥ पूर्णिमा के दिन मधुसूदन भगवान् को सहस्र नाम लेकर दूध से स्नान कराने पर मनुष्य पापरहित होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जो मधुसूदन भगवान् का सम्पूर्ण विभवों से पूजन करता है, युग और कल्पों के नाश हो जाने पर

भी उसके लोक का क्षय नहीं होता ॥ २३ ॥ जिसकी वैशाखी पूर्णिमा विना स्नान किये और विना दान दिये बीतती है, वह ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुघाती तथा पितरघाती होता है ॥ २४ ॥ वैशाख महीने में प्रतिदिन श्रीमद्भागवत के आधे या चौथाई श्लोक का पाठ करने से मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ जो कोई इन तीनों दिन श्रीमद्भागवत सुनता है उसको पाप नहीं लगते जैसे कमल के पत्ते पर जल ॥ २६ ॥ इन तीनों तिथियों की सेवा करने से कितने ही मनुष्यों ने

च वैशाखी च गता यदि ॥ स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा ॥२४॥ श्लोकार्धं श्लोक-पादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वमुपपद्यते ॥२५॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये ॥ न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२६॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्सिद्धत्वमेव च ॥ कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥२७॥ ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा ॥ अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः ॥२८॥ नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्यां च जलाप्लुतः ॥ समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमर्थान्याति सर्वथा ॥२९॥ गां दद्याद्यो

देवता का पद पाया, कितने सिद्ध हो गये और कितनों ने ब्रह्मत्व को प्राप्त किया ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञान से, प्रयाग में मृत्यु होने पर अथवा वैशाख मास में नियम से जल में गोता लगाने से मुक्ति होती है ॥ २८ ॥ वैशाख मास में जल में गोता लगा कर जो नीला बैल छोड़ता है, वह सब बन्धनों से मुक्त होकर सब पुरुषार्थों को प्राप्त करता है ॥ २९ ॥ जो गरीब कुटुम्बी

श्रेष्ठ ब्राह्मण को गाय देता है वह इस संसार में अकाल मृत्यु से निर्मुक्त होता है तथा परलोक में परम पद को प्राप्त करता है ॥ ३० ॥ जो वैशाखी पूर्णिमा को विना स्नान किये और विना दिये बिताता है वह कुत्ते की सौ योनि पाकर विष्ठा में का कीड़ा होता है ॥ ३१ ॥ तीनों भुवन के साढ़े तीन करोड़ तीर्थ एकत्रित होकर तथा पापसमुदाय मे शङ्कित होकर

द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने ॥ इहापमृत्युनिर्मुक्तः परत्र च परं व्रजेत् ॥३०॥ स्नानदानवि-
हीनैस्तु वैशाखीं चैव यो नयेत् ॥ श्वानयोनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः ॥३१॥ तिस्रः
कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानि भुवनत्रये ॥ सम्भूय मन्त्रयाञ्चक्रुः पापसंघातशङ्किताः ॥३२॥ जना
अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम् ॥ तदस्माकं कथं गच्छेदिति चिन्तासमन्विताः ॥३३॥
तीर्थपादं हरिं जग्मुः शरण्यं शरणं विभुम् ॥ स्तुत्वा च बहुभिः स्तोत्रैः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥३४॥
देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन ॥ जना अस्मासु पापिष्ठाः स्नात्वा पापानि सर्वशः ॥३५॥

आपस में सलाह करने लगे ॥ ३२ ॥ कि पापीजन हमारे में अपने पाप को छोड़ देते हैं तब हम लोगों का पाप कैसे हटेगा ? ऐसी चिन्ता से व्याकुल होकर ॥ ३३ ॥ वे शरणों के शरण तीर्थपाद हरि भगवान् के पास गये, अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुति करके वेग से प्रार्थना करने लगे ॥ ३४ ॥ हे देवों के देव ! हे जगत् के नाथ ! हे सब पापों के नाश करने वाले !

पापी मनुष्य लोग हम में स्नान करके सब पापों को ॥ ३५ ॥ त्याग कर आपकी आज्ञा के अनुसार संसार में आपके पद को प्राप्त करते हैं, हे जनार्दन । हम लोगों के वह पाप किस प्रकार हटेंगे ? ॥ ३६ ॥ उसका उपाय कहिये, हम लोग दुखी होकर आपके पैरों की शरण में आये हैं, तीर्थों से भूतभावन भगवान् इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर ॥ ३७ ॥ हँसकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से तीर्थों से बोले—श्रीभगवान् ने कहा—मेष संक्रान्ति में वैशाखमास के शुक्लपक्ष के

विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि ॥ अस्माकं चैव तत्पापं कथं गच्छेज्जनार्दन ॥३६॥

प्रहसन्प्राह तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये

॥ ३७-३८ ॥ सर्वतीर्थमये पुण्ये ममापि प्राणवल्लभे ॥ यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः

॥३९॥ विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः ॥ भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्ये न स्नाता दिन-

त्रये ॥४०॥ तेषु तिष्ठतु तत्पापं जनैर्युष्मद्भिरेचितम् ॥ इति तीर्थपदो विष्णुस्तीर्थानां च वरं ददौ

॥४१॥ अनुज्ञाप्य च तान्याशु तत्रैवान्तरधीयत ॥ स्वधामानि पुनः प्रापुस्तानि तीर्थानि नित्यशः

अन्तिम तीन दिनों में ॥ ३८ ॥ सब तीर्थमय, पुण्य मेरे प्राणप्यारे दिनों में सूर्योदय के पूर्व तुम लोग स्नान करके बाहर आओ ॥ ३९ ॥ शीघ्र ही तुम पापरहित, पुण्यरूप और निर्मल हो जाओगे, इन तीनों दिनों में पाप रहित तुम में जो स्नान नहीं करते ॥ ४० ॥ उनमें तुम लोगों के छोड़े हुए पाप रहते हैं, तीर्थपाद विष्णु भगवान् ने यह वर तीर्थों को दिया

॥ ४१ ॥ उन लोगों को शीघ्र ऐसी आज्ञा देकर वह अन्तर्धान हो गये, वे सब तीर्थ भी फिर अपने अपने धाम को चले गये ॥ ४२ ॥ प्रतिवर्ष वैशाख महीने के अन्तिम तीन दिनों में विष्णु भगवान् की आज्ञानुसार वे प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले स्नान करते हैं ॥ ४३ ॥ उससे पापों से विमुक्त होकर वे अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं, जो लोग वैशाख महीने के अन्तिम तीन दिनों में स्नान नहीं करते वे सब मनुष्यों के पापों के आश्रय हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ न स्नान करनेवालों को तीर्थ लोग ऐसा

॥४२॥ प्रतिवर्षन्तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये ॥ विष्णवाज्ञप्ताः प्रकुर्वन्ति प्रातुःस्नानं भगोदये ॥४३॥ तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो ॥ ये तु स्नानं कुर्वन्ति वैशाखान्त्यदिनत्रये ॥ ते भवन्तु समस्तानां जनानां पातकाश्रयाः ॥४४॥ इति शापं च तीर्थानि ह्यस्नातानां ददन्ति च ॥ न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये ॥४५॥ विचारितेषु शास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः ॥ तस्माद्दिनत्रये कार्यं स्नानदानार्चनादिकम् ॥४६॥ अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते महीपते ॥४७॥ पृष्टं वैशाखमाहात्म्यं यथादृष्टं

शाप देते हैं, जो इन तीनों दिन स्नान नहीं करता उसके समान कोई पापी नहीं है ॥ ४५ ॥ सब शास्त्रों में विचार करने से ऐसा पापी न देख पड़ा, न सुन पड़ा, इसलिये इन तीनों दिन स्नान, दान, पूजा इत्यादि करना चाहिये ॥ ४६ ॥ नहीं तो मनुष्य चौदह मन्वन्तर पर्यन्त नरक में जाता है, महीपति श्रुतकीर्ति ने इस प्रकार से वर्णन किया ॥ ४७ ॥

वैशाख माहात्म्य के विषय मे पूछने पर जैसा देखा और जैसा सुना था, वैशाख माहात्म्य का लेशमात्र उन्होंने वर्णन किया ॥ ४८ ॥ सम्पूर्ण वर्णन सौ वर्ष मे ब्रह्मा भी नहीं कर सकते, प्राचीन काल में कैलास पर्वत के शिखर पर पार्वती जी को महादेवजी ने स्वयम् ॥ ४९ ॥ वैशाख मास का माहात्म्य उस पूछनेवाली से सौ बरस तक कहा तब भी नहीं समाप्त हुआ इसलिये अशक्त होकर वह रुक गये ॥ ५० ॥ इस उत्तम माहात्म्य का पूरा-पूरा वर्णन जगत् के

यथाश्रुतम् ॥ माहात्म्यस्य च लेशोऽयं माधवस्यानुवर्णितः ॥४८॥ कार्त्स्न्याद्वक्तुं ब्रह्मणापि नालं वर्षशतैरपि ॥ पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शङ्करः स्वयम् ॥४९॥ प्राह माधवमाहात्म्यं पृच्छत्यै शतवत्सरम् ॥ तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह ॥५०॥ कोऽनुवर्णयितुं शक्तः कार्त्स्न्यान्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम् ॥५१॥ पुरा सर्वेऽपि ऋषयो माहात्म्यं पापनाशनम् ॥ लेशं लेशं च व्याचख्युर्जनानां हितकाम्यया ॥५२॥ नान्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते ॥ त्वं च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः ॥५३॥

स्वामी अनामय नारायण विष्णु भगवान् के अतिरिक्त कौन कर सकता है ॥ ५१ ॥ प्राचीन समय में पाप नाश करने वाले इस माहात्म्य का खण्ड-खण्ड मनुष्यों के हित के लिये सब ऋषियों ने व्याख्यान किया ॥ ५२ ॥ हे महीपति ! अन्त तक किसी ने वर्णन नहीं किया, तुम वैशाख मास में दान इत्यादि तथा सत् क्रियाओं को करो ॥ ५३ ॥ इससे निःसन्देह

तुम मुक्ति और भुक्ति को पाओगे, इस प्रकार उसको समझा कर तथा मिथिलाधीश राजा जनक को समझा कर ॥ ५४ ॥
श्रुतदेवजी उनकी आज्ञा से जाने की इच्छा करने लगे, वह राजर्षि प्रसन्न होकर आँखो में आँसू भर कर ॥ ५५ ॥ अपनी
वृद्धि के लिये सुन्दर उत्सव कराने लगा, गाँव की प्रदक्षिणा करके उसने उनको पालकी में बैठाया ॥ ५६ ॥ चतुरङ्ग सेना

ते न भुक्तिं च मुक्तिं च संप्राप्स्यसि न संशयः ॥ इति तं बोधयित्वा च मैथिलं जनकाह्वयम् ॥५४॥
श्रुतदेवस्तमासन्त्र्य गन्तुं चक्रे मनस्तदा ॥ जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ॥५५॥
उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम् ॥ ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिविकामधिरोप्य तम् ॥५६॥
चतुरङ्गबलैर्युक्तं स्वयं पृष्ठमथान्वगात् ॥ पुनश्चान्तःपुरं प्राप्य सकलैर्विभवैरपि ॥५७॥
वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः ॥ प्रणम्य च परिक्रम्य तथौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥५८॥ ततः
स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः ॥ सन्तुष्टः परमप्रीतो ययौ धाम स्वकं मुनिः ॥५९॥ नारद

के सहित वह भी उनके पीछे पीछे गया, फिर अन्तःपुर में लेजाकर सब प्रकार के विभवों से ॥ ५७ ॥ वस्त्र, अलङ्कार, गाय,
पृथ्वी, तिल, तथा सोने से पूजन करके नमस्कार करके तथा प्रदक्षिणा करके हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हो गया ॥ ५८ ॥ तब
बड़े तेजस्वी और यशस्वी श्रुतदेव ऋषि जी संतुष्ट हो कर प्रसन्नता पूर्वक अपने धाम को चले गये ॥ ५९ ॥ नारद

जी ने कहा-हे अम्बरीप। मैंने तुम से यह उत्तम आख्यान कहा है इसके सुनने ही से सब पाप कट जाते हैं और यह सब सम्पत्ति को देनेवाला है ॥ ६० ॥ इससे भुक्ति, मुक्ति ज्ञान तथा मोक्ष प्राप्त करोगे, ऐसा उसका वचन सुनकर महा यशस्वी अम्बरीप ने ॥ ६१ ॥ प्रसन्न चित्त होकर तथा बाहरी व्यापारों को छोड़ कर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर कर

उवाच ॥ इत्येतत्परमाख्यातम्बरीप तवोदितम् ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसम्पद्विधायकम् ॥६०॥ तेन भुक्तिं च मुक्तिं च ज्ञानं मोक्षं च विन्दसे ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा अम्बरीषो महायशाः ॥६१॥ प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च वाह्यव्यापारवर्जितः ॥ प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि ॥६२॥ विभवैरखिलैश्चापि पूजयामास तं पुनः ॥ सम्पूजितस्तमामन्त्र्य नारदो भगवान्मुनिः ॥६३॥ लोकान्तरे ययौ धीमान् शापान्नैकत्र संस्थितिः ॥ अम्बरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानि-मान् शुभान् ॥६४॥ धर्मान् कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे ॥६५॥ सूत उवाच ॥

उनको शिर से नमस्कार किया ॥ ६२ ॥ और सब विभवों से उनकी पूजा किया, पूजा करने के बाद उनकी आज्ञा पाकर भगवान् नारद मुनि ॥ ६३ ॥ वह बुद्धिमान् दूसरे लोक को चले गये क्योंकि शाप के कारण उनको एक स्थान में स्थिति नहीं रहती, राजर्षि अम्बरीप नारद जी के कहे हुए इन शुभ ॥ ६४ ॥ धर्मों को करके निर्गुण परब्रह्म में लीन हो गये

॥ ६६ ॥ सूतजी ने कहा–इस पापनाशी, पुण्य बढ़ाने वाले, उत्तम आख्यान को जो सुनता या पढ़ता है वह परम गति
हो प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥ हे मानद ! लिखी हुई पुस्तक जिसके घर मे रहती है, उसके हाथ में मुक्ति रहती है, सुनने
इत्यादि की तो क्या कहना है ॥ ६७ ॥

य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ शृणुयाद्वा पठेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥६६॥
लिखितं पुस्तकं येषां गृहे तिष्ठति मानद ॥ तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रावणादिना ॥६७॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे फलश्रुतिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥
इति वैशाखमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ॥ श्रीमाधवार्पणमस्तु ॥ शुभं भवतु ॥

श्रीस्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य के नारद और अम्बरीष के संवाद मे
फलश्रुति कथन नाम का पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥
श्री माधवार्पणमस्तु ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ इति श्री पाठकोपाह्व–
श्री रामचन्द्रशर्मकृतहिन्दीभाषातथ्यानुवादः समाप्तः ॥

पुस्तक मिलने का पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी सिटी।

मुद्रक—शिवनाथ प्रसाद 'यादव' कैलाश प्रिंटिंग वर्क्स, हरतीरथ ४६/११८, वाराणसी।